श्रीजवाहिर स्मारक साहित्य

का

प्रथम पुष्प

(श्री सद्धर्माचार्य पूज्य श्रीजवाहिराचार्य के व्याख्यानों में से)

★

जवाहिर-किरणावली

की

किरण ७ वीं

सम्पादक

(श्रीजवाहिर स्मारक फंड तरफ से)

पं. पूर्णचन्द्र दक न्यायतीर्थ

प्रकाशक

श्री जैन साधुमार्गी

पूज्य श्रीहुक्मीचन्द्रजी महाराज की सम्प्रदाय

का

श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल सोसायटी

रतलाम-मालवा

मुद्रक

[illegible]

मालिक-श्री [illegible] प्रिंटिंग प्रेस, [illegible] रतलाम

प्रथमावृत्ति [illegible] १००० [illegible]

जैन दर्शन के अन्तर्गत साधुमार्गी जैन समाज और उसके अन्तर्गत प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय सुप्रसिद्ध है इस सम्प्रदाय के आचार्यों में से स्वर्गस्थ पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज बड़े ही प्रवचनी और सुप्रसिद्ध वक्ता थे उनके प्रभावोत्पादक ललित व्याख्यानों को श्रवण करने के लिये जनता उमड़ी पड़ती थी जिस रोज व्यास पीठ पर पूज्य महाराज साहब का पाटिया लगता कि बाजार में हर्ष की उर्मियें उछलने लगती थीं और जनता खचाखच भर जाती थी ऐसा पूर्व पुरुषों से सुना जाता है। उनके परम्पर उत्तराधिकारी स्वर्गीय पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज साहब के प्रवचनों का तो मुझे स्वतः अनुभव है तथा अन्य लोगों को भी है। उनकी वाणी में भी जादू का सा असर था उनका वचनातिशय भी उत्कृष्ट श्रेणिका था किन्तु अफसोस है कि उस समय उनके वचनामृत संग्रह करने की भावना ही पैदा नहीं हुई।

उन्हीं के उत्तराधिकारी स्वर्गीय पूज्य श्री जवाहिराचार्य भी अद्वितीय वक्ता थे। आप केवल वक्ता ही नही थे किन्तु कलाकार भी थे कलाकार जिस प्रकार रत्नों को स्थानापन्न करते समय उसके साथ जिस सामग्री की जरूरत होती है वैसे ही साज से उस रत्न की शोभा बढ़ा देता है इसी तरह श्रीमज्जवाहिराचार्य भी जैन सिद्धान्तों के अन्दर रहे हुए वाक्यरूपी रत्नों को वर्तमान समय के विज्ञान द्वारा तुलनात्मक दृष्टि से अनुसन्धान करके उनको सर्व ग्राह्य बना देते थे और प्रत्येक सूत्र को तलस्पर्शी व्याख्या करते थे यह देखकर जिस समय पूज्य श्री दक्षिण खानदेश से मालवा में पधारें उस समय यानि सं० १९८२ की मण्डल की चतुर्थ बैठक रतलाम में यह प्रश्न आया था कि पूज्य श्री के व्याख्यान नोट कराये जायं तो जनता को भविष्य में बहुत लाभ हो सकेगा उसी समय एक प्रस्ताव द्वारा व्याख्यानों को नोट कराया जाना ठहराया गया तदानुसार मंडल आफिस ने सं. १९८३ के ब्यावर चातुर्मास से ही व्याख्यानों का लिखाया जाना शुरू कराया गया था सो सं. १९९६ के अहमदाबाद चातुर्मास तक नोट हुए है। इस कार्य में मंडल के हजारों रूपये व्यय हुए हैं। मंडल के अन्य कार्यों में यह कार्य वर्तमान तथा भविष्य की प्रजा के लिये अत्युपयोगी सिद्ध हुआ है।

श्रीमज्जवाहिराचार्य संसार के नियमानुसार अपने भौतिक शरीर से आज हमारे बीचमें नहीं रहे है किन्तु उनकी लिपि बद्ध हुई वाणी विद्यमान है। पूज्यश्री के प्रवचनों में से पृथक २ विषयों पर तात्विक विभाग पर्व व था विभाग की बीस पुस्तकें मंडल ऑफिस ने प्रसिद्ध की हैं तथा भीनासर देहली आदि के चातुर्मास में से चुने हुए व्याख्यानों की कुछ पुस्तकें भी जवाहिर किरणावली के नाम से प्रसिद्ध हुई हैं इसे देखकर जैन एवं जैनेतर जनता की रूची इतनी बढ़ गई है कि साहित्य की कुछ पुस्तकें तो स्टाक में भी नहीं रही हैं। और कोई २ साहित्य के दो तीन और चार २ संस्करण निकल चुके है फिर भी मांग बढ़ती जा रही है।

सं० २००० के आषाढ़ मास में पूज्य श्री का स्वर्गवास हो जाने पर चौतरफ से यह आवाज ऊठी की ऐसे महापुरुष का स्मारक कायम किया जाय और उनके उपदेशों को मूर्त रूप में परिणत किये जायें, जिसके लिये विद्वानों की तरफ से अनेक योजनाएं आयी थी वे मंडल की देशनोक की बैठक के समय रजू की गई और विचार करके श्रीमान् सेठ चम्पालालजी साहब बांठिया का अदम्य उत्साह देखकर इस कार्य को वेग देने का भार उन्हीं के ऊपर छोडकर मंडल ने ठहराव नं० १८ किया था परन्तु लोगों की इच्छा के अनुकूल यह कार्य आगे न बढ़कर केवल बीकानेर भीनासर गंगाशहर तक ही रह गया।

गत वर्ष ब्यावर की मंडल की बैठक में फिर यह प्रश्न उपस्थित हुआ उस पर बहुत विचार होकर सर्व सम्मति से यही ठहरा कि पूज्यश्री का सच्चा स्मारक उनके प्रवचनों को सुन्दर ढंग से सम्पादन कराके प्रचार करना है जिसके लिये प्रस्ताव होकर एक फंड कायम हुआ है और उसकी व्यवस्था करने व साहित्य तैयार कराने के लिये एक कमिटी भी कायम हुई है उस विभाग के तरफ से श्री जवाहिर स्मारक का प्रथम पुष्प एवं श्री जवाहिर किरणावली की किरणों में से यह सातवीं किरण आपके कर कमलों में पहुंचाते हुए हमें परमानन्द का अनुभव होता है। और आशा रखते हैं कि इस साहित्य द्वारा जहां सन्त सतियों का सदा सर्वदा योग नहीं रहता वहां के बन्धुओं की आवश्यकता पूर्ति का यह साहित्य उत्तम साधन साबित होगा।

यह साहित्य ऐसे ढंग से सम्पादन एवं प्रकाशित किया गया है कि जिससे पाठक व्याख्यान का पुरा पुरा आनन्द ले सकें। आगे के व्याख्यान भी इसी ढंग से प्रकाशित किये जावेंगे इसलिये सर्व पाठकों एवं साहित्य प्रेमियों से हमारा अनुरोध है कि आप अपना नाम स्थायी ग्राहकों में दर्ज करवा दें। ताकि साहित्य का पुष्प प्रकाशित होते ही आपको भेज दिया जाय। स्व. पूज्य श्री के प्रवचन रूप यह साहित्य इतना मर्म स्पर्शी ठोस और उच्च कोटि का है कि पुस्तकाकार में प्रकाशित होते ही हाथो हाथ पुस्तकें बिक जाती हैं अतः हमारा यही अनुरोध है कि आप अपना नाम स्थायी ग्राहकों में दर्ज करादें। इत्यलम्।

भवदीय
बालचन्द श्रीश्रीमाल
सेक्रेटरी
हीरालाल नांदेचा
प्रेसिडेन्ट

श्री जैन
हितेच्छु श्रावक मण्डल ऑफिस
रतलाम
आश्विन शुक्ला १ सं० २००३

अमृतमय स्वादिष्ट फल !

आपको मालूम है कि महापुरुषों के प्रवचनरूप ये अमृतमयी स्वादिष्टफल कहां से प्राप्त हो रहे हैं। श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल आफिस रतलाम के परिश्रमका प्रताप है कि हमें ऐसा उत्तम साहित्य अध्ययन करने को मिलरहा है अतः हमारा यह प्रथम कर्तव्य होजाता है कि मंडल की तन मन धन से सहायता देकर इसे व्यापक एवं सुदृढ बनावें। भारत के कोने कोने में इसके सभ्य बनाकर इससे समुन्नत करें। मंडल के सभ्य बनने के तरीके।

१ जो महानुभाव मंडल को रूपये पांचसौ से अधिक देंगे वे मंडल के प्रथम श्रेणी के वंशपरम्परा के सभ्यमाने जावेंगे।

२ जो महानुभाव मंडल को रूपये एकसो से अधिक भेंट करेंगे वे मंडल के द्वितीय श्रेणिके आजीवन सभ्य माने जावेंगे।

३ जो महानुभाव मंडल को रूपये दो प्रति वर्ष देते रहेंगे या एक साथ देंगे वे तृतीय श्रेणिके जितनी तादादमें देंगे उतने वर्ष के सभ्य माने जावेंगे।

४ जो मंडल की किसी भी प्रवृतिमें आर्थिक मदद देंगे वे रकम की तादाद पर से उसी श्रेणिके सभ्य माने जावेंगे।

मंडल की मुख्य २ प्रवृतियां निम्न प्रकार हैं

१ श्री जवाहिराचार्य के प्रवचनोंपर से साहित्य सम्पादन करा कर उसको प्रकाशित करके अल्प मूल्य में प्रचार किया जाता है।

२ अपनी सामाजिक धार्मिक संस्थाओं में अभ्यास करते हुए छात्र छात्राओं की परीक्षा लेकर उनको पारितोषिक एवं प्रमाण पत्र देता है।

३ अपनी सामाजिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता देकर उनका गौरव बढ़ाया जाता है।

४ मंडल आफिस से प्रतिमाह रिपोर्ट रूपमें 'निवेदन पत्र' निकलता है जो प्रत्येक श्रेणिके सभ्योंको विना शुल्क भेजा जाता है।

५ सम्प्रदाय तथा समाज के गौरव के कार्यों में भी प्रयत्नकरता है सन्त सतियोंके ज्ञान दर्शन चारित्र की विशुद्धि बढ़ाने में सहायक है।

भवदीय—

मंत्री.

जवाहिर किरणावली
किरण ७वीं
श्रीजवाहिराचार्य
के
व्याख्यान

दो शब्द और

इस पुस्तक के छपते छपते कितनेक हितैषियों का ऐसा आग्रह हुआ कि मंडल ऑफिस से अब जो भी साहित्य प्रकाशित हो, वह श्री जवाहिर किरणावली के किरणरूप में ही हो उनके आग्रह को मान देकर इस पुस्तक को श्री जवाहिर किरणावली की छठी किरण पुस्तक के प्रारम्भ के पृष्ठ पर छपवाया है, परन्तु पीछे से खबर मिली कि छठी किरण दूसरी जगह छप रही है। इस लिये इसे सातवीं किरण जाहिर किया जाता है।

प्रकाशक--
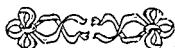
॥ श्री महावीराय नमः ॥

श्री जवाहिर किरणावली

किरण ६

(जवाहिर स्मारक पुष्प प्रथम)

वास्तविक शांति

"श्री शांति जिनेश्वर सायब सोलवाँ.............."

यह भगवान शान्तिनाथ की प्रार्थना है। भक्त भगवान् से क्या चाहता है? यह कि 'हे प्रभो! तू शांति का सागर है, तू स्वयं शान्ति का स्वरूप है, तेरे में शान्ति का भण्डार भरा है, मैं अशान्त हूं (आशा और तृष्णा के कारण) मुझे शान्ति की आवश्यक्ता है, अतः मेरे शान्ति रहित हृदय को शान्ति प्रदान कर'।

जिसको शान्ति की जरूरत होती है, जिसके हृदय में अशान्ति भरी पड़ी हो, वही व्यक्ति शान्ति की चाहना करता है। पानी की चाह प्यासा ही करता है। रोटी की मांग भूखा ही रखता है। जिसमें जिस बात की कमी होती है वह उसे दूर करना चाहता है। तदनुसार भक्त भी भगवान् से कहते हैं (प्रार्थना करते हैं) कि 'हे प्रभो! तू शान्ति का

सागर है, किन्तु मुझ में अशान्ति है, अतः मैं तुझ से शान्ति चाहता हूं। यों तो संसार में शान्ति देने वाले अनेक पदार्थ माने हुए हैं। मैंने उन सब पदार्थों को खोजा किन्तु किसी भी पदार्थ में मुझे शान्ति नहीं मिली। वास्तव में संसार के किसी भी जड़ पदार्थ में शान्ति है ही नहीं।

यह कहा जा सकता है कि जब प्यास लगी हो तब ठण्डा पानी और भूख लगने पर रोटी मिलजाने से शांति मिलती है और यह प्रत्यक्ष अनुभूत बात भी है। ऐसी हालत में यह कैसे कहा जा सकता है कि संसार के किसी भी पदार्थ में शांति नहीं है? इसका उत्तर यह है कि सयाने लोग शान्ति उसी को कहते हैं जिसमें अशान्ति का लवलेश भी न हो। जो शान्ति एकान्तिक और आत्यन्तिक है वही सच्ची शान्ति है। जिस पदार्थ में एकान्तिक और आत्यन्तिक शान्ति नहीं है, वह शान्ति दायक नहीं कहा जा सकता। पदार्थों में शान्ति का आभास होता है, किन्तु शान्ति का वास्तविक स्रोत अन्य ही है। उदाहरण के लिए समझ लीजिये कि किसी को प्यास लगी है और उसने पानी पी लिया है। यदि उसी व्यक्ति को उसी समय पुनः पानी पीने के लिए कहा जाय तो क्या वह पानी पीयेगा? नहीं पियेगा। यदि पानी में शान्ति है तो वह व्यक्ति पुनः पुनः पानी पीने से क्यों इन्कार करता है। दूसरी बात-एक बार पानी पीने से उस समय उसकी प्यास बुझ गई थी, उस समय उसने पानी में शान्ति का अनुभव किया था किन्तु दो एक घण्टा बीत जाने पर वह फिर पानी पीता है या नहीं? फिर पानी पीने का क्या कारण है? यही कि उस समय पानी पीने से उस समय की प्यास बुझ गई थी लेकिन कायम के लिए उस पानी से प्यास न बुझी थी। वह [illegible] गई थी। क्या आज पुनः [illegible]? यदि [illegible] से सुख मिल सकता है तो पुनः क्यों [illegible] पड़ती है? इससे ज्ञात होता है कि [illegible] पौद्गलिक पदार्थों में सुख नहीं है किन्तु सुख का आभास मात्र है। शान्ति नहीं है [illegible] का आभास है। संसार के किसी भी पदार्थ में एकान्तिक या आत्यन्तिक [illegible] जब भूख लगी हो तब लड्डू कितने प्यारे लगते हैं। यदि भूख न [illegible] क्या लड्डू खाये जा सकते हैं। [illegible] का कारण क्या है? यह कि [illegible] नहीं है। [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] है कि [illegible] है। [illegible] [illegible]

सागर है, किन्तु मुझ में अशान्ति है, अतः मैं तुझ से शान्ति चाहता हूं। यों तो संसार में शान्ति देने वाले अनेक पदार्थ माने हुए हैं। मैंने उन सब पदार्थों को खोजा किन्तु किसी भी पदार्थ में मुझे शान्ति नहीं मिली। वास्तव में संसार के किसी भी जड़ पदार्थ में शान्ति है ही नहीं।

यह कहा जा सकता है कि जब प्यास लगी हो तब ठण्डा पानी और भूख लगने पर रोटी मिलने से शान्ति मिलती है और यह प्रत्यक्ष अनुभूत बात भी है। ऐसी हालत में यह कैसे कहा जा सकता है कि संसार के किसी भी पदार्थ में शांति नहीं है? इसका उत्तर यह है कि सयाने लोग शान्ति उसी को कहते हैं जिसमें अशान्ति का लवलेश भी न हो। जो शान्ति एकान्तिक और आत्यन्तिक है वही सच्ची शान्ति है। जिस पदार्थ में एकान्तिक और आत्यन्तिक शान्ति नहीं है, वह शान्ति दायक नहीं कहा जा सकता। पदार्थों में शान्ति का आभास होता है, किन्तु शान्ति का वास्तविक स्रोत अन्य ही है। उदाहरण के लिए समझ लीजिये कि किसी को प्यास लगी है और उसने पानी पी लिया है। यदि उसी व्यक्ति को उसी समय पुनः पानी पीने के लिए कहा जाय तो क्या वह पानी पीयेगा? नहीं पियेगा। यदि पानी में शान्ति है तो वह व्यक्ति पुन. पुनः पानी पीने से क्यों इन्कार करता है। दूसरी [illegible] बार पानी पीने से उस समय उसकी प्यास बुझ गई थी, उस समय उसने पानी से शान्ति का अनुभव किया था किन्तु दो एक घण्टा बीत जाने पर वह फिर पानी पीता है या नहीं? फिर पानी पीने का क्या कारण है? यही कि उस समय पानी पीने से उस समय की प्यास बुझ गई थी लेकिन कायम के लिए उस पानी से प्यास न बुझी थी। [illegible] गई थी। क्या भूख न पुनः लगेगी? यदि रोटी से भूख मिट जाती है तो पुनः क्यों [illegible] है? इससे [illegible] है कि रोटी पानी आदि भौतिक पदार्थों में सुख नहीं है किन्तु सुख का आभास मात्र है। शान्ति नहीं है किन्तु शान्ति का आभास है। संसार के किसी भी पदार्थ में [illegible] सुख नहीं है। जब भूख लगी हो [illegible] है, [illegible] क्या [illegible] सकते हैं। [illegible] कितने दुःखी [illegible] हैं? इस [illegible] दुःख नहीं है। जब मनुष्य दुःखी होता है [illegible] है। लेकिन जब वह दुःख मिट जाता है तब [illegible] शान्ति [illegible] रहने लगती है। इसी [illegible] एकान्तिक या आत्यन्तिक शान्ति [illegible] है [illegible] के लिए

कर वह बहुत प्रसन्न हुआ। प्रशंसा करने लगा कि यह कैसा सुन्दर देश है। यहां जमीन पर पड़ी हुई बेल में ही ऐसे सुन्दर फल लगते हैं। मेरे देश में तो ऊँचे वृक्ष पर ही फल लगते हैं। उस वक्त उसे भूख लग रही थी अतः एक फल तोड़कर खाया। किन्तु फल उसे कडुआ लगा। वह थू थू करता हुआ सोचने लगा कि इतने सुंदर फल में यह कडुआपन कहाँ से आ गया ? यह सोचकर कि देखूं फल कडुआ है पर पत्ते कैसे हैं, उसने पत्ते चखे। पत्ते भी कडुए निकले। फिर उसने फूल चखा तो वह भी कडुआ मालूम हुआ। अन्त में उसने उस बेल का मूल (जड़) चखा। बड़े दुख के साथ उसने अनुभव किया कि उस बेल का मूल भी कडुआ ही था। उस व्यक्ति ने निर्णय किया कि जिसका मूल ही कडुआ होगा उसके सब अंश कडुए ही होंगे।

सारांश यह है कि आप लोग अपने पुत्र को तो शान्तिदायक पसन्द करते हैं किन्तु खुद को भी तपासिये कि आप स्वयं कैसे हैं ? कोई अच्छे कपड़े पहन कर अच्छा बनना चाहे तो इससे उसकी अच्छा बनने की मुराद पूरी नहीं हो जाती। कपड़ों के परिवर्तन करने से या सुन्दर साज सजाने से आत्मा अच्छा नहीं बन जाता। इससे तो शरीर अच्छा लग सकता है। यदि खुद के आत्मा में दूसरों को शान्ति पहुंचाने का गुण होगा तभी मनुष्य अच्छा लगेगा और तभी संतान भी शान्तिदायिनी हो सकती है।

महाराजा विश्वसेन सब को शांति पहुँचाने के इच्छुक रहते थे इसी से उनकी रानी अचिरा के गर्भ में भगवान् शान्तिनाथ ने जन्म धारण किया। जिस समय भगवान् शांतिनाथ गर्भ में थे उस समय महाराजा विश्वसेन के राज्य में महामारी का भयंकर प्रकोप हुआ। प्रजा महामारी का शिकार होने लगी। यह देख सुन कर महाराजा बहुत चिन्तित हुए और विचार करने लगे कि जिस प्रजा की रक्षा और वृद्धि के लिए मैंने इतने कष्ट उठाये हैं वह किस प्रकार काल कवलित हो रही है। मेरी कितनी कमजोरी है कि जो मेरे सामने मरती हुई प्रजा का मैं रक्षण नहीं कर पाता हूँ। इस प्रकार महामारी का प्रकोप होना और प्रजा का विनाश होना केवल प्रजाके पापों का ही परिणाम नहीं है किन्तु मेरे पापों का भी परिणाम है। जो कुछ हो, मुझे पाप पाप करके ही न बैठे रहना चाहिए किन्तु ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे प्रजा की रक्षा हो और उसे शान्ति प्राप्त हो। यदि मेरे शरीर से यह कार्य न हो सके तो फिर इस शरीर का धारण करना ही व्यर्थ है। मैं निश्चय करता हूं कि अब प्रजा में कोई नया रोगी न होगा और जो रोगी हैं वे जब तक अच्छे न हो जायगें तब तक मैं अन्न जल ग्रहण न करूँगा।

से शान्ति प्राप्त की जायगी तो उनका गुलाम बन जाना पड़ेगा । वैद्य की सहायता लेने पर पदे पदे वैद्यराज की आवश्यता होगी और उनके वश हो जाना पड़ेगा और वीर योद्धा की सहायता लेने से खुद की शक्ति का भरोसा न होने से कायरता प्राप्त होगी । अतः इस प्रकार की अशांति मिटाने के लिए भी परमात्मा की प्रार्थना करना ही उचित मार्ग है। तब किसी ऐसी जगह के ही द्वार क्यों न खटखटाए जाय जहां हमारी सब अशान्तियां दूर होकर वास्तविक सुख प्राप्त हो । वह स्थान परमात्मा की शरण के सिवा अन्य नहीं हो सकता । शान्ति का सच्चा और पूर्ण कारण यही है । इस विषय का विशद और विस्तृत वर्णन अनाथी मुनि के चरित्र वर्णन के प्रसंग में समय २ पर किया जायगा । यहां तो केवल इतना ही कहना है कि ज्ञानी लोग परमात्मा के सिवा अन्य किसी से अपने दुःख दूर करवाना नहीं चाहते ।

भगवान् शांतिनाथ का नाम लेने से शांति कैसे प्राप्त हो सकती है यह बात कथा द्वारा बताई जाती है । कथा द्वारा बताने से स्त्री बाल वृद्ध आदि सब लोग सुगमता से समझ सकेंगे । भगवान् शांतिनाथ के पिता हस्तिनापुर में राज्य करते थे। उनका नाम महाराज विश्वसेन था । वे कोरे नाम के ही विश्वसेन न थे किन्तु विश्व को शाति पहुचाने के लिए प्रयत्न किया करते थे । वे विश्व-ससार के मित्र थे । वे रात दिन सोचा करते थे कि मैं अच्छे २ अच्छे पदार्थ भोगने के लिए राजा नहीं बना हू किन्तु मुझ में जो शक्ति मौजूद है वह खर्च करके प्रजा को शान्ति पहुचा सकू तब सच्चा राजा कहलाऊं । वे हर क्षण संसार को शांति पहुचाने का विचार किया करते थे । यही कारण है कि उनके यहां साक्षात् शांति के अवतार भगवान् शांतिनाथ का जन्म हुआ था ।

महाराजा विश्वसेन के विचारों पर आप लोग भी गौर कीजिये । आप शान्ति दायक पुत्र चाहते हैं या अशान्ति दायक ? चाहते तो होंगे आप भी शान्तिदायक ही। शान्तिदायक पुत्र प्राप्त करने की इच्छा वालों को स्वयं कैसा बनना चाहिए ? दूसरों को शान्ति प्रदान करने वाले या दूसरों की शान्ति में अशान्ति उत्पन्न करने वाले ? यदि अशान्तिदायक बनोगे तो पुत्र भी अशान्तिदायक ही उत्पन्न होगा । जैसी बेल होती है उसका फल भी वैसा ही होता है । " बोये पेड़ बबूल के आम कहां से होय । "

एक आदमी दूसरे देश में गया । उसके देश में इन्द्रायण का फल नहीं होता था अतः उसने कभी वह फल देखा [illegible] । नये देश में इन्द्रायण का फल देख

कर वह बहुत प्रसन्न हुआ। प्रशंसा करने लगा कि यह कैसा सुन्दर देश है। यहां जमीन पर पड़ी हुई बेल में ही ऐसे सुन्दर फल लगते हैं। मेरे देश में तो ऊँचे वृक्ष पर ही फल लगते हैं। उस वक्त उसे भूख लग रही थी अतः एक फल तोड़कर खाया। किन्तु फल उसे कड़ुआ लगा। वह थू थू करता हुआ सोचने लगा कि इतने सुंदर फल में यह कड़ुआपन कहाँ से आ गया ? यह सोचकर कि देखूं फल कड़ुआ है पर पत्ते कैसे हैं, उसने पत्ते चखे। पत्ते भी कड़ुए निकले। फिर उसने फूल चखा तो वह भी कड़ुआ मालूम हुआ। अन्त में उसने उस बेल का मूल (जड़) चखा। बड़े दुख के साथ उसने अनुभव किया कि उस बेल का मूल भी कड़ुआ ही था। उस व्यक्ति ने निर्णय किया कि जिसका मूल ही कड़ुआ होगा उसके सब अंश कड़ुए ही होंगे।

सारांश यह है कि आप लोग अपने पुत्र को तो शान्तिदायक पसन्द करते हैं किन्तु खुद को भी तपासिये कि आप स्वयं कैसे हैं ? कोई अच्छे कपड़े पहन कर अच्छा बनना चाहे तो इससे उसकी अच्छा बनने की मुराद पूरी नहीं हो जाती। कपड़ों के परिवर्तन करने से या सुन्दर साज सजाने से आत्मा अच्छा नहीं बन जाता। इससे तो शरीर अच्छा लग सकता है। यदि खुद के आत्मा में दूसरों को शान्ति पहुंचाने का गुण होगा तभी मनुष्य अच्छा लगेगा और तभी संतान भी शान्तिदायिनी हो सकती है।

महाराजा विश्वसेन सब को शांति पहुँचाने के इच्छुक रहते थे इसी से उनकी रानी अचिरा के गर्भ में भगवान् शान्तिनाथ ने जन्म धारण किया। जिस समय भगवान् शांतिनाथ गर्भ में थे उस समय महाराजा विश्वसेन के राज्य में महामारी का भयंकर प्रकोप हुआ। प्रजा महामारी का शिकार होने लगी। यह देख सुन कर महाराजा बहुत चिन्तित हुए और विचार करने लगे कि जिस प्रजा की रक्षा और वृद्धि के लिए मैंने इतने कष्ट उठाये हैं वह किस प्रकार काल कवलित हो रही है। मेरी कितनी कमजोरी है कि जो मेरे सामने मरती हुई प्रजा का मैं रक्षण नहीं कर पाता हूँ। इस प्रकार महामारी का प्रकोप होना और प्रजा का विनाश होना केवल प्रजाके पापों का ही परिणाम नहीं है किन्तु मेरे पापों का भी परिणाम है। जो कुछ हो, मुझे पाप पाप करके ही न बैठे रहना चाहिए किन्तु ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे प्रजा की रक्षा हो और उसे शान्ति प्राप्त हो। यदि मेरे शरीर से यह कार्य न हो सके तो फिर इस शरीर का धारण करना ही व्यर्थ है। मैं निश्चय करता हूं कि अब प्रजा में कोई नया रोगी न होगा और जो रोगी हैं वे जब तक अच्छे न हो जायगें तब तक मैं अन्न जल ग्रहण न करूँगा।

महाराजा विश्वसेन ने इस प्रकार सत्याग्रह या अभिग्रह किया, वह अपने निजी स्वार्थ हित के लिये नहीं किन्तु जनता के हित के लिए किया था। जन हित के लिए इस प्रक का दृढ़ निश्चय करके महाराजा परमात्मा के ध्यान में बैठ गये। ध्यान में यह विचारने ल कि मेरे किस पाप के कारण यह महामारी उपस्थित हुई है और प्रजा मरने लगी है। मे किस कमी या असावधानी के कारण प्रजा को यह दुःख सहन करना पड़ रहा है।

जो अपने दुःख का तो दुःख समझता है किन्तु दूसरों के दुःख को महसूस नं करता वह धर्म का अधिकारी नहीं हो सकता। वस्तुतः धर्म का अधिकारी वह है ज अपने दुःखों की चिन्ता न करे किन्तु दूसरों के दुःखों को दूर करने की कोशिश करे। दूसरों व सुखी देखकर प्रसन्न हो और दुःखी देखकर दुःखी हो वही सच्चा धर्माधिकारी है। यदि आ धर्मात्मा बनने की ख्वाहिश रखते हैं तो यह निश्चय करिये कि हे दीनानाथ! हम हमा दुःख सहन कर लेंगे किन्तु अज्ञानी लोग जो कि दुःख से घबड़ाते हैं उसको सहन न करेंगे उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न करेंगे। "अत्तसमं मन्निज्ज छप्पि काये" अर्थात् पृथ्वी, पानी अग्नि, वायु, वनस्पति और चलते फिरते त्रस जीव इन छः काया के जीवों को अपन आत्मा के समान मानना चाहिए। ज्ञानी जन ही यह विचार कर सकता है कि कोई प्राणी दुः से पीड़ित न हो। अज्ञानी लोग ऐसा विचार नहीं कर सकते।

महाराजा विश्वसेन अन्न जल त्याग का अभिग्रह ग्रहण कर के परमात्मा के ध्या में तल्लीन होकर बैठे हुए थे। उधर महारानी अचिरा भोजन करने के लिए पतिदेव की प्रतीक्षा कर रही थीं। भारतीय सभ्यता के अनुसार पतिव्रता स्त्री पति के भोजन करने से पूर्व भोजन नहीं करती है। गुजराती भाषा में कहावत है कि '**माटी पहली वैयर खाय तेनो जमारो एले जाय**' आज भी भले घरों की स्त्रियाँ पति के भोजन करने के पहले भोजन नहीं करती किन्तु पति के भोजन कर चुकने पर भोजन करती है।

भोजन करने का समय हो चुका था और भोजन भी तैय्यार था फिर भी महाराज के न पधारने से महारानी अचिरा ने दासी को बुलाकर उससे कहा कि तू जाकर महाराज से अर्ज कर कि भोजन तय्यार है। राजा को भोजन निश्चित समय पर ही करना चाहिए ताकि शरीर रक्षा हो और शरीर रक्षा होने से प्रजा की भी रक्षा हो सके। दासी महाराज के पास गई किन्तु उन्हें ध्यान में तल्लीन देखकर बोलने की हिम्मत न कर सकी। साधारण लोगों को तेजस्वी महापुरुषों की ओर देखने की हिम्मत न होती है। तेजस्वियों के मुख से एक प्रभा मण्डल निकलता है जिसके कारण साधारण आदमी उनकी ओर नहीं देख सकता।

दासी महाराजा मिथिलेश का ध्यान भंग न कर सकी। वह दूर से ही धीरे धीरे कहने लगी कि भोजन तैयार है, आप भोजन करने के लिए पधारिये। उसका शब्द इतना धीमा था कि वह महाराजा के कान में पड़ा हो या न पड़ा हो। महाराजा का ध्यान भंग न हुआ। वे तो ध्यान में यही सोच रहे थे कि हे प्रभो! मेरे किस पाप के उदय के कारण मेरी प्यारी प्रजा महामारी का शिकार बन रही है। मैं राजा हूं। प्रजा मुझे पिता कहती है, मेरे पैरों पड़ती है। और अपनी शक्ति मुझे सौंपती है। फिर उसका कल्याण न कर सकूं तो मुझ पर बड़ा भार पड़ता है।

राजकोट श्री संघ के सेक्रेटरी मुझसे कहने लगे कि महाराज! आप यहां क्या पधारे हैं, हमारे लिए तो साक्षात् गंगा अवतीर्ण हुई है। मैं कहता हूं कि गंगा तो यहां का श्री संघ है। यहां का संघ या जनता मुझको जो मान बड़ाई प्रदान करता है उससे मुझ पर भार पड़ता है, मेरी जिम्मेदारी बढ़ती है। यदि मैं यहां की जनता का वास्तविक कल्याण न कर सकूं तो आपका दिया हुआ मान मुझ पर भार ही है। आप लोग बैंक में रुपये रखते हैं। बैंक का काम आपके रुपयों की रक्षा करना है। यदि वह रक्षा न करे तो उस पर भार है। बैंक तो कभी दिवाला भी निकाल दे किन्तु क्या हम साधु लोग भी दिवाला निकाल देते हैं। आप लोग हम साधुओं के लिए कल्याण मंगल आदि शब्द कहते हैं। हमारा ऊपरी साधु वेष देखकर ही आप लोग ऐसा कहते हैं। कल्याण मंगल आदि शब्द कहला कर भी यदि हम आपका कल्याण न करें तो सचमुच हम पर भार पड़ता है। आपके दिए हुए मान के बदले में हमारा कुछ कर्तव्य हो जाता है और वह आपके लिए कल्याण कार्य करना ही है।

यह तो हम साधुओं की बात हुई। अब आपकी बात कहता हूं। आप भी तीर्थ कहलाते हैं। तीर्थ उसे कहते हैं जो दूसरों को तैराकर उतारे। दूसरों को वही तार सकता है जो खुद तरता है। जो स्वयं न तरता हो वह दूसरों को क्या तारेगा। रेल यदि आप लोगों को अपने में बैठाकर दूसरी जगह न पहुंचाये तो क्या आप उसे रेल कहेंगे। इसी तरह तीर्थ होकर भी यदि दूसरों को न तारो तो तीर्थ कैसे कहला सकते हो। दूसरों को तभी तार सकते हो जब स्वयं तरो।

एक भाई का मुंह जलता था। मैंने पूछा क्या बीड़ी पीते हो? उसने उत्तर दिया, जी हां पीता हूं। मेरे पीछे यह दुर्व्यसन लग गया है। मैंने कहा कि भगवान् महावीर के श्रावक होकर आपमें यह कमजोरी कैसी। बिना कष्ट सहन किये कोई कार्य नहीं होता।

कष्ट सहन करके भी यदि इस दुर्व्यसन को तिलाञ्जली दे सको तो इसमें तुम्हारा और दोनों का कल्याण है। आपके तीर्थङ्कर के माता पिता जगत् के कल्याण के लिए त्याग देते हैं और आप बीड़ी जैसी तुच्छ वस्तु को भी न छोड़ सकें यह मुझ पर धिक्कार है। मैं इस विषय में क्या कहूं। यदि आप लोग बीड़ी पीना छोड़ दें तो मैं कह सकता हूं कि राजकोट का सब बीड़ी नहीं पीता है।

बीड़ी पीने वाले कहते हैं कि बीड़ी पीने से दस्त साफ आता है। पेट में किसी प्रकार की गड़बड़ नहीं रहती। पहले से लोग पीते आये हैं अतः हम भी पीते हैं। यदि यह कथन ठीक है तो मैं पूछता हूं कि बहिनें बीड़ी क्यों नहीं पीतीं। उन से यदि बीड़ी पीने के लिए कहा जाय तो वे यही उत्तर देंगी कि हम क्यों पीयें, हमारी बलाय पीवे। स्त्रियाँ ऐसा कहती हैं और आप लोग पगड़ी बांधने वाले पुरुष होकर उनकी बलाय बनते हैं। क्या यह ठीक है। पेट साफ रहता है आदि कथन बीड़ी पीने का बहाना मात्र है। बीड़ी पीने से लाभ नहीं होता। बीड़ी न पीने से किसी प्रकार की हानी होगी तो इस बात की मैं जिम्मेवारी लेता हूं। मैं कहता हूं कि बीड़ी न पीने से किसी भी प्रकार की हानि न होगी। अतः भाइयों! बीड़ी पीना छोड़ दीजिये। डाक्टरों का कहना है कि तमाखू में निकोटाइन नामक जहर रहता है जो पेट में जाकर भयंकर हानि पहुंचाता है। डाक्टरों का यह भी कहना है कि एक बीड़ी में जितनी तमाखु होती है यदि उसका अर्क निकाला जाय तो उससे सात मेंढ़क मर सकते हैं। इस प्रकार हानि पहुंचाने वाली तमाखू से क्या लाभ हो सकता है। हाँ, हानि अवश्य होती है। आप की देखा देखी आपके बच्चे भी बीड़ी पीने लगते हैं। आपके फैंके हुए टुकड़े को उठाकर बच्चे पीते हैं और इस बात की बातें करते हैं कि हमारे पिताजी जिस बीड़ी को दिन में कई बार पिया करते हैं उसमें क्या मजा भरा हुआ है। बीड़ी त्याग देना ही उचित है। जो लोग बीड़ी नहीं पीते हैं वे धन्यवाद के पात्र हैं। जो पीते हैं उनसे हमारा अनुरोध है कि वे इसे छोड़ दें। बीड़ी दुःख का कारण है। ऐसे दुःख के कारणों को आप परमात्मा के समर्पित करने आओ। इससे आपकी आत्मा में आनन्द की वृद्धि होगी। मैं दिल्ली में अमृतसर गया था। वहां तमाखू पीने का बहुत रिवाज है। यहाँ तक कि बहुतसी स्त्रियाँ भी बीड़ी पीती हैं। मैंने तमाखू त्यागने का उपदेश दिया। उस उपदेश से हजारों भाई बहिनों ने तमाखू पीना छोड़ दिया। [illegible] मुझे यह मालूम हुआ कि एक मुसलमान भी [illegible] यह कहता कि मैं [illegible] तमाखू नहीं पीता है, मैं [illegible] है। जब वह मुसलमान दुबारा मुझ

गर्भ का भोजन माता के भोजन पर निर्भर होता है। जब माता भूखी होती है तब गर्भ को भी भूखा रहना पड़ता है। वैद्यक शास्त्र में कहा है कि गर्भ की माता प्रथम पहर में नहीं खाती लेकिन द्वितीय पहर का उल्लंघन नहीं कर सकती। इसके उपरान्त गर्भवती के भूखी रहने से गर्भ पर उसमे दया नहीं हो सकती। प्रथम अहिंसा व्रत मे 'भत्तपाण वुच्छेए' अर्थात् भोजन और पानी का विच्छेद करना-अन्तराय डालना अतिचार कहा गया है। यदि गर्भवती तपस्या करके भूखी रहेगी तो बलात् गर्भ को भी भूखे रखना पड़ेगा और इस तरह वह गर्भ पर दया नहीं कर सकती। आप लोग संवत्सरी का उपवास करते हैं। क्या उस दिन घरमें रही हुई गाय को भी उपवास कराते हैं या घास डालते हैं? स्वयं चाहे उपवास करो किन्तु गाय को तो घास डालते ही हो। यदि गाय को घास न डालो तो 'भत्तपाण वुच्छेए' नामक अतिचार लगेगा। और इस प्रकार दया का लोप होगा। गर्भवती को भूखा रहने से गर्भ को भूखा रहना पड़ेगा और इस तरह गर्भ की दया न रहेगी। भगवती सूत्र में कहा है कि गर्भ का भोजन वही है जो माता का भोजन है। अतः गर्भवती को तपस्या करके गर्भ को भूखा नहीं रखना चाहिए।

महारानी अचिरा महाराज के पास गई। उसने देखा कि महाराज ध्यान मग्न हैं। उसने कहा, मेरी सखी ठीक ही कहती थी और ऐसी अवस्था में उसकी क्या हिम्मत हो सकती थी कि वह महाराजा का ध्यान भंग करती। रानी ने अपने अधिकार का खयाल करके कहा कि हे महाराज! आज आप इस प्रकार ध्यानमग्न अवस्था में क्यो बैठे हुए हैं। किस बात की चिन्ता में लीन हैं। चिन्ता का क्या कारण है। यदि चिन्ता का कोई कारण है तो वह मुझे बताइये और यदि कारण नहीं है तो चलिये भोजन करिये। भोजन का समय हो चुका है।

महारानी की बात सुन कर महाराज का ध्यान भंग हुआ। महारानी को देख कर उन्होंने सोचा कि महारानी नीचे खड़ी रहे और मैं सिंहासन पर बैठा रहूं यह ठीक नहीं है। उसी समय उन्होंने भद्रासन मंगवाया और उस पर महारानी को बिठाया।

जिस घर में पति पत्नी को और पत्नी पति को आदर सत्कार नहीं देते, समझ लेना कि उन्होंने धर्म का महत्व नहीं समझा है। जहां पारस्परिक आदर सत्कार देने का नियम भी न पाला जाता हो वहां अन्य नियमों की बात ही क्या करना।

संसार का सब से बड़ा पाया छन्न पड़ती । लेकिन आज इस पद्धति की
दुर्दशा हो रही है ।

महाराज ने कहा कि आज मैं किसी विचार में डूब गया था । अतः भोजन करने का भी खयाल न रहा । कहिये आपने तो भोजन कर लिया है न ! महारानी ने कहा, क्या मैं आपके पूर्व ही भोजन कर लेती । महाराजा ने कहा—हाँ, आप गर्भवती हैं । अतः आपको भूखी न रहना चाहिए । हम पुरुष हैं । हम पर राज्य के अनेक कठिन कामों का बोझा है । आप स्त्री हैं और आप पर गर्भ रक्षा का बड़ा भारी बोझा है । इसकी हर प्रकार रक्षा करना आपका कर्तव्य है । निमित्तिये ने कहा था कि आपके गर्भ में महापुरुष है । अतः आपको भूखी न रहना था ।

महाराजा की बात के उत्तर में महारानी ने कहा कि मेरे गर्भ में महापुरुष है तो इसकी चिन्ता आपको भी तो होनी चाहिए । न मालूम आज आप किस चिन्ता में पड़े हुए हैं । अपनी चिन्ता का कारण मुझे भी तो बताइये । महाराजा ने कहा कि हे रानी ! आज मुझे बहुत बड़ी चिन्ता हो रही है । 'प्राण जाय पर प्रण नहीं जाई' के अनुसार आज मुझे निर्वाह करना है । मुझे प्रजा की रक्षा करने विषयक चिन्ता है । आप इस चिन्ता का कारण जानने की उलझन में न पड़ो । पहले जाकर भोजन करलो । रानी ने उत्तर दिया कि हे महाराज ! जिस प्रकार प्रजा रक्षा के नियम पर आप अटल हैं उसी प्रकार मैं भी आपके भोजन किए बिना भोजन न करने के नियम पर अटल हूं । आप को प्रजा रक्षा की चिन्ता है मगर कृपा कर के मुझे भी यह बतलाइये कि किस बात के कारण चिन्ता है । रानी का आग्रह देखकर महाराजा विश्वसेन असमंजस में पड़गये । कुछ देर सोच कर बोले कि महारानी ! मेरे राज्य में महामारी रोग फैला हुआ है और प्रजा मर रही है । प्रजा में बहुत भय छाया हुआ है । कौन कब मर जायगा इस का कुछ भी विश्वास नहीं है । सारी प्रजा में त्राहि त्राहि मची हुई है । अतः मैंने प्रतिज्ञा ली है कि जब तक प्रजा का यह कष्ट दूर न होगा, मैं अन्न जल ग्रहण न करूंगा । महारानी ने उत्तर दिया कि जो प्रतिज्ञा आपकी है वह मेरी भी है । मैं आपकी अर्धांगना हूं । जो पुरुष स्त्री की शक्ति को विकसित नहीं होने देता वह अपनी ही शक्ति का ह्रास करता है । स्त्री को पतिपरायणा और धर्मनिष्ठ बनाने के लिए पति को भी कुछ त्याग करना पड़ता है । पति को नियमों-नियम का पालन करना पड़ता है ।

महारानी ने कहा—मैं केवल भोजन करने के लिए

आपके कर्त्तव्य में हिस्सा बटाने के लिए रानी हूं। जो जवाबदारी आपके सिर पर है मेरे सिर पर भी है। सीता को वनवास करने के लिए किसी ने नहीं कहा था। न पर वनवास करने की जिम्मेवरी ही थी। फिर भी सीता वन गई थी। क्योंकि उन्होंने अनुभव किया था कि जो जवाबदारी मेरे पति पर है वह मुझ पर भी है। अतः प्रजा को आप पुत्रवत् मानते हैं वह मेरे लिए भी पुत्रवत् है। जो प्रतिज्ञा आपने ली वह मेरे लिए भी है।

रानी का कथन सुनकर महाराजा ने कहा कि महारानी आप गर्भवती हैं आपके लिए अन्न जल त्यागना ठीक नहीं है। रानी ने कहा आप चिन्ता मत करिये। प्रजा पर आई हुई आफत गई ही समझिये। रानी के मन में कुछ विचार आये। विचारों के सम्बन्ध में कहने का समय नहीं है। इतना अवश्य कहता हूं कि लोग बा बातों का विचार करते हैं और बाहरी बातें ही देखते हैं। किन्तु खयाल करना चाहिये बाहरी बातों के सिवाय आन्तरिक बातें भी हैं और उनका प्रभाव बहुत अधिक है। पर विचार करना चाहिये।

'अब आप प्रजा में से रोग गयाही समझिये' कहकर रानी ने स्न किया और हाथ में जल पात्र लेकर महल पर चढ़गई। उस समय उनकी आंखों में अ ज्योति थी। वे हाथ में जल लेकर कहने लगी कि यदि मैंने पवित्रता से पतिव्रता धर्म पालन किया हो, मेरे गर्भ में महापुरुष हो, तथा मैंने कभी झूठ कपट का सेवन न कि हो तो हे रोग! तू मेरे पति की रक्षा के लिए गर्भस्थ बालक के प्रभाव से चला जा। यह कह कर रानी ने पानी छिड़का। रानी के द्वारा पानी छिड़कते ही प्रजा में से रो महामारी चली गई।

महारानी ने जो पानी छिड़का था उसमें महामारी को भगाने की शक्ति नहीं थी वह शक्ति रानी के शील में थी। पानी कोई भी छिड़क सकता है। पानी छिड़कने मात्र से रोग नहीं चले जाते। पानी छिड़कने के पीछे सदाचार की शक्ति चाहिये। सुना कि महात्मा प्रताप का भाला उदयपुर में रखा है। दो आदमियों के उठाने से वह उठ है। वह भाला प्रताप का है। उसके उठाने के लिए प्रताप की सी शक्ति चाहिए। इस प्रकार पानी के साथ शील के पानी की भी जरूरत है।

रानी के छींटे डालकर महारानी चारों ओर महाशान्ति की तरह देखने लगी। चारों

और देखती हुई वे उस तरह ध्यान मग्न हो गई जिस तरह राजा हुए थे। रानी इस प्रकार ध्यान मग्ना थीं कि इतने में लोगों ने महाराजा से आकर कहा कि महामारी के रोगी अच्छे होगये हैं और अब प्रजा में शांति बरत रही है। राजा विचार कर रहे थे कि रानी गर्भवती है अतः भूखे रखने से गर्भ को न मालूम क्या होगा किन्तु यह समाचार सुनकर प्रसन्न हुए और गर्भस्थ आत्मा का ही यह चमत्कारिक प्रभाव है, ऐसा माना। रानी के गर्भ में रहे हुए महापुरुष के प्रताप से ही प्रजा में शांति छायी है। महाराजा ऐसा सोच रहे थे कि इतने में दासी ने आकर कहा कि महारानी देवी या शक्ति की तरह महल के ऊपर खड़ी हैं। इस समय की उनकी मुद्रा के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। दासी से यह समाचार सुनकर महाराजा रानी के पास दौड़े गये और कहने लगे कि हे देवि! अब क्षमा करो। अब प्रजा में शांति है। आपके प्रताप से सब रोग दूर हो गये हैं।

बन्धुओं! राजा रानी को इस प्रकार बढ़ावा देते हैं, उनकी कदर करते हैं। आप लोगों के घरों में इसके विपरीत तो नहीं होता है न! ज्ञातासूत्र में मेघकुमार के अधिकार में यह पाठ आया है कि "उरालेणं तुम्हे देवी सुविणे दिट्ठे" आदि। मेघकुमार की माता स्वप्न देखकर जब पतिदेव को सुनाने गई थी तब उनके द्वारा कहे हुए ये प्रशंसा वचन हैं। स्त्री और पुरुष को परस्पर किस प्रकार ऊंची सभ्यता से बर्ताव करना चाहिए उसका यह नमूना है। शास्त्र में पारस्परिक बर्ताव में कैसी सभ्यता दिखानी चाहिए, शिक्षा दी हुई है। यदि शास्त्र ठीक ढग से सुनाये और सुने जाय तो बहुत कुछ सुधार हो सकता है। मेघकुमार के पिता ने कहा कि हे रानी तुमने जो स्वप्न देखे हैं वे बहुत उदार, सुखकारी तथा मंगलकारी हैं। इन स्वप्नों के प्रताप से तुम को राज्य और पुत्र का लाभ होगा। रानी को लाभ होने से राजा को लाभ है ही। फिर भी ऐसा न कहा कि मुझे लाभ होगा। किन्तु यह कहा कि रानी तुझे लाभ होगा।

महाराजा विश्वसेन ने प्रजा में शान्ति होने का सारा यश रानी के हिस्से में ही बताया और स्वयं यश के भागी न बने। रानी बोले, अब भोजन करें। रानी ने कहा महाराज इस प्रकार बड़ाई करके मुझ पर बोझा क्यों डाल रहे हैं। मैं तो आपके पीछे हूं। आपके कारण मैं रानी कहलाती हूं। [illegible] राजा नहीं कहलाते। जो कुछ हुआ है वह सब आप [illegible] है वह आपकी प्रदान की हुई है। [illegible] दूसरे को यश का भागी [illegible]

पुन. राजा कहने लगे। हे रानी यदि मेरे प्रताप से प्रजा में शान्ति हुई होती तो जब मैं ध्यानमग्न होकर बैठा था तब क्यों नहीं हुई। अतः जो कुछ हुआ है वह मेरे प्रताप-नहीं किन्तु तुम्हारे प्रताप से हुआ है। आप साक्षात् शक्ति हैं। आपके कारण ही यह सब आनन्द हुआ है। राजा की दलील के उत्तर में रानी ने कहा कि शक्ति शिव की ही होती है। आप शिव हैं तभी मैं शक्ति बन सकी हूं। अत. कृपया मुझ पर यह बोझा न डालिये।

राजा ने कहा-अच्छा, अब मेरी तुम्हारी दोनों की बात रहने दो। इस प्रकार इस बात का अन्त न आवेगा। एक दूसरे को यश प्रदान करने का यह गेंद का सा खेल ऐसे समाप्त न होगा। जैसे गेंद दूसरे को दी जाती है उसी प्रकार यह यश किसी तीसरी शक्ति को दे डालें। इस कीर्ति का भागी तुम हम नहीं है किन्तु तुम्हारे उदर में विराजमान महापुरुष है। उस महापुरुष के प्रताप से ही प्रजा में शान्ति हुई है। यह सब यश हम हमारे पास न रखकर उस महापुरुष को समर्पण कर हल्के बन जाय।

महाराजा और महारानी की तरह आप लोग भी सब यशः कीर्ति परमात्मा को सौंप दो। अपने लिए न रखो। यदि आप ऐसा करें कि हे प्रभो! जो कुछ है वह सब आप ही का है तो कितना अच्छा रहे। विचार इस बात का करना चाहिये कि परमात्मा को अच्छे काम समर्पण करने या बुरे। अच्छे कामों का परिणाम सुनकर मनुष्य को गर्व हो जाता है कि मैंने ऐसा किया है अतः अच्छे कामों का फल ईश्वर के समर्पण कर देना चाहिए। बुरे कामों की जिम्मेवारी खुद पर लेनी चाहिए ताकि भविष्य में बुराई से बचें।

महाराजा की बात सुनकर महारानी ने कहा कि अच्छी बात है जो कुछ शुभ हुआ है वह गर्भ के प्रताप से ही हुआ है। जिसका ऐसा प्रताप है उसका जन्म होने पर क्या नाम रखना चाहिये। राजा ने कहा इस प्रभु के प्रताप से राज्य में शान्ति हुई है अतः शान्तिनाथ नाम रखना बहुत उपयुक्त है। वैसे संसार में जितने भी अच्छे २ नाम हैं वे सब प्रभु के ही नाम हैं। *आपने भगवान् शान्तिनाथ को पहचाना है या नहीं? भगवान् शान्तिनाथ* की मान्यता की इस कहावत के अनुसार तो नहीं जाना है कि "शान्तिनाथ सोलमा नाथ देवे पोतमा, कृपा करे तो कमार का, दया करे तो दाल का,, मीठा मोंगीपुर का, सेर भुंडा हट, उतर जाय गट"। इस प्रकार सांसारिक कामना के लिए भगवान् के नाम का प्रयोग करना ठीक नहीं है। खुद की और संसार की वास्तविक शान्ति के लिए भगवान् का नाम का प्रयोग करना चाहिये। अपनी की हुई सब अच्छाइयां परमात्
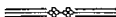
सूत्रारम्भ में मंगल

"कुन्थु जिनराज तू ऐसो नहीं कोई देव तो जैसो.......... ।"

यह भगवान् कुन्थुनाथ की प्रार्थना की गई है । भगवान् की प्रार्थना हम हमारी बुद्धि के अनुसार करें चाहे पूर्व के महात्माओं द्वारा मागधी भाषा में जिस प्रकार प्रार्थना की गई है तदनुसार करें, एक ही बात है । आज मैं उन्हीं विचारों को सामने रखकर प्रार्थना करता हूँ जो पूर्व के महात्माओं ने प्राकृत भाषा में कहे हैं । शास्त्रानुसार परमात्मा की प्रार्थना करना ही ठीक है । शास्त्र में प्रत्येक स्थल पर परमात्मा की प्रार्थना ही है, ऐसा मैं मानता हूँ। मेरी इस मान्यता से किसी का मतभेद भी हो सकता है लेकिन पूरी तरह से विचार करने पर कोई मतभेद नहीं रह सकता । अर्हन्तों के द्वारा कहे हुए द्वादशांगी में से जो ग्यारह अंग इस समय मौजूद हैं, उन में परमात्मा की प्रार्थना ही भरी हुई है । आत्मा से परमात्मा बनने के उपाय ही तो शास्त्रों में वर्णित हैं । आत्म स्वरूप का वर्णन प्रार्थना रूप ही है । भगवान् महावीर ने जगत् कल्याण के लिए निर्वाण से पूर्व जो सब से अन्तिम वाणि कही है वह (उत्तराध्ययन) के नाम से प्रसिद्ध है। इस उत्तराध्ययन सूत्र को यदि

समस्त जैन शास्त्रों का सार कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। इस में छत्तीस अध्ययन हैं।

सारे उत्तराध्ययन सूत्र को क्रमशः आद्योपान्त पढ़ने में बहुत समय की आवश्यकता होती है। अकेले उत्तराध्ययन के लिए यह बात है तो समस्त द्वादशांगी वाणी के लिए बहुत समय शक्ति और ज्ञान की आवश्यकता है। भगवान् की समस्त वाणी को समझाना और समझना हमारी शक्ति के बाहर है। हमारी शक्ति गागर उठाने की है। सागर उठाने की हमारी शक्ति नहीं है। हमारा सद्भाग्य है कि पूर्वाचार्यों ने हम अल्प शक्ति वाले लोगों के लिए भगवान् की द्वादशांगी वाणी रूपी सागर को इस उत्तराध्ययन रूपी गागर में भर दिया है। इस गागर को हम उठा सकते हैं, समझ सकते हैं। पूर्व के उपकारी महात्माओं ने यह प्रयत्न किया है मगर शास्त्रों को समझने की असली कुंजी हमारी आत्मा में है। शास्त्र तो निमित्त कारण है। कागज और स्याही के लिखे होने से जड़ वस्तु है। शास्त्र समझने का वास्तविक कारण—उपादान कारण हमारी आत्मा है। उदाहरण के लिए, सब लोग पुस्तकें पढ़ते हैं किन्तु जिनका हृदय विकसित हो, पूर्व भव के निर्मल संस्कार हों, उन्हीं की समझ में पुस्तकों में रही हुई गूढ़ बातें आती हैं। हर एक की समझ नहीं पड़ती। इसी बात को ध्यान में रख कर कक्षा—दर्जों के अनुसार पुस्तकें बनाई जाती हैं। सातवीं कक्षा में पढ़ाई जाने वाली पुस्तक यदि पहले दर्जे वाले विद्यार्थी को पढ़ाई जाय तो उसकी समझ में कुछ न आयगा।

कारण कि प्रथम कक्षा के विद्यार्थी का दिमाग अभी उतना विकसित नहीं हुआ है। यही बात शास्त्र के विषय में भी है। जिसकी बुद्धि का जितना विकास हुआ होगा उतना ही उसे शास्त्र ज्ञान हासिल हो सकता है। शास्त्र समझने का असली उपादान कारण आत्मा है और जिसका आत्मा जितना निर्मल—वासना रहित होगा उतना ही वह समझ सकेगा। हृदय में धारण करके आचरण में भी उतार सकेगा।

समस्त उत्तराध्ययन का वर्णन करना, उसमें रहे हुए गूढ़ विषयों का भावार्थ समझाना बहुत कठिन है। समय भी अधिक चाहिए सो नहीं है अतः उत्तराध्ययन के बीसवें अध्ययन का वर्णन किया जाता है।

यह बीसवां अध्ययन इस जमाने के लोगों के लिए (नौका) समान है। मानव हृदय में जितनी भी शंकाएं उठती हैं उन सब का समाधान इस अध्ययन में है, ऐसी मेरी

—॥ सूत्रारम्भ में मंगल ॥—

"कुन्थु जिनराज तू ऐसो नहीं कोई देव तो जैसो............ ।"

यह भगवान् कुन्थुनाथ की प्रार्थना की गई है । भगवान् की प्रार्थना हम हमारी बुद्धि के अनुसार करें चाहे पूर्व के महात्माओं द्वारा मागधी भाषा में जिस प्रकार प्रार्थना की गई है तदनुसार करें, एक ही बात है । आज मैं उन्हीं विचारों को सामने रखकर प्रार्थना करता हूँ जो पूर्व के महात्माओं ने प्राकृत भाषा में कहे हैं । शास्त्रानुसार परमात्मा की प्रार्थना करना ही ठीक है । शास्त्र में प्रत्येक स्थल पर परमात्मा की प्रार्थना ही है, ऐसा मैं मानता हूँ । मेरी इस मान्यता मे किसी का मतभेद भी हो सकता है लेकिन पूरी तरह से विचार करने पर कोई मतभेद नहीं रह सकता । अर्हन्तों के द्वारा कहे हुए द्वादशांगी में मे जो स्वल्प अंश इस समय मौजूद है, उन में परमात्मा की प्रार्थना ही भरी हुई है । आत्मा से परमात्मा बनने के उपाय ही तो शास्त्रों में वर्णित हैं । आत्मस्वरूप का वर्णन प्रार्थना ए ही है । भगवान् महावीर ने जगत् कल्याण के लिए निर्वाण से पूर्व जो सब से अन्ति वाणी कही है वह (उत्तराध्ययन) के नाम से प्रसिद्ध है। इस उत्तराध्ययन सूत्र को य

सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ।
अत्थ धम्म गइं तच्चं, अणुसिट्ठिं सुणेह मे।

यह मूल सूत्र है।

गुरु शिष्य से कहते हैं कि मैं तुम्हे शिक्षा देता हूं। तुम्हे मुक्ति का मार्ग बताता हूँ। किन्तु यह कार्य मैं अपनी शक्ति पर ही भरोसा रख कर नहीं करता। सिद्ध और संयतियों को नमस्कार करके, उनकी शरण लेकर, उनके आधार पर यह काम करता हूं।

वैसे तो जहां का मार्ग पूछा जाता है वहीं का मार्ग बताया जाता है किन्तु यहां मुक्ति का मार्ग बताया जाता है। गुरु कहते हैं कि मैं अर्थ धर्म का मार्ग बताता हूं। पहले अर्थ का-अर्थ समझ लेना चाहिए।

अर्थ्यते प्रार्थ्यते धर्मात्मभिरिति अर्थः। स च प्रकृते मोक्षः,
संयमादिर्वा। स एदु धर्मः। तस्य गतिः ज्ञानम्
यस्यां तां अनुशिष्टिं मे शृणुत इत्यर्थः॥

अर्थः—धर्मात्मा लोगों के द्वारा जिसको चाहना की जाय वह अर्थ है। यहां अर्थ से मतलब मोक्ष या संयम से है। मोक्ष या संयम ही धर्म है। उसकी गति या मार्ग ज्ञान है। उस ज्ञान का वर्णन मुझ से सुनो।

जिसकी इच्छा की जाय उसे अर्थ कहते हैं। सामान्य-मोटी बुद्धि वाले लोग अर्थ का मतलब धन करते हैं। और धन के लिए ही रात दिन दौड़ धूप किया करते हैं। किन्तु यहां अर्थ का मतलब धन नहीं है। आप लोग मेरे पास धन लेने नहीं आये हैं। धन का मैं कतई त्याग कर चुका हूं। धन के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु आप चाहते हैं। और वही ग्रहण करने के लिए यहां आये हो। कदाचित् किसी गृहस्थ की यह मंशा हो सकती है कि महाराज के व्याख्यान श्रवण करने से या किसी अन्य बहाने से धन मिल सकता है किन्तु ये सन्त और सतियाँ जो यहां आये हुए है किसी भौतिक पौद्गलिक चाहना से नहीं आये हैं किन्तु परमार्थ की भावना से आये हैं। सन्त और सतियां आई हैं इसी से मालूम होजाता है कि अर्थ का अर्थ धन नहीं किन्तु कोई अन्य वस्तु है। वह अन्य वस्तु मुक्ति से जुदा नहीं हो सकती। मुक्ति संसार के बंधनों से छुटकारा पाने की इच्छा-ही वास्तविक अर्थ है।

धारणा है। इस अध्ययन का वर्णन मैंने पहले बीकानेर में किया था अतः अब पुनः वर्णन करने की जरूरत नहीं है। किन्तु मेरे सन्तों का आग्रह है कि उसी अध्ययन का यहां भी पुनः विवेचन किया जाय। सन्तों के कहने से मैं इसपर व्याख्यान प्रारम्भ करता हूं। इस अध्ययन को आधार बनाकर मैं कुछ कहना चाहता हूं।

उन्नीसवें अध्ययन में मृगापुत्र का वर्णन है। उस में कहा गया है कि साधु महात्माओं को वैद्य डाक्टरों की शरण में न जाकर अपनी आत्मा का ही सुधार करना चाहिए। आत्मा का ही सुधार करना या जगाना इसका अर्थ यह नहीं है कि स्थविर कल्पी साधु वैद्य डाक्टरों की सहायता न ले। स्थविर कल्पी साधु वैद्य डाक्टरों की सहायता ले सकते हैं मगर यह अपवाद मार्ग है। शारीरिक बीमारी मिटाने के लिए दवा दारू देना उत्सर्ग मार्ग नहीं है। उत्सर्ग मार्ग तो यही है कि सिवा भगवान् या अपनी आत्मा या अन्य किसी की सहायता न लेकर आत्म जागृति में ही तल्लीन रहे। इस बीसवें अध्ययन में इसी बात का वर्णन है कि साधु वैद्यों की शरण न ले। वैद्य या अन्य कुटुम्बी कोई भी इस आत्मा का त्राण करने में समर्थ नहीं है। इस अध्ययन में यह बताया गया है कि आत्मा में बहुत शक्ति रही हुई है। भूतकाल में आत्मा कैसी भी स्थिति में रहा हो, वर्तमान में कैसी भी स्थिति में हो और भविष्य में भी कैसी भी स्थिति में रहे इस बात की चिन्ता नहीं किन्तु इस स्थिति का यदि त्याग कर दिया जाय तो आत्मा में अनन्त शक्ति का विकास हो सकता है और वह सब कुछ करने में समर्थ भी हो सकता है।

इस बीसवें अध्ययन में जो कुछ कहा हुआ है उस सब का सार यह है कि खुद के डाक्टर खुद बनो। ऐसा करने से किसी का आसरा (शरण) लेने की आवश्यकता न रहेगी। आत्मा की शक्ति से आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के दुःख—कष्ट दूर हो सकते हैं। [illegible] के विनाश हो जाने पर आत्मा में किसी प्रकार का सन्ताप नहीं रहता। संसार का कोई भी प्राणी सन्ताप नहीं चाहता। कोई भी आत्मा अशान्ति नहीं चाहता। सब कोई शान्ति चाहते हैं। किन्तु शान्ति प्राप्त करने के लिए किस प्रकार के प्रयत्न आज तक किये हैं, यह शास्त्रीय दृष्टि से देखना चाहिए। हमारे प्रयत्नों में यह कमी है कि जिसके कारण ही सुख शान्ति हम से दूर भागती है।

इस बीसवें अध्ययन का वर्णन किस प्रकार किया गया है यह बताते हुए मैं इस अध्ययन की प्रथम गाथा द्वारा परमात्मा की प्रार्थना करता हूं।

सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावश्रो ।
अत्थ धम्म गईं तच्चं, अणुसिट्ठिं सुणेह मे ।

यह मूल सूत्र है ।

गुरु शिष्य से कहते हैं कि मैं तुम्हें शिक्षा देता हूं । तुम्हें मुक्ति का मार्ग बताता हूँ । किन्तु यह कार्य मैं अपनी शक्ति पर ही भरोसा रख कर नहीं करता । सिद्ध और संयतियों को नमस्कार करके, उनकी शरण लेकर, उनके आधार पर यह काम करता हूं ।

वैसे तो जहाँ का मार्ग पूछा जाता है वहीं का मार्ग बताया जाता है किन्तु यहां मुक्ति का मार्ग बताया जाता है । गुरु कहते हैं कि मैं अर्थ धर्म का मार्ग बताता हूं । पहले अर्थ का-अर्थ समझ लेना चाहिए ।

अर्थ्यते प्रार्थ्यते धर्मात्मभिरिति अर्थः । स च प्रकृते मोक्षः, संयमादिर्वा । स एव धर्मः । तस्य गतिः ज्ञानम् यस्यां तां अनुशिष्टिं में शृणुत इत्यर्थः ॥

अर्थः—धर्मात्मा लोगों के द्वारा जिसको चाहना की जाय वह अर्थ है । यहां अर्थ से मतलब मोक्ष या संयम से है । मोक्ष या संयम ही धर्म है । उसकी गति या मार्ग ज्ञान है । उस ज्ञान का वर्णन मुझ से सुनो ।

जिसकी इच्छा की जाय उसे अर्थ कहते हैं । सामान्य-मोटी बुद्धि वाले लोग अर्थ का मतलब धन करते हैं । और धन के लिए ही रात दिन दौड़-धूप किया करते हैं । किन्तु यहां अर्थ का मतलब धन नहीं है । आप लोग मेरे पास धन लेने नहीं आये हैं । धन का मैं कतई त्याग कर चुका हूं । धन के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु आप चाहते हैं । और वही ग्रहण करने के लिए यहां आये हो । कदाचित् किसी गृहस्थ की यह शंका हो सकती है कि महाराज के व्याख्यान श्रवण करने से या किसी अन्य बहाने से धन मिल सकता है किन्तु ये सन्त और सतियाँ जो यहां आये हुए हैं किसी भौतिक पौद्गलिक चाहना से नहीं आये हैं किन्तु परमार्थ की भावना से आये हैं । सन्त और सतियां आई हैं इसी से मालूम होजाता है कि अर्थ का अर्थ धन नहीं किन्तु कोई अन्य वस्तु है । वह अन्य वस्तु मुक्ति से जुदा नहीं हो सकती । मुक्ति संसार के बंधनों से छुटकारा पाने की इच्छा-ही वास्तविक अर्थ है ।

जिसकी इच्छा की जाय वह अर्थ है। किन्तु इस में इतना और बढ़ा देना चाहिए कि धर्मात्मा लोग जिसकी इच्छा करें वह अर्थ है। धर्मात्मा लोग धर्म की ही इच्छा करते हैं। अतः सिद्ध हुआ कि यहां अर्थ का मतलब धर्म है। आगे और स्पष्ट कहा है कि धर्म रूपी अर्थ में जिससे गति होती है वह शिक्षा देता हूं। धर्म रूपी अर्थ में ज्ञान से गति होती है। ज्ञान द्वारा ही धर्म रूपी अर्थ प्राप्त किया जा सकता है। अतः सारे कथन का यह भावार्थ निकलता है कि मैं ज्ञान की शिक्षा देता हूं। ज्ञान प्रकाश है और अज्ञान अन्धकार। ज्ञान रूपी प्रकाश से आत्मदेव के दर्शन सुलभ हैं।

ज्ञान का अर्थ भी बड़ा लम्बा होता है। संसार-व्यवहार का ज्ञान भी ज्ञान ही कहलाता है। आधुनिक भौतिक विज्ञान भी ज्ञान ही है। किन्तु यहां कहा गया है कि धर्म रूपी अर्थ में गति कराने वाले तत्त्व का ज्ञान देता हूं। अर्थात् संसार प्रपंच का ज्ञान नहीं देता किन्तु तत्त्व का ज्ञान देता हूं। यह ज्ञान शिष्य में भी मौजूद है मगर जागृत अवस्था में नहीं है, दबा हुआ है। उस छिपे हुए ज्ञान को मैं प्रकट करने की कोशिश करूंगा। शिक्षा देकर उस ज्ञान को जगाऊंगा।

दीपक में तेल भी हो और बत्ती भी हो किन्तु यदि अग्नि का संयोग न हो तो दीपक जल नहीं सकता। प्रकाश नहीं कर सकता। इसी प्रकार हर आत्मा में ज्ञान रूपी प्रकाश मौजूद है मगर गुरु अथवा महापुरुष के सत्संग बिना विकसित नहीं हो सकता। महापुरुष का सत् समागम हमारे ज्ञान को विकसित करता है किन्तु ज्ञान हमारे में ही मौजूद है। यदि हमारे में ज्ञान मौजूद न हो तो अनेक महापुरुष मिल कर भी कुछ नहीं कर सकते। ज्ञान, बीज रूप में आत्मा में विद्यमान है। महापुरुष रूपी बाह्य निमित्त कारण के मिलने से बीज वृक्ष का रूप धारण करता है और फलता-फूलता है। यदि दीपक में न तेल हो और न बत्ती हो तो दूसरे दीपक से मिलने पर भी वह जल नहीं सकता। तेल बत्ती होने पर दूसरा दीपक सहायक हो सकता है। यह बात भी है कि [illegible] में [illegible] करने से [illegible] में [illegible] ही [illegible] है। इसी प्रकार यदि आत्मा में ज्ञान शक्ति मौजूद न होती महापुरुष की [illegible] उसके द्वारा दी हुई शिक्षा कुछ भी कारगर नहीं हो सकती।

[illegible] यह कहा गया है कि "मैं शिक्षा देता हूं"। इस से हमें अनेक [illegible]

चाहिए कि हमारे में शक्ति विद्यमान है इसीसे आचार्य हमें शिक्षा देते हैं। ऊसर भूमि में बीज बोने का कष्ट जानबूझ कर महापुरुष नहीं करते। हमारे में अविकसित रूप में रही हुई शक्ति का विकास करने के लिए अथवा राख में दबी हुई अग्नि को गुरु ज्ञान रूपी फूंक से प्रज्वलित करने के लिए हमे गुरु की दी हुई शिक्षा बड़ी सावधानी से सुननी चाहिए।

शिक्षा देने वाले महापुरुष ने कहा है कि--मैं सिद्ध और संयति को नमस्कार करके शिक्षा देता हूं। स्वयं शिक्षक जिन्हें नमस्कार करता हो और बाद में शिक्षा शुरू करता हो उनका स्वरूप समझ लेना आवश्यक है। पहले सिद्ध शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिए। नवकार मंत्र में एक पद में सिद्ध को नमस्कार किया गया है और शेष चार पदों में साधु को नमस्कार किया है। अर्थात् सिद्ध और साधक दोनों को ही नमन किया गया है। यहां भी आचार्य ने सिद्ध और साधक दोनों को नमस्कार किया है।

पहले सिद्ध किसे कहते हैं यह देखलें। 'षिध् बन्धने' धातु से सिद्ध शब्द बना है। इसका अर्थ यह है कि आठ कर्म रूपी बन्धे हुए लकड़ी के भारे को जिसने 'ध्मातम्' यानी शुक्लध्यान रूपी जाज्वल्यमान अग्नि से जला दिया है वह सिद्ध है। अथवा 'षिधुगतौ' से भी सिद्ध शब्द बन सकता है। जिस स्थान पर पहुँच कर फिर वहाँ से नहीं लौटना पड़ता, उस स्थान पर जो पहुँच गये हैं उन्हें भी सिद्ध कहते हैं।

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि सिद्ध होकर भी पुनः संसार में लौट आते हैं। जैसे कहा है:—

ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य, कर्त्तारः परमंपदम्।
गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि भवं तीर्थनिकारतः॥

अर्थात्—धर्मरूपी तीर्थ के कर्त्ता ज्ञानी लोग अपने तीर्थ का पराभव देखकर परम पद को पहुँच कर भी पुनः संसार में लौट आते हैं।

यदि सिद्धि स्थान में पहुँच कर भी वापस संसार में आ जाते हों तो वह वास्तव सिद्धि ही न कहा जायगा। सिद्धि-मुक्ति तो उसे ही कहते हैं कि जहाँ पहुँच कर वापस नहीं लौटना पड़ता। कहा है—

यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

जो कल्याण साधता है, उसकी बराबरी बहुत उपदेश झाड़ने वाले किन्तु आचरण शून्य व्यक्ति कभी नहीं कर सकते। यह संसार अधिकतर न बोलने वालों की सहायता से ही चलता है। मूक सृष्टि के आधार पर ही यह बोलने वाली सृष्टि निर्भर रही है। पृथ्वी पानी आदि के जीव मूक ही हैं। ये मूक जीव ही इस बोलती हुई सृष्टि का पालन करते हैं। इन से यह बात समझ में आ जायगी कि उपदेश न देने वाले महात्मा भी जगत् का कल्याण करते ही हैं। वासनाओं से रहित उनकी शान्त, दान्त और संयत आत्मा से वह प्रकाश-आध्यात्मिक तेज निकला है कि जिससे आधि व्याधि और उपाधि से संतप्त आत्माओं को अपूर्व शांति मिल सकती है।

गुरोस्तु मौनं शिष्यास्तु छिन्न संशयाः

अर्थात्—गुरु के मौन होने पर भी उनकी आकृति आदि के दर्शन मात्र से संशय छिन्न भिन्न हो जाते हैं। नास्तिक से नास्तिक शिष्य भी गुरु की ध्यानावस्थित आकृति से आस्तिक बनने के दृष्टान्त मौजूद हैं। अतः यह बात सिद्ध हो जाती है कि मौखिक उपदेश न देने वाले महात्मा भी जगत का कल्याण करते ही हैं। उनके आचरण से जगत बहुत शिक्षा ग्रहण करता है।

दूसरी बात सिद्ध भगवान मोक्ष गये हैं इसीसे लोग मोक्ष की इच्छा करते हैं। यदि वे मोक्ष न पहुंचते तो कोई मोक्ष की इच्छा नहीं करता। वे महात्मा मन, वचन और काया को साध कर मोक्ष गये और इस तरह संसार के लोगों को अपना आदर्श रख कर मोक्ष का मार्ग बताया। संसार के प्राणियों में मुक्ति की ख्वाहिश पैदा की। अतः उनको शासिता कहा जा सकता है।

'पिधून् शास्ते मांगल्ये वा' में शास्ता के साथ ही साथ जो मांगलिक है वे भी सिद्ध हैं, कहे गये हैं। मांगलिक का अर्थ पाप नाश करने वाला होता है। मां आर्यात् पापं गालयतीति मांगलिक। जो पाप का नाश करने वाले हैं वे सिद्ध हैं।

यहां यह शंका होती है कि जो पाप का नाश करने वाला है, वह सिद्ध है तो बड़े बड़े महात्मा, जो कि पाप के नाश करने वाले थे उनको पाप का उदय कैसे हुआ? उन महात्माओं को रोग तथा दुःख कैसे हुए? गज सुकुमार मुनि के सिर पर खीरे रखे गये और भगवान महावीर को लोहीठाण की बीमारी हुई। क्या उनमें सिद्धों की मांगलिकता न थी?

बात यह है कि कष्ट पाने वाला व्यक्ति कष्ट देने वाले व्यक्ति के प्रति द्वेषपूर्ण भावना लाता है तब तो उसकी मांगलिकता नष्ट होती है। रागद्वेष करने से वह मंगल रूप न रहकर अमंगलरूप बन जाता है। किन्तु जो महापुरुष कष्ट देनेवाले के प्रति प्रेम की वर्षा करता है, उसके लिए सद्भाव रखता है, उसके सुधार की कामना करते हैं, वे सदा मांगलिक ही हैं। गजसुकुमार मुनि ने सिर पर अग्नि के अंगारे रखने वाले का मन में बड़ा उपकार माना कि इस सोमिल ब्राह्मण ने मेरी शीघ्र मुक्ति में बड़ी सहायता की है। तथा भगवान् महावीर ने अपने पर तेजो-लेश्या फेंकने वाले गोशालक पर क्रोध नहीं किया था। वे मंगलरूप ही बने रहे। इस प्रकार उनमें मांगलिकता घटित होती है। पूर्व जन्म के वैर बदले के कारण वेदना या दुःख आदि हो सकते हैं मगर उन वेदनाओं और दुखों में जो अविचल रहता है वह सदा मांगलिक है।

सिद्ध भगवान् में भाव मांगलिकता है। द्रव्य मांगलिकता नहीं है। आप लोग द्रव्य मंगल देखते हैं। जिसमें भाव मंगल हो वह द्रव्य मंगल जन्य चमत्कार दिखा सकता है किन्तु सिद्धि पद को पाने वाले महात्मा ऐसा नहीं करते। न ऊंचे पहुँचे हुए महात्मा ही चमत्कार दिखाने की झंझट में पड़ते हैं। वे अपनी आत्म शांति में मशगूल रहते हैं। यदि उन्हें चमत्कार दिखाने की इच्छा होती तो वे चक्रवर्ती का राज्य और सोलह २ हजार देवों की सेवा का त्याग क्यों करते और संयम क्यों लेते। चमत्कार करने वाले देव ही स्वयं सेवक हों तब क्या कमी रह जाती है।

जिस प्रकार सूर्य की कोई पूजा करता है और कोई उसे गाली देता है। किन्तु सूर्य पूजा करने वाले और गाली देने वाले को समान रूप प्रकाश प्रदान करता है। वह पूजा करने वाले पर प्रसन्न नहीं होता और गाली देने वाले पर अप्रसन्न भी नहीं होता। दोनों पर सम्भाव रखता हुआ अपना प्रकाश प्रदान रूप कर्तव्य करता रहता है। इसी प्रकार सिद्ध भगवान् भी किसी की बुराई पर ध्यान न देते हुए सब का कल्याण करते मंगल करते हैं।

सिद्ध शब्द का पाँचवा अर्थ यह भी होता है कि जिनकी आदि तो है लेकिन अन्त नहीं है।

गुरु महाराज शिष्य से कहते हैं कि मैं ऐसे सिद्ध भगवान् को नमस्कार करके धर्मरूपी अर्थ का सच्चा मार्ग बतलाता हूँ।

सिद्ध को नमस्कार करके सूत्रकार भाव से संयति को नमस्कार करते हैं। संयति शब्द का अर्थ साधु होता है। साधु दो प्रकार के हो सकते हैं। द्रव्य साधु और भाव साधु। यहां शास्त्रकार द्रव्यसाधु को नमस्कार नहीं करते मगर जो भावसाधु हैं उन्हें नमस्कार करते हैं। शास्त्र के रचनेवाले गणधर, चार ज्ञानके स्वामी थे फिर भी वे उनको नमस्कार करते हैं जो भाव से संयति हो। आजकल के साधुओं को ख्याल करना चाहिए कि यदि उनमें भाव साधुता है तो गणधर भी उनको नमन करते हैं। भाव साधुता से ही द्रव्य साधुता शोभती है। कोरा वेष शोभा नहीं देता। गुणों के साथ वेष देदीप्यमान होता है। भाव साधुता न हो तो कुछ भी नहीं है।

इस बीसवें अध्ययन में जो कुछ कहा गया है वह सब शास्त्रकार ने संक्षेप में इस पहली गाथा में ही कह डाला है। पहली गाथा में सारे अध्ययन का सार किस प्रकार दिया गया है यह बात कोई विशेषज्ञ ही समझ सकता है। केवल जैन सूत्रों के विषय में ही यह बात नहीं है किन्तु जैनेतर ग्रन्थों में भी यह परिपाटी देखी जाती है कि सूत्र के आदि में ही सारे ग्रंथ का सार कह दिया जाता है।

मैंने कुरानशरीफ का अनुवाद देखा है। उसमें बतलाया गया है कि १२४ इल्हामी पुस्तकों का सार तौरेत, इंजिल, जबूर और कुरान इन पुस्तकों में समाया गया और इन चारों का सार कुरान में समाया गया है। सारे कुरान का सार उसकी पहली आयत में है:—

बिस्मिल्लाह रहिमाने रहीम

सारे कुरान का सार इस एक ही आयत में कैसे समाया हुआ है। यह बात समझने लायक है, जब कि इस आयत में रहमान और रहीम दोनों आगये तब कुरान में और क्या रह जाता है? हिन्दु धर्म ग्रन्थों में भी कहा गया है कि 'दया धर्म का मूल है'। यद्यपि इस शब्द में केवल दो ही अक्षर हैं किन्तु इसमें धर्म का संपूर्ण सार समाया है। दया में संपूर्ण धर्म का सार आ जाता है, यह बात कुरान, पुराण, वेद या आगम से भी सिद्ध होती ही है मगर हम ही आगम इसका सब से बड़ा प्रमाण है।

मान लीजिये कि आप एक निर्जन जंगल में जा रहे हैं। वहां कोई व्यक्ति नंगी तलवार लेकर आपके सामने उपस्थित होता है और आपकी जान लेना चाहता है। उस समय आप उस व्यक्ति से किस बात की आशा अनुभव करेंगे। यही कि उस व्यक्ति में दया नहीं है। ठीक इसी समय एक दूसरा व्यक्ति उपस्थित होता है और आपको [illegible] के हाथ से

होती है उतने ही चित्रित किये जाते हैं। एक समय में एक का ही चरित्र कहा जा सक है अतः सुदर्शन का चरित्र कहा जाता है।

साधारण तथा शील का अर्थ स्त्री-प्रसंग या अन्य तरीकों से वीर्यनाश न कर लिया जाता है। किन्तु यह अर्थ एकांगी है। शील का पूर्ण अर्थ नहीं है। शील व्याख्या बहुत विस्तृत है। बुरे काम से निवृत्त होकर अच्छे काम में प्रवृत्त होने को शी कहते हैं। कार्य के प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दो अंग हैं बिना प्रवृत्ति के निवृत्ति नहीं। सकती और बिना निवृत्ति के प्रवृत्ति भी शक्य नहीं है। साधु के लिए समिति हो औ गुप्ति न हो अथवा गुप्ति हो और समिति न हो तो काम नहीं चल सकता। समिति औ गुप्ति दोनों की आवश्यकता है। समिति प्रवृत्ति है और गुप्ति निवृत्ति।

यदि सूर्य आपको प्रकाश न दे, पानी प्यास न बुझावे और आग भोजन पकावे तो आप इनकी प्रशंसा न करेंगे। इसी प्रकार यदि महापुरुष अपना ही कल्याण कर ले किन्तु लोक कल्याण के लिए प्रवृत्त न हों तो आप उनको वंदना क्यों करने लगेंगे महापुरुष यदि जगत् कल्याण के कार्यों में भाग न लें तो बड़ा गजब हो जाय। तब संसा न मालूम किस रसातल तक पहुँच जाय।

शील का अर्थ बुरे काम छोड़ कर अच्छे काम करना है। पहले यह देखें कि बुरे काम क्या हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, आवश्यकता से अधिक भोगोपभोग शराब आदि का नशा तथा अन्य दुर्व्यसन ये बुरे काम हैं। बीड़ी, तमाखू, भंग आदि नशीले वस्तुओं का सेवन भी बुरे काम में गिना जाता है। इन सब कामों का त्याग करना शील में बुराई से निवृत्त होना कहा जाता है।

दूसरों के साथ बुरा काम करना अपनी आत्मा के साथ बुराई करना है। दूसरों को ठगना अपनी आत्मा को ठगना है। अतः किसी की हिंसा न करना, किसी से झूठ बात न कहना, किसी की बहन बेटी पर बुरी निगाह न करना किन्तु माँ बहिन समान समझना, दारू से तथा जुआ आदि व्यसनों से बचना, बुरे कामों से बचना है। इन बुरे [illegible] से बचकर दया, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि गुण धारण करना तथा मान दान [illegible] के समान अच्छे कामों में प्रवृत्त होना है। पर स्त्री त्यागी भी यदि स्वस्त्री से ब्रह्मचर्य [illegible] पालन करता है तो वह [illegible] होना और पर दोनों का त्याग करना है वह पू

ील पालने वाला है। शील की यह व्याख्या भी अधूरी है। शील की व्याख्या में पांचों व्रत भी आ जाते हैं।

सुदर्शन सेठ करोड़ों की सम्पत्ति वाला था। फिर भी वह किस प्रकार अपने ील व्रत पर दृढ़ रहा यह यथा शक्ति और यथावसर बताने का प्रयत्न किया जायगा। इस था को सुनकर जो अशुभ से निवृत्त होंगे और शुभ में प्रवृत्त होंगे वे अपनी आत्मा का ल्याण करेंगे तथा सब सुख उनके दास बन कर उपस्थित रहेंगे।

राजकोट
६—७—३६ का
व्याख्यान
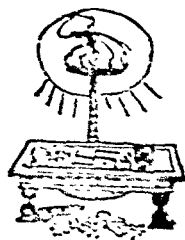
१ नाम महान्—जिसमें महानता का कोई गुण नहीं है किन्तु केवल नाम ए महान् हो वह नाम महान् है। जैन शास्त्रों ने आरम्भ और अन्त समझाने का बहुत प्रयत्न किया है। वस्तु पहले नाम ही से जानी जाती है। मगर नाम जानकर ही न बैठ जाना चाहिए किन्तु उसका स्वरूप भी जानना समझना चाहिए।

२ स्थापना महान्—किसी भी वस्तु में महानता का आरोपण कर लेना स्थापना महान् है।

३ द्रव्य महान्—द्रव्य महान् का अर्थ समझाने के लिए यह दृष्टान्त बताया गया है कि केवल ज्ञानी अन्त समय में जब केवली समुद्घात करते हैं तब उनके कर्म प्रदेश चौदहराजू प्रमाण समस्त लोकाकाश में छा जाते हैं। उस समय उनके शरीर से निकला हुआ कार्माण शरीर रूप महास्कन्ध चौदह राजू लोक में पूर जाता है। यह द्रव्य महान् है।

४ क्षेत्र महान्—समस्त क्षेत्र में आकाश ही महान् है। आकाश लोक और अलोक दोनों में व्याप्त है।

५ काल महान्—काल में भविष्य काल महान् है। जिसका भविष्य सुधरा उसका सब कुछ सुधर गया। भूत काल चाहे जैसा रहा हो वह बीती हुई बात हो गया। अतः भविष्य ही महान् है। वर्तमान तो समय मात्र का है।

६ प्रधान महान्—जो प्रधान-मुख्य माना जाता है। वह प्रधान महान् है। इसके सचित्त, अचित्त और मिश्र ये तीन भेद हैं। सचित्त भी द्विपद, चतुष्पद और अपद के भेद से तीन प्रकार का है। द्विपद में तीर्थंकर महान् हैं। चतुष्पद में सरभ अर्थात् अष्टापद पक्षी महान् है। अपद में पुण्डरीक-कमल महान् है। वृक्षादि अपद जीवों में कमल महान् है। अचित्त महान् में चिन्तामणि रत्न महान् है। मिश्र महान् में शम्प संपदा युक्त तीर्थङ्कर का शरीर महान् है। तीर्थंकर का शरीर तो दिव्य होता ही है किन्तु वे जो वस्त्राभूषणादि धारण करते हैं वे भी महान् हैं। स्थापना के कारण वस्तु का महत्त्व बढ़ जाता है। अतः मिश्र महान् में वस्त्राभूषण युक्त तीर्थंकर शरीर है।

७ प्रतीत्य अपेक्षा महान्—सरसों की अपेक्षा चना महान् है और चने की अपेक्षा बेर महान् है।

गते हैं, अच्छे गहने और कपड़े पहनते हैं, आलीशान बंगलों में निवास करते हैं, उन्हें हान् समझें अथवा किन्हीं दूसरों को।

जैन शास्त्रानुसार इस का खुलासा किया ही जायगा किन्तु पहले भागवत पुराण के अनुसार महापुरुष की व्याख्या समझ लें। भागवत पुराण कहता है कि इस प्रकार की पाधि वालों को महान् नहीं मानना चाहिए। महान् उसे समझना चाहिए जो समचित्त हो। हान् पुरुष का चित्त सम होना चाहिए। शत्रु और मित्र पर समभाव होना चाहिए। जिसका मन आत्मा में हो, पुद्गल में न हो वह समचित्त है और वही महान् भी है।

समचित्त का अर्थ जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही मानना भी है। आत्मा चैतन्य स्वरूप है और जड़ पदार्थ पुद्गल रूप है। इन दोनों को जुदा मानना तथा इनके धर्म भी जुदा २ मानना समचित्त का लक्षण है। कोई यह शंका कर सकता है कि कार्माण शरीर की अपेक्षा से संसारी जीव के पीछे अनादि काल से उपाधि लगी हुई है जिससे यह मेरा कान है, यह मेरी नाक है, यह मेरा मुख है, आदि रूप से जड़ वस्तुओं को भी अपनी मानता है तब वह समचित्त कैसे रहा। यह ठीक है कि उपाधि के कारण जीवात्मा परवस्तु को भी अपनी कहता है लेकिन उपाधिको उपाधि मानना यह भी समचित्त का लक्षण है।

यदि कोई व्यक्ति रत्न को कंकर कहे और कंकर को रत्न कहे तो वह मूर्ख गिना जाता है। जब कि रत्न और कंकर दोनों ही जड़ वस्तु हैं। कोई व्यक्ति जंगल में जा रहा था। भ्रमवश उसने सीप को चांदी मान लिया और चांदी को सीप। उसके मान लेने से सीप चांदी नहीं हो गई और न चांदी ही सीप होगई। किसी के उल्टा मान लेने से वस्तु अन्यथा नहीं हो जाती। किन्तु ऐसा मानने या कहने वाला जगत् में मूर्ख गिना जाता है। इसी प्रकार जड़ को चैतन्य और चैतन्य को जड़ कहने मानने वाले भी अज्ञानी समझे जाते हैं। इसी अज्ञान के कारण जीव मेरा तेरा कहा करता है। जो इस प्रकार की उपाधि में फंसे हैं वे महान् नहीं हैं। वे जड़ पदार्थ के गुलाम हैं। वे आत्मानंदी नहीं कहे जा सकते। महान् वे हैं जो खुद के शरीर को भी अपना नहीं मानते। अन्य वस्तुओं के लिए तो कहना ही क्या। व्यावहारिक भाषा से ज्ञानी जन भी मेरा शरीर, मेरा कान, नाक आदि कहेंगे मगर निश्चय में वे जानते हैं कि ये सब हमारे नहीं हैं। कहने का सारांश यह है कि समचित्त वाले उपाधि को उपाधि मानते हैं।

अब इस बात पर भी विचार करें कि महान् की सेवा किस लिए करें? कोई यह ख्याल करके महापुरुष की सेवा करे कि वे उसके कान में मंत्र फूंक देंगे या सिर पर हाथ धर

देंगे तो वह ऋद्धि शाली हो जायगा महान् पुरुष का अपमान करना है। यह महान पुरुष की सेवा नहीं गिनी जायगी किन्तु माया की सेवा गिनी जायगी। जो इस भावना से महान पुरुष की सेवा करता है कि मैं अनन्त काल से संसार की माया जाल में फंसा हुआ हूँ, अज्ञान के कारण दुःख सहन कर रहा हूँ, जड़ को अपना मान बैठा हूं, इन सब से महापुरुष की सेवा करके छुटकारा पाऊं, उसकी सेवा सफल है। ऐसी सेवा ही मुक्ति का द्वार है।

समभिव वालों को कोई लाखों गालियां दे तो भी उनके मन में किंचित् विकार नहीं आता। कहते हैं कि एक बार पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज रतलाम शहर में सेठजी के बाजार में और शायद उन्हीं के मकान में विराजते थे। उस समय रतलाम बहुत उन्नत शहर माना जाता था, और सेठ मोजाजी भगवान् की खूब चलती थी। पूज्यश्री की प्रशंसा सुनकर एक मुसलमान भाई के मन में उनकी परीक्षा लेने की भावना पैदा हुई। अवसर देखकर वह एक दिन उनके ठहरने के मकान पर उपस्थित हुआ। उस समय पूज्यश्री स्वाध्याय तथा अन्य धर्म क्रियाएं कर रहे थे उस मुसलमान ने जैसी उसके मन में आई वैसी अनेक गालियां दी। उसकी गालियां ऐसी थीं कि सुनने वाले को गुस्सा आये बिना न रहे। किन्तु पूज्यश्री समभिव थे। वे गालियां सुनकर भी विह्वल न हुए। हँसते ही रहे। उनके चेहरे पर किसी प्रकार की तब्दीली के चिह्न नजर न आये। आखिर वह मुसलमान हाथ जोड़ कर पूज्यश्री से कहता है कि आप सचमुच वैसे ही हैं जैसी मैंने आपकी प्रशंसा सुनी है। वास्तव में आप सच्चे फकीर हैं। माफी मांगकर वह चला जाता है।

केवल कहने वाला श्रोताओं को प्रशान्त रहने का उपदेश देना बड़ा सरल है किन्तु प्रशान्त रहने का मौका आवे तब प्रशान्त रहना बड़ा कठिन है। महत्व यह है कि सहन करने के अवसर पर सहन शीलता दिखाना है। कोई पूछ सकता है कि क्या दूसरों की गालियां सुनते रहना और उनकी उद्दण्डता में सहायता करना सहन शीलता है? हाँ, महान् पुरुष वह है जो गालियां सुनते वक्त भी प्रसन्नचित्त रहता है महान् जन गालियों को अपने लिए नहीं मानते। वे उनमें से भी अपने अनुकूल सार बात ग्रहण कर लेते हैं। जब उनसे कोई यह कहे कि "ओ दुष्ट यह क्या करते हो" तब वे अपने मन में कहे हुए दुष्ट विशेषण से भी कुछ न कुछ सद्गुण ग्रहण करते हैं। महान् पुरुष अपने लिये दुष्ट शब्द का प्रयोग सुनकर यह विचार करते हैं कि जिन कर्मों के करने से मनुष्य दुष्ट कहलाता है वे कर्म मुझ में तो नहीं पाये जाते। यदि उनको दिखे कि कोई बात उनमें दुष्ट

हो तो वे आत्म निरीक्षण करके उसे बाहर निकाल फेंकते हैं और दुष्ट कहने वाले का उपकार मानते हैं, किन्तु यदि उन्हें आत्म निरीक्षण के बाद यह ज्ञात हो कि उनमें दुष्ट बनाने की कोई सामग्री नहीं है तो वे ख्याल करके दुष्ट कहने वाले को माफ कर देते हैं कि यह किसी अन्य के लिए कहता होगा अथवा भूल या अज्ञान से कह रहा होगा। अज्ञानी और भूल करने वाले सदा क्षमा करने योग्य होते हैं। मेरे समान वेष भूषा वाले किसी अन्य व्यक्ति को दुष्टता करते देखकर इसने मेरे लिए भी दुष्ट शब्द का व्यवहार किया है। किन्तु इस में इसकी भूल है। यह सोचकर महान् अपनी महत्ता का परिचय देते हैं।

मान लीजिये आपने सफेद साफा बांध रखा है। किसी ने आपको बुलाने के लिए पुकारा कि ओ काले साफे वाले इधर आओ। क्या आप यह बात सुनकर नाराज होंगे? नहीं। आप यही विचार करेंगे कि मेरे सिरपर सफेद साफा है और यह काले साफे वाले को बुला रहा है सो किसी अन्य को बुलाता होगा अथवा यह भी ख्याल कर सकते हैं कि भूल से सफेद शब्द के बजाय काला शब्द इसके मुख से निकल गया है। ऐसा विचार करने पर न क्रोध आवेगा और न नाराज होने का प्रसंग हो। इसके विपरीत यदि आपने यह ख्याल कर लिया कि यह मनुष्य मुझे काले साफे वाला कैसे कहता है, इसकी भूल का मज़ा इसे चखाना चाहिए तो मानना होगा कि आपको अपने सिर पर बांधे हुए सफेद साफे पर विश्वास ही नहीं है।

यदि लोग इस सिद्धान्त को अपना लें तो संसार में झगड़े टंटे हो न रहें। सर्वत्र शांति हो जाय। पिता पुत्र या सास बहू में झगड़े इसी कारण होते हैं कि एक समझता है 'मैं ऐसा नहीं हूँ फिर भी मुझे ऐसा कैसे कह दिया'। इसके बजाय यदि यह समझने लगें कि जब मैं ऐसा हूँ ही नहीं तब इसका ऐसा कहना व्यर्थ है, इस व्यर्थ के [illegible] का कोई कारण [illegible] नहीं हो [illegible] लोग [illegible] की [illegible] करने लगे हैं, अतः [illegible] यह [illegible] और [illegible]

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥

अर्थ—[illegible]

आपके सामने भी मौजूद है। आप धन्यवाद देकर न रह जाइये किन्तु उस चारित्र धर्म पालन कीजिये जिसके पालन से सेठ धन्यवाद के पात्र बने हैं। धन्यवाद दे लेने से भ की भूख न मिटेगी। सुदर्शन के समान आप धर्म पर दृढ़ न रह सको तो भी उसके अंश का तो अवश्य पालन कीजिये। उसका चरित्र सुनकर उसके चरित्र का कुछ अंश यदि जीवन में उतार सको तो आपका दुर्भाग्य मिटेगा और सौभाग्य का उदय होग संसार की सब वस्तुएँ नाशवान् हैं! आप इस अविनाशी धर्म को क्यों नहीं अपनाते आप कहेंगे कि हम सुदर्शन के समान कैसे बन सकते हैं! खैर, सुदर्शन के ठीक स न बनें तो भी उसके चरित्र में से कुछ बातें अवश्य अपनाइये। कोशिश तो सब बातें अ नाने की करनी चाहिए। चींटी यह कहकर अपनी चाल को नहीं रोकती कि मैं ह की बराबरी नहीं कर सकती हूँ। वह हाथी के समान नहीं चल सकती तो भी च लती रहती है और अपने खाने तथा घर बनाने का ऐसा प्रयत्न करती है कि जिसे कर बड़े बड़े वैज्ञानिकों को दंग रह जाना पड़ता है। आप भी अपनी शक्ति व सामर्थ्य अनुसार आगे बढ़ने का प्रयत्न कीजिए!

सुदर्शन की कथा कहने के पूर्व क्षेत्र का परिचय दिया गया है। क्षेत्री का प कराने के लिये क्षेत्र का परिचय आवश्यक है। शास्त्र में भी यही शैली है। वर्णन भगवान महावीर स्वामी का करना था किन्तु प्रसंग से साथ ही चम्पा नगरी का भी व दे दिया है —जैसे

तेणं कालेणं तेणं समएणं चम्पा नामं नयरी होत्था।

सुदर्शन सेठ की कथा कहने पहले वह कहाँ हुआ था यह बताना आवश्यक था। वह बताया गया है।

कोई यह पूछ सकता है कि क्या क्षेत्र के साथ क्षेत्री का कोई सम्बन्ध होता है? हाँ, क्षेत्री का क्षेत्र के साथ बहुत सम्बन्ध होता है। पृथ्वी में क्षेत्र विशेषी प्रकृतियों का असर [illegible] है। एक आदमी [illegible] का निवासी है और दूसरा [illegible] का। क्षेत्र [illegible] होने से [illegible]। यह बात दूसरी है कि कोई अपने विशेष प्रयत्न के द्वारा उस [illegible] को [illegible] करे।

मनुष्य और पशु में जो भेद है वह क्षेत्र के कारण ही है। आत्मा दोनों की समान है। आत्मा समान होने से कोई मनुष्य को पशु या पशु को मनुष्य नहीं कहता। क्षेत्र विपाकी प्रकृति के कारण भेद होता है। इसे भूलाया नहीं जा सकता।

आप भारतीय हैं। भारत में जन्म लेने से भारत का क्षेत्र विपाकी गुण आप में होना स्वभाविक है। आज आप आपकी दस्तार रफ्तार और गुफ्तार कैसी हो रही है। जरा गौर कीजिए। दस्तार यानी कपड़े, रफ्तार यानी पहनावा और गुफ्तार यानी बातचीत। आप भारतीय हैं मगर क्या आपको भारतीय भाषा प्यारी लगती है? प्रिय न लगे तो यह अभाग्य ही है। अन्य देश वाले भारत की प्रशंसा करें और भारतीय स्वयं अपने देश की अवहेलना करें, यह अभाग्य नहीं तो क्या है। आज भारत के निवासी दूसरे देशों की बहुत-सी बातों पर मुग्ध हो रहे हैं वे यह नहीं सोचते कि दूसरे देशों की जिन बातों पर हम मुग्ध हो रहे हैं वे कहां से सीखी हुई हैं। वे बातें भारत से ही अन्य देशों ने सीखी हैं। हम हमारा घर भूल गये हैं। हमारे घर में क्या क्या था यह बात हम नहीं जानते। अब दूसरों की नकल करने चले हैं।

एक आदमी दूसरे आदमी के यहां से बीज ले गया जो कि उसके आंगन में बिखरे पड़े थे उसने बीज लेजा कर बोये तथा वृक्ष और फल फूल तय्यार किए एक दिन पहला व्यक्ति दूसरे के खेत में चला गया। जाकर कहने लगा तुम बड़े भाग्यशाली हो जो ऐसे सुन्दर वृक्ष तथा फल–फूल लगा सके हो। दूसरे ने कहा यह आपही का प्रताप है जो मैं ऐसे वृक्ष लगा सका हूं। आपके यहां से बिखरे हुए बीज मैं ले गया था जिनका यह परिणाम है। यह बात सुनकर पहले आदमी को अपने घर में रखे बीजों का ध्यान आया। इसी प्रकार विदेशों में जो तत्त्व देखे जा रहे हैं वे भारत के ही हैं। हां, वहां के लोगों ने इन तत्त्वों की विशेष खोज-अवश्य की है मगर बीजरूप में वे भारत से ही लिए हुए हैं। दूसरों की बातें देखकर अपने घर को मत भूल जाओ। घर की खोज करो।

सुदर्शन चम्पा नगरी का रहने वाला था। जैन और बौद्ध साहित्य में चम्पा का बहुत वर्णन है। चम्पा का पूरा विवरण उववाई सूत्र में है किन्तु उसमें से तीन बातें कह देने से श्रोताओं को खयाल आ जायगा कि चम्पा कैसी थी। चम्पा का वर्णन करते हुए उववाई सूत्र में कहा गया है:—

तेणं कालेणं तेणं समयेणं चम्पा नामं नगरी होत्था रिद्धीए ठिम्मिए समिद्व

इन तीन विशेषणों से चम्पा का पूरा परिचय हो जाता है। नगर में तीन ब होना आवश्यक है। प्रथम ऋद्धि होना आवश्यक है। हाट, महल, मंदिर, बागबगीचे, त जल स्थल के स्वच्छ निवास ऋद्धि में गिने जाते हैं। किसी नगर में केवल ऋद्धि हो कि यदि समृद्धि न हो तो नगर की शोभा नहीं हो सकती। समृद्धि के न होने से लोग भूखों म रुगें। चम्पा नगरी धन धान्य से समृद्ध थी धन के साथ धान्य की भी आवश्यकता है केवल धन हो और धान्य न हो तो यह कहावत लागू होती है कि:—

सोना नी चलचलाट, अन्ननी कलकलाट।

जीवन निभाने के लिए धान्य की भी पूरी आवश्यकता होती है। धन और धा कहने से जीवनोपयोगी प्राय सब वस्तुएं आजाती हैं। जीवनोपयोगी वस्तुओं के लिए च नगरी किसी की मोहताज न थी। वहा सब आवश्यक चीजें पैदा होती थीं। प्राचीन सम में भारत के हर ग्राम में जीवनोपयोगी चीजें पैदा होती थीं और इस दृष्टि से भारत का ग्राम स्वतन्त्र था। ऐसा न था कि अमुक चीज आना बन्द हो गया है अतः अ क्या किया जाय।

पुरातन साहित्य हमें बताता है कि उस समय भारत का प्रत्येक ग्राम स्वतन्त्र था कोई भी गांव ऐसा न था कि जहां आवश्यक अन्न और वस्त्र पैदा न हो। अन्न तो स जगह पैदा होता ही था किन्तु वस्त्र भी सब गांवों में बनाये जाते थे। जहां रुई न होती थी व ऊन होती थी जो रुई से भी मुलायम थी। हर ग्राम में कपड़े बुनने वाले लोग रहते थे इस प्रकार भारत का हर गांव स्वतंत्र था। नगर तो स्वतंत्र थे ही। उनमें विशेष कला प्रका र्ष से होती थीं।

चम्पा में ऋद्धि भी थी और समृद्धि भी। ऋद्धि और समृद्धि के होने पर भ स्वचक्री राजा के अभाव में कष्ट होता है। चम्पा इस बात से भी वंचित न थी। ठिम्मि विशेषण यही बतलाता है कि चम्पा की प्रजा बड़ी बहादुर थी। उसे न स्वचक्री राजा सता सकता था और न परचक्री। अपने राजा का अत्याचार भी प्रजा सहन नहीं करती थी और न अन्य देशस्थ राजा का। जो स्वयं निर्बल होता है उसी पर दूसरों का जोर चलता है। सबल पर किसी का बल नहीं चलता। लोग कहते हैं कि देवी बकरे का दान मांगती है। मैं

पूछता हूं कि देवी बकरे का बलिदान ही क्यों मांगती है शेर का क्यों। नहीं बकरा निर्बल है और शेर सबल है अतः ऐसा होता है।

शास्त्र में चम्पा का इस प्रकार वर्णन है। कोई भाई यह कहे कि महाराज त्यागी लोगों को इस प्रकार वर्णन करने की क्या आवश्यकता थी तो उसका उत्तर यह है कि फल बताने के पूर्व वृक्ष का और बीज का परिचय कराना भी जरूरी होता है। जो फल बताया जा रहा है वह जादू का तो नहीं है। अतः फल के पहले वृक्ष का वर्णन भी आवश्यक है। शील के साथ चम्पा का भी इसी लिए वर्णन है। इस वर्णन को सुन कर आप भी सच्चे नागरिक बनिये और शील का पालन कर आत्म कल्याण कीजिये।

राजकोट
७—७—३६ का
व्याख्यान

धर्म का अधिकार

" मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी·········। "

यह भगवान् मल्लिनाथ की प्रार्थना है। यदि इस प्रार्थना के विषय में व्याख्याता सिद्धान्त की खोज करके व्याख्यान दे तो बहुत लोगों की दृष्टी सा दूर हो जाय, ऐसा मेरा ख्याल है। मुझे शास्त्र का उपदेश करना है अतः विषय में इतना ही कहता हूं कि भक्ति और प्रार्थना के मार्ग में पुरुषों को अभि नहीं करना चाहिए। अभिमान भूले बिना भक्तिमार्ग पर नहीं चला जा सकता अहंकार दूर किए बिना भक्ति मार्ग प्राप्त नहीं हो सकता। हम पुरुष हैं, इस बात अहंकार त्याग कर चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष जो भी महापुरुष हुए हैं, उन सब की में तल्लीन हो जाना चाहिए।

बहुत से पुरुष स्त्री जाति को तुच्छ गिनते हैं और अपने को बड़ा मानते हैं कि यह उनकी भूल है। दुनिया में सब से बड़ा पद तीर्थङ्कर का है। जब कि स्त्री ती

हो सकती है वैसी हालत में तुच्छ कैसे मानी जा सकती है। और पुरुष को किस बात का अभिमान करना चाहिए। अतः अहंकार छोड़ कर विचार करो और गुणों के स्थान पर द्वेष मत लाओ।

भगवान् मल्लिनाथ को नमस्कार करके अब मैं उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन की बात शुरू करता हूँ। कल महा और निर्ग्रन्थ शब्दों के अर्थ बताये गये थे। इस द्वादशांग वाणी को सुनने से क्या क्या लाभ हैं, यह बताने के लिए पूर्वाचार्यों ने बहुत प्रयत्न किए हैं। उन्होंने शास्त्र की पहिचान के लिए अनुबन्ध चतुष्टय किया है। इस बीसवें अध्ययन में यह अनुबन्ध चतुष्टय कैसे घटित होता है, यह देखना है। हम इस बात की जाँच करें कि इस अध्ययन में भी विषय, प्रयोजन अधिकारी और सम्बन्ध हैं या नहीं।

बीसवें अध्ययन का विषय उसके नाम मात्र से ही प्रकट है। अध्ययन का नाम महानिर्ग्रन्थ अध्ययन है। जिससे स्पष्टतया मालूम हो जाता है कि इस अध्ययन में महान् निर्ग्रन्थ की चर्चा होगी। नाम के सिवा प्रथम गाथा में यह स्पष्ट कहा गया है कि मैं अर्थ धर्म में गति कराने वाले तत्त्व की शिक्षा देता हूं। इससे यह बात निश्चित हो गई कि इस अध्ययन में सांसारिक बातों की चर्चा न होगी। किन्तु जिन तत्त्वों से पारमार्थिक मार्ग में गति हो सके उनकी चर्चा होगी।

अब इस बात का विचार करें कि इस पारमार्थिक चर्चा से संसार को क्या लाभ होगा। आज संसार में इस प्रकार के मलीन विचार फैले हुए हैं कि जिनके कारण धार्मिक उपदेश और उसका प्रभाव बेकार सा साबित हो रहा है। मैले कपड़े पर रंग नहीं चढ़ता मैले कपड़े पर रंग चढ़ाने के लिए पहिले उसे साफ करना पड़ता है। इसी प्रकार हृदय रूपी वस्त्र यदि मैला हो तो उस पर उपदेश रूपी रंग नहीं चढ़ सकता। यह बात स्वाभाविक है। मुझे यकिन है कि आपके सब कपड़े मलीन नहीं हैं अर्थात् आपका हृदय सर्वथा मलीन नहीं है। यदि सर्वथा मलीन होता तो आप यहां व्याख्यान श्रवणार्थ भी उपस्थित न होते। आप यहां आये हैं इससे यह प्रकट है कि आपका हृदय सर्वथा गन्दा नहीं है। जो थोड़ी बहुत गंदगी भी हृदय में रही हुई है उसे दूर किए बिना धर्म का रंग अच्छी तरह नहीं चढ़ सकता।

शास्त्रकारों का कथन है कि धर्म स्थान पर जाने के पूर्व घर से निकलते ही पहले निस्सीही शब्द का उच्चारण करना चाहिए। धर्म स्थान पर पहुँच कर भी निस्सीही कहना

चाहिए। फिर गुरु के पास जाकर भी निस्सीही कहना। इस प्रकार तीन बार निस्सी शब्द का उच्चारण करने का क्या कारण है। घर से निकलते वक्त निस्सीही कहने का मतलब यह है कि धर्मस्थान पर जाने के पूर्व ही सांसारिक प्रपञ्च पूर्ण विचारों को मन से निकाल देना चाहिए। निस्सीही शब्द का अर्थ है पाप पूर्ण क्रियाओं का निषेध करना, उनको रोक देना।

जो संसार के कामों और विचारों को छोड़ कर धर्म स्थान पर जाता है वही पु धर्म स्थान में पहुच ने के मकसद को सिद्ध कर सकता है। जो घर से व्यवहार के प्र को दिमाग में रख कर धर्म स्थान पर जाता है वह वहां जाकर क्या करेगा। वह धर्म स्थ में भी प्रपञ्च ही करेगा। धर्म का क्या लाभ ग्रहण करेगा? धर्म स्थान तक पहुंचने के ब निसीही इस लिये कहा जाता है कि धर्म स्थान तक तो गाड़ी घोड़ा आदि सवारी पर स होकर भी जाया जाता है लेकिन धर्म स्थान में ये सवारियां नहीं जा सकती अत. इन निषेध भी इष्ट है।

धर्म स्थान तक पहुच कर अन्दर कैसे प्रवेश करना इसके लिये पांच अभिगम शास्त्रों में बताये गये हैं भगवान् या अन्य महात्माओं के दर्शन करने के लिये धर्म स्थान पहुंचने पर पांच अभिगमन का वर्णन शास्त्रों में आया है। प्रथम अभिगमन सचित्त द्र का त्याग है। साधु के पास पान फूल आदि सचित द्रव्य नहीं ले जा सकते अतः उनक त्याग कर फिर दर्शनार्थ जाना चाहिये। दुसरा अभिगमन उन अचित द्रव्यों का भी त्य करके साधु के पास जाना चाहिये जिनका त्याग जरूरी हो। अस्त्र शस्त्रादि पास हो उन्हें छोड़ कर साधु के समीप जाना चाहिये। शस्त्रादि लेकर साधु के पास जाना अनुचि है तथा वस्त्रादि का संकोच करना भी दूसरे अभिगमन में है। इसका अर्थ नंगे होकर सा दर्शनार्थ जाना नहीं है। किन्तु जो वस्त्र बहुत लम्बे हों और जिनसे पास वालों की आसातन हो सकती है उनका त्याग करना चाहिये। तीसरा अभिगमन उत्तरासंग करना है। चौथ अभिगमन जिनके दर्शनार्थ जाना है वे ज्योंही दृष्टि पथ में पड़े कि तुरत हाथ जोड़ लेन चाहिये। अर्थात् नम्रता पूर्वक धर्म स्थान में पहुंचना चाहिये। पांचवा अभिगमन मन क एकाग्र करना है।

साधु के समीप पहुँचकर निसीही कहने का अभिप्राय यह है कि मैं समस्त सांसारिक प्रपञ्चों का निषेध करता हूं। निसीही का उच्चारण भी कर लिया गया हो और

अभिमान भी पार किए गये हों किन्तु यदि मन संसार की बातों में गुंथा हुआ हो रहा तो धर्मस्थान में पहुँचने का उद्देश्य हासिल नहीं हो सकता । अतः मन को एकाग्र करके यह निश्चय करना चाहिए कि हमें श्रेय सिद्ध करना है ।

सारांश यह है कि यदि आपको सिद्धान्त सुनने की रुचि है तो मन को स्वच्छ बनाकर आइये । मन स्वच्छ बनाने का भार मुझ पर डालकर मत आइये । धोबी का काम धोबी करता है और रंगरेज का काम रंगरेज करता है । दोनों का काम एक पर डालने से काम बिगड़ जाता है । मैं आप पर धर्म के सिद्धान्तों का रंग चढ़ाना चाहता हूँ । रंग चढ़ाया जा सकता है । किन्तु शर्त यह है कि आपका मनरूपी वस्त्र स्वच्छ होना चाहिए । मन स्वच्छ बनाकर आने का काम आपका है और उस पर धर्म का रंग चढ़ाने का काम मेरा है । धोबी वस्त्र को जितना साफ निकालकर देगा, रंगरेज उतना ही चमकदार रंग चढ़ा सकेगा । रंगरेज को यश दिलाने का काम धोबी पर निर्भर है । आप लोगों की तरह यदि मुझ में भी मान प्रतिष्ठा की चाह हृदय में बनी रही तो मैं धर्म का सच्चा उपदेश न दे सकूँगा । धर्म का उपदेश देने के लिए उपदेशक को भी स्वच्छ बनना चाहिए । उपदेशक और श्रोता दोनों स्वच्छ हों तभी धर्म का रंग अच्छी तरह चढ़ सकता है ।

इस अध्ययन का विषय तो बता दिया गया है । लेकिन अब यह जानना चाहिए कि इस अध्ययन के करने का क्या प्रयोजन है । धर्म में रुचि करना इस अध्ययन का प्रयोजन है । अर्थात् आनुपूर्वी की शिक्षा देना इस अध्ययन का प्रयोजन है ।

आप कहेंगे कि यदि आनुपूर्वी की शिक्षा देना ही इस अध्ययन का प्रयोजन है तो इस प्रकार लोगों को यह अध्ययन क्यों नहीं सुनाया जाता है । पहले आप यह जान लीजिए कि [illegible] [illegible] है या नहीं । [illegible] है । [illegible] है और [illegible] है । [illegible] है । किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है । [illegible] है ।

भगवान् ने फरमाया है कि मोक्ष की इच्छा मात्र होने से मोक्ष आगमों से नहीं मिल जाता कोरे सूत्र बांचने से ही मुक्ति नहीं मिल सकती। सद्गुरु अथवा सदुपदेशक की आवश्यकता होती है। कुगुरु मोक्ष का नाम लेकर विपरीत मार्ग में भी ले जा सकते हैं अतः प्रथम यह जान लेना चाहिए कि धर्म का सच्चा उपदेशक कौन हो सकता है ? शास्त्र में कहा भी है कि

आयगुत्ते सयादन्ते छिन्नसोये अणासवे ।
ते धम्मं सुद्धमक्खन्ति पडिपुन्नं मणेलिसं ॥

अर्थात्—धर्म का उपदेश वे कर सकते हैं जिन्होंने अपने मन पर काबू कर लिया हो, जो सदा विकारों पर काबू रखते हों, जिनका शोक नष्ट हो गया हो, जो पाप रहित हों। ऐसे सदादान्त सन्त पुरुष ही प्रीतिपूर्ण और शुद्ध अनुपम धर्म का उपदेश कर सकते हैं। पहले यह देखना जरूरी है कि अमुक ग्रन्थ या पुस्तक का रचयिता कौन है ? ग्रंथकार की प्रामाणिकता पर ग्रंथ की प्रामाणिकता है। आज कल के बहुत से अवकचरे विद्वान् कहते हैं कि ग्रंथकार के व्यक्तिगत जीवन से तुम्हें क्या मतलब है, तुम्हे तो वह जो शिक्षा देता है उसे देखो कि वह ठीक है या नहीं। किन्तु ऐसा कहने वाले व्यक्ति भ्रम में हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि धर्म का उपदेशक वह हो सकता है जो अपनी आत्मा को गुप्त रखता हो। संयमरूपी ढाल में इन्द्रियों को उसी प्रकार काबू में रखता हो जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को ढाल में रखता है। इन्द्रिय दमन करने वाला ही सच्चा उपदेशक या लेखक हो सकता है।

जिसने इन्द्रिय दमन कर लिया है और जिसने नहीं किया है इसकी पहचान यह है कि जिसकी आखों में विकार न हो, शारीरिक चेष्टाएं शान्त और पापशून्य हों। इन्द्रिय दमन का अर्थ आंख कान आदि इन्द्रियों का नाश कर देना नहीं है किन्तु उनके पीछे रही हुई पाप भावना को मिटा देना है। आंख से धर्मात्मा भी देखता है और पापी भी। किन्तु दोनों की दृष्टि में बड़ा अन्तर होता है। धर्मात्मा पुरुष किसी स्त्री को देखकर उसके सुधार का उपाय सोचेगा और पापी पुरुष उसी स्त्री को देखकर अपनी वासना पूर्ति का विचार करेगा। जिस प्रकार घोड़े को शिक्षा देकर मन मुताबिक चलाया जाता है उसी प्रकार जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को मन माफिक चला सकता है, उनका गुलाम नहीं किन्तु मालिक बन सकता है, वही इन्द्रिय दमन करने वाला कहा जाता है। घोड़े का मालिक लगाम के जरिये घोड़े को कुमार्ग में नहीं जाने देता उसी प्रकार इन्द्रिय दमन करने वाला इन्द्रियों को विषय विकार की तरफ नहीं जाने देता। भगवद् भजन करने में उनका उपयोग करता है। यही इन्द्रिय दमन का अर्थ है।

धर्मोपदेशक हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पांच पापों से रहित होना चाहिए। जो सब स्त्रियों को मा बहिन समान समझता हो और धर्मोपकरण के सिवा फूटी कौड़ी भी अपने पास न रखता हो अर्थात् जो कंचन और कामिनी का त्यागी हो वह धर्मोपदेशक हो सकता है और वही प्रीतिपूर्ण, शुद्ध और अनुपम धर्म का उपदेश दे सकता है।

मैंने हिन्दू धर्म के विषय में गांधीजी का लिखा एक लेख देखा है। गांधीजी ने उस समय तक जैन शास्त्र देखे थे या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। किन्तु जो सच्ची बात होगी वह शास्त्र में अवश्य निकल आयगी। गांधीजी ने उस लेख में यह बताया था कि हिन्दू-धर्म का कौन उपदेश कर सकता है? कोई पण्डित या शंकराचार्य ही इस धर्म का कथन कर सकता है यह बात नहीं है किन्तु जो पूर्ण अहिंसक, सत्यवादी और ब्रह्मचारी है वही हिन्दू धर्म को कहने का अधिकारी हो सकता है। गांधीजी के लेख के पूरे शब्द मुझे याद नहीं है किन्तु उनका मत यह था। गांधीजी और जैन शास्त्रों के विचार इस विषय में कितने मिलते हैं इस पर विचार करियेगा।

प्रस्तुत बीसवें अध्ययन के उपदेशक गणधर या स्थविर मुनि हैं। यह गुरुपर्व सम्बन्ध हुआ। अब तत्कालिक उपायोपेय सम्बन्ध देख लें। दवा करना उपाय है और रोग मिटाना उपेय है। इस अध्ययन का उपायोपेय सम्बन्ध है ज्ञान प्राप्ति और इसके द्वारा मुक्ति। मुक्ति उपेय है और ज्ञान प्राप्ति उपाय है।

संसार में उपाय मिलना ही कठिन है। यदि उपाय मिल जाय और यह क्रिया सफल हो तो रोग मिट सकता है। डाक्टर और दवा दोनों का योग होने पर बीमारी चली जाती है। किसी बाई के पास रोटी बनाने का सामान मौजूद न हो तो वह रोटी कैसे बना सकती है। यदि रोटी बनाने की सब सामग्री तय्यार हो तो रोटी बनाने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती।

रोटी बनाने की सब सामग्री तय्यार रखी हो परन्तु यदि कर्त्ता रोटी बनाने का किसी प्रकार का प्रयत्न न करे तो रोटी कैसे बन सकती है? आटा और पानी अपने आप नहीं मिल सकते और न रोटी स्वयं पक सकती है। कर्त्ता के उद्योग किये बगैर सब साधन या उपाय किस काम के। आप अपने लिए विचार करिये कि आपको क्या करना चाहिए? गफलत की नींद छोड़कर जागृत हो जाइये जिससे धर्मकरणी के लिए मिले हुए साधन व्यर्थ न हो जाय। आपको आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल और मनुष्य जन्म मिले हैं। यह क्या कम सामग्री है आपकी उम्र भी पक चुकी है। आप तत्त्व ज्ञान समझ सकते हो।

...त से लोग तो बड़ी उम्र में ही बड़े बनते हैं। यदि आप भी बचपन में ही बड़े बनते तो आपको कौन उपदेश देने आता। बालक, रोगी और अशक्त धर्म के अधिकारी नहीं माने जाते। उनसे कोई धर्म का उपदेश नहीं करता। अतः ज्ञानीजन कहते हैं कि उठ जाग ! कब तक सोता रहेगा।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥

अर्थात्—हे मनुष्यो ! उठो जागो और श्रेष्ठ मनुष्यों के पास जा कर ज्ञान प्राप्त कर लो। कारण कि ज्ञानी जन कहते हैं कि छुरे की धारा पर चलना जितना कठिन है उतना ही इस विकट मार्ग (धर्म मार्ग) पर चलना कठिन है।

जिस प्रकार प्रातःकाल माता अपने पुत्र से कहती है कि ऐ पुत्र ! उठ जाग, खड़ा होजा, इतना दिन निकल आया है, कब तक सोता पड़ा रहेगा ? उसी प्रकार ज्ञानी जन भी माता के प्रेम के समान प्रेम से सब जीवों पर दया लाकर कहते हैं कि ऐ मनुष्यो ! किस गफलत में पड़े हुए हो। उठो जागो। अब निद्रा का त्याग करो। विषय कषायादि विकारों को छोड़ कर आत्म कल्याण के मार्ग में लग जाओ। वैराग्य शतक में ज्ञानी सोते हुए प्राणियों को जगाते हुए कहते हैं—

मा सुवह, जग्गियव्वं, पलाइयव्वम्मि किस्स विस्समिह ।
तिन्नि जणा अणुलग्गा रोगो जराए मच्चुए ॥

हे भव्यजनों ! मत सोओ ! जाग जाओ। रोग, जरा और मृत्यु तुम्हारे पीछे लगे हुए हैं। यह बात बहुत विचारणीय है अतः एक कथा द्वारा इस मुद्दे को सरल बनाकर कहता हूं।

दो मित्र जंगल में जा रहे थे। उन में से एक थक गया था। थकने के साथ ही उसे कुछ आलस्य मिल गया। पास ही अच्छे घने वृक्ष हैं। सुन्दर नदी बह रही है सघन चमन सामने है। और हवा भी शीतल मन्द और सुगन्ध युक्त चल रही है। यह सब अनुकूल सामग्री देखकर थका हुआ मित्र सो जाने के लिए ललचाया। वह मन में मनसूबे बांधने लगा कि यहां बैठकर शीतल वायु सेवन करना

चाहिए। सुन्दर फल खाना और पुष्पों की सुगन्ध लेना चाहिए। नदी की कलकल सुनते हुए निद्रा लेकर प्रकृति के सुख का अनुभव करना चाहिए।

दूसरा मित्र प्रकृति ज्ञान में निपुण था। वह जानता था कि ये फल-फूल कैसे हैं, यह हवा कैसी है तथा नदी की यह कल-कलाट क्या शिक्षा दे रही है। यह स्थान कितना उपद्रवयुक्त है, यह भी वह जानता था। उस ज्ञानी मित्र ने अपने भूले हुए मित्र से कहा कि हे प्रिय मित्र! यह स्थान सोने के लिए उपयुक्त नहीं है। जल्दी उठ खड़ा हो और शीघ्र यहाँ से भाग चल। एक क्षण मात्र का भी विलम्ब मत कर। यहाँ तीन जने पीछे पड़े हैं। जिन फल-फूलों को देख कर तेरा जी ललचाया है वे फल-फूल विषयुक्त हैं। यहाँ की हवा भी विषैली है जो वातावरण तुझे अभी आकर्षित कर रहा है वही थोड़ी देर में तुझे बिमार बना देगा और तेरा चलना फिरना भी बंद हो जायगा। यह नदी भी शिक्षा दे रही है कि जिस प्रकार कल कल करता हुआ मेरा पानी प्रतिक्षण बहता चला जा रहा है उसी प्रकार तेरी आयु भी क्षण क्षण घटती जा रही है।

क्या सोवे उठ जाग बाउरे।

अंजलि जल ज्यों आयु घटत है, देत पहरिया घरिय घाउरे ॥ क्या० ॥
इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र मुनि चल कौन राजा पति साह राउरे।
भमत भमत भव जलधि पायकें भगवन्त भक्ति सुभाउ नाउरे ॥ क्या० ॥
क्या विलम्ब अब करे बाउरे तरभव जलनिधि पार पाउरे।
आनन्द घन चेतन मय मूरति शुद्ध निरञ्जन देव ध्याउरे ॥ क्या० ॥

शास्त्रकार, ग्रन्थकार, कवि और महात्मा सब का कथन यही है कि हे जीवात्मा [illegible] उठ! जाग! अज्ञान की नींद मत सो औ।

कोई भाई कहेगा कि क्या आप हमको साधु बनाना चाहते हैं। मैं पूछता हूँ क्या साधुपन बुरी चीज है? यदि साधुपन बुरी वस्तु होता तो आप साधुओं को [illegible] कैसे पूजते। साधुपन [illegible] है [illegible] सकती है। शक्ति न हो तो साधुपन अंगीकार करने को मैं नहीं कहता। आपको साधुता ग्रहण करने के [illegible] हुए हैं। अतः [illegible] हो जाइये।

[illegible] भक्ति सुभाउ नाउरे।

भगवान् की भक्ति रूप नौका मिली हुई है। उस नौका का सहारा लेकर संसार समुद्र पार कर जाइये। उस मित्र ने अपने थके हुए मित्र से कहा था कि हे दोस्त! यदि तू भूल नहीं सकता तो सामने यह नौका खड़ी है। इस पर सवार होकर पार लग जा। अब तो इस मूर्ख मित्र को चलना भी नहीं पड़ता है फिर भी यदि वह नौका पर सवार न हो और गफलत में सोया पड़ा रहे तो आप उसे क्या कहेंगे। आप कहेंगे कि वह बड़ा अभागा था जो ऐसे सुसंयोग का लाभ न ले सका। आपके समक्ष भी भगवन् नाम रूपी नौका खड़ी है। सद्गुरु आपको समझा रहे हैं कि इस नौका पर सवार हो कर अनादि कालिन दुःख दर्द को मिटालो। अधिक न कर सको तो कम से कम इस नौका पर सवार हो जाइये।

अभी मुनि श्रीमल्जी ने आपको सुनाया है कि एक व्यक्ति साधु के स्थान पर आकर भी बुरे कर्म बांध सकता है और दूसरा वैश्या के भवन पर जाकर भी कर्मों की निर्जरा कर सकता है। बुरी भली भावनाओं की अपेक्षा से यह कथन ठीक है। फिर भी यह मत समझ लेना कि साधु का स्थान बुरा है और वैश्या का अच्छा। वैश्या के घर जाकर कोई विरला व्यक्ति ही बच सकता है। अतः स्थान की दृष्टि से वैश्या का स्थान बुरा और साधु का स्थान अच्छा है। लेकिन जो स्थान अच्छा है उस साधु स्थान पर जाकर यदि कोई व्यक्ति बुरे विचार करे अथवा दूसरों की निन्दा करे तो यह कितनी बुरी बात है। कदाचित् कोई साधु स्थान पर रहे उतनी देर तक अच्छे विचार रखे और वहां से अलग होते ही बुरे विचार करने लग जाए, सुनी या सीखी हुई शिक्षा को भूल जाय तो भी कोई लाभ नहीं गिना जा सकता। आप कहेंगे कि यह हमारी कमजोरी है कि हम आपकी दी हुई शिक्षाएं शीघ्र भूल जाते हैं। मैं कहता हूं यह केवल आपकी ही कमजोरी नहीं है किन्तु मेरा भी कच्चापन शामिल है। मेरी दी हुई शिक्षा को आप लोग याद नहीं रख सकते इस में मैं भी अपनी कमजोरी समझता हूं। मैं मेरी कमजोरी दूर करने का प्रयत्न करूंगा। परन्तु उपदेष्टा तो निमित्त कारण है। उपादान कारण आपका आत्मा है। यदि उपादान ही अच्छा न हो तो निमित्त क्या कर सकता है निमित्त के साथ उपादान शुद्ध होना चाहिए। किसी घड़ी को जब तक चाबी दी जाती रहे तब तक वह चलती रहे और चाबी देना बंद करते ही यदि बंद हो जाय तो आप उस घड़ी को कैसी कहेंगे। यही कहेंगे कि वह घड़ी खोटी है। इसी प्रकार मैं जब तक उपदेश देता रहूं तब तक आप तद्दत करते रहो और उपदेश सुनकर घर पहुंचते ही यदि उसे भूल जाओ तो यह सच्चापन नहीं गिना जायगा। इस बात पर ध्यान दीजिये और गफलत को छोड़िये।

आपके सामने भगवद् भक्ति रूपी नाव खड़ी है। आप यदि उस पर बैठ गये तो क्या कमी हो जायगी। तुलसीदासजी ने कहा है—

जगनम वाटिका रही है फली फूली रे।
धुआं कैस धौरहर देखि तू न भूली रे॥

संसार की वाड़ी जैसे आसमान में तारे छिटक रहे हों वैसे फली फूली हुई है। मगर यह वाड़ी स्थायी नहीं है! अतः संसार की भूल भुलैया में न फँसकर परमात्मा की भजन स्वरूप नौका में बैठ कर संसार समुद्र पार कर लें।

आज कल बहुत से भाईयों यह खयाल है कि हमें परमात्मा के भजन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वे कहते हैं कि जो लोग परमात्मा का भजन किया करते हैं वे दुःखी देखे जाते हैं और जो कभी परमात्मा का नाम तक नहीं लेते बल्कि धर्म और परमात्मा का बायकाट करते हैं, वे लोग सुखी देखे जाते हैं। इस सवाल का जवाब यह है कि केवल परमात्मा का नाम लेना ही सुखी बनने का कारण नहीं है। किन्तु नाम स्मरण के साथ परमात्मा के बताये हुए नियमों का पालन करना भी जरूरी है। कोई प्रकट रूप में परमात्मा का नाम न लेता हो किन्तु उसके बताये नियमों का पालन करता हो तो वह सुखी होगा और कोई नियमों का पालन न करें और खाली नाम रटन्त करता रहे तो उससे दुःख दूर नहीं हो सकते। जो प्रकट रूप से नाम नहीं लेता किन्तु नियम पालन करता है वह सुख के साधन जुटाता है। अतः यह कहना कि परमात्मा का नाम लेने से या भजन करने से कोई दुःखी है सर्वदा गलत धारणा है। भजन के साथ नियम आवश्यक है। एक आदमी ने गाड़ी में बैठे हुए एक पहलवान को देखा। देख कर उसने यह धारणा बना ली कि गाड़ी में बैठने से आदमी पहलवान हो जाता है। उसे इस बात का भान न था कि पहलवान तो विशेष प्रकार की कसरत करने से बनता है। इसी प्रकार नियम पालने वाला प्रकट में नाम नहीं लेता अतः यह कह डालना कि नाम न लेने से सुखी है भ्रम पूर्ण विचार है। परमात्मा का भजन तो करना मगर उसके बनाये नियम न पालना कैसा काम है, इस बात को एक दृष्टान्त से समझाता हूं।

एक सेठ के दो स्त्रियां थीं। बड़ी स्त्री गादी लगा कर हाथ में माला लेकर अपने पति का नाम भजनी रहती थी। दिन भर मोतीलालजी मोतीलालजी की रटन्

नाटक में पुरुष स्त्री का वेष धारण करते हैं और स्त्री की तरह नखरे दिखाने की चेष्टा करते हैं। ऐसा करने से कभी २ पुरुष बहुत अंशो में अपना पुरुषत्व भी खो बैठते हैं। नाटकों में स्त्री बने हुए पुरुष के हाव भाव देखकर आप लोग बड़े प्रसन्न होते हैं। जो खुद अपना पुंस्त्व भी खो चुका है वह दूसरों को क्या शिक्षा देगा।

आज कल लोगों को नाटक सिनेमा का रोग बहुत बुरी तरह लगा हुआ है। घर में चाहे फाकाकशी करना पड़े मगर सिनेमा देखने के लिए तो जरूर तय्यार हो जायेंगे। रुपये खर्च होने के उपरान्त नाटक सिनेमा देखने से क्या २ हानियाँ होती है इसका जरा खयाल करिये। जब कि लोग बनावटी स्त्री पर भी इतने मुग्ध होते देखे जाते हैं तब अभया पर राजा इतना मुग्ध हो इस में क्या आश्चर्य की बात है। वह तो साक्षात् स्त्री थी और बहुत रूप सम्पन्न थी। आश्चर्य तो इस बात में है कि कहां तो आजकल के लोग जो बनावटी रूप मात्र देखकर मुग्ध बन जाते हैं और कहां वह सुदर्शन जो रूप लावण्य संपन्न अभया पटरानी पर भी मुग्ध न हुआ।

जब मैं अहमदनगर में था तब वहां के लोग मेरे सामने आकर कहने लगे कि एक नाटक कम्पनी आई है जो बहुत अच्छा नाटक करती है। देखने वालों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार उन लोगों ने मेरे सामने उस नाटक मंडली की बहुत प्रशंसा की। उस समय मैंने उन लोगों से यही कहा कि फिर कभी इस विषय में समझाऊंगा।

एक दिन मैं जंगल गया था कि दैवयोग से उस नाटक मण्डली में पार्ट लेने वाले लोग भी उधर ही घूमते हुए जा रहे थे। वे लोग अपनी धुन में मस्त होकर जा रहे थे। मैंने उन लोगों की चेष्टाएं और आपसी-बातचीत सुनी। सुनकर मैं दंग रह गया। क्या ये वेही लोग हैं जिनकी नाटक मण्डली की इतनी प्रशंसा मेरे सामने की गई थी। उनकी बातें और चेष्टाएं इतनी गंदी थीं कि कुछ कहा नहीं जा सकता। मैंने मनमें विचार किया कि ये लोग सीता, राम या हरिश्चन्द्र का पार्ट अदा करते हैं, किन्तु क्या दर्शकों पर इनके खुद के भावों-विचारों का असर न होता होगा। क्या केवल इनके द्वारा दिखाये या कहे हुए सीता, राम या हरिश्चन्द्र के कार्यों या गुणों का ही लोगों पर असर होता है? या नाटक दिखाने वालों के व्यक्तिगत चरित्रों का भी प्रभाव दर्शकों पर पड़ता है? मैं पहले व्याख्यान में कह चुका हूं कि किसी ग्रंथ या उपदेश की प्रामाणिकता उसके कर्त्ता या उपदेशक पर अवलंबित है। फोनोग्राफ की चुड़ी से निकले हुए शब्दों का विशेष असर नहीं होता। असर होता है शब्दों के पीछे रही हुई चरित्र शील आत्मा का।

कदाचित् कोई भाई यह दलील करे कि हमें तो गुण ग्रहण करना है। हमें कोई कैसा है! इस बात से प्रयोजन नहीं। इसका उत्तर यह है कि यदि गुण ही लेना है, सामने वाले का आचरण नहीं देखना है तो नाटक में साधु बनकर आये हुए साधु को आप लोग वन्दना नमस्कार क्यों नहीं करते और उसे सच्चा साधु क्यों नहीं मानते। आप कहेंगे वह तो नकली साधु है उसे असली कैसे मानेंगे। मैं कहता हूं कि जैसे साधु नकली वैसे अन्य पात्र भी नकली ही हैं। जंगल से वापस लौटकर व्याख्यान में मैंने लोगों से कहा कि ऐसे लोगों के द्वारा दिखाए हुए खेल से आपका कुछ कल्याण नहीं होने वाला।

महारानी अभया बहुत सुन्दर थी और राजा दधिवाहन उस पर बहुत मुग्ध था, फिर भी सुदर्शन रानी पर मुग्ध न हुआ। उसके जाल में न फँसा। ऐसे महापुरुष की शरण लेकर भगवान् से प्रार्थना करो कि हे प्रभो! ऐसे चारित्रशील व्यक्ति के चरित्र का अंश हमको भी प्राप्त हो।

तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किंवा।

जो भगवान् की सेवा करता है क्या वह कभी भूखा रह सकता है। जो भगवान् की शरण जाता है वह भी उनके समान बन जाता है। वैसे ही शील धर्म का पालन करने वाले सुदर्शन की शरण ग्रहण करने से शील पालने की क्षमता अवश्य प्राप्त होगी।

यह चरित्र मनरूपी कपड़े के मैल को साफ करने का भी काम करेगा। लोकनीति, धर्म स्थूल और सूक्ष्म व्यवहार की बातें भी इस चरित्र में आवेंगी। आज समाज में जो अनेक कुरीतियाँ घुसी हुई हैं, उनके कारण जो हानि हो रही है, उनके विरुद्ध भी इस चरित्र में कुछ कहा जायगा। अतः इस चरित्र को सावधान होकर सुनिये और शील धर्म को यथाशक्ति धारण कीजिये।

राजकोट
८—७—३६ का
व्याख्यान

सिद्ध साधक
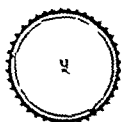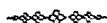
" श्री मुनि सुव्रत साहिबा .... । "

यह २० वें तीर्थङ्कर मुनि सुव्रत स्वामी की प्रार्थना है। आत्मा को परमात्मा की प्रार्थना कैसे करना चाहिए यह बात अनेक विधियों और अनेक शब्दों द्वारा कही हुई है। प्रभु नाम अनेक हैं। इन नामों को लेकर भक्तों ने अनेक रीति से प्रार्थना की है। इस प्रार्थना में कहा गया है कि आत्मा को स्वदोषदर्शी होना चाहिए। सब लोगों की यह इच्छा रहती है कि हम हमारी प्रशंसा ही सुनें। कोई हमारी निन्दा न करे। लेकिन ज्ञानी कहते हैं कि प्रशंसा सुनने की आदत छोड़ कर अपने दोष देखने सुनने की आदत डालो। [illegible] सुनने का काम मन से [illegible] न समझो कि मेरे में क्या २ गुण हैं किन्तु मेरे में क्या दोष या त्रुटि है उनको समझने-सुनने की कोशिश करो। कदाचित् अभी आत्मा में दोष न दिखाई दें तो भी यह मानना चाहिए कि मेरे में पहले के बहुत से बुरे संस्कार विद्यमान हैं। [illegible] अनादि काल से ज्ञानावरणीयादि कर्म रूप दोष मुझमें भरे पड़े हैं। अपने को सदोष मानकर परमात्मा से प्रार्थना करो कि हे

भगवान् ! मैं पाप का पुञ्ज हूँ, मुझ में अनन्त पाप भरे हैं। अब मैं तेरी शरण में आ हूँ अतः मुझे पाप मुक्त कर दे।

इस प्रकार की प्रार्थना वही कर सकता है जो पाप को पाप मानता है, गुरु अपराधी मानकर स्वगुण कीर्तन की वांछा नहीं रखता तथा अपनी कमजोरियाँ सु के लिए उत्सुक रहता हो। जो अपने गुण सुनने के लिए लालायित रहता है वह प प्रभु प्रार्थना से दूर है।

अब शास्त्र की बात कहता हूँ। कल कहा था कि इस बीसवें अध्ययन में कुछ कहना है वह सब पीठिका, प्रस्तावना या भूमिका रूप से प्रथम गाथा में कह दि गया है। इस गाथा का सामान्य अर्थ कर दिया गया है। अब व्याकरण की दृष्टि विशिष्ट अर्थ तथा परमार्थ रूप अर्थ करना बाकी है। इस गाथा में जो शब्द प्रयुक्त कि गये हैं उनसे भिन्न भिन्न अर्थों का बोध होता है यह टीकाकार बतलाते हैं।

मैंने पहले यह बताया था कि नवकार मंत्र के पांच पदों में दूसरा सिद्ध पद सिद्ध है और शेष चार पद साधक हैं। एक दृष्टि से यह बात ठीक है किन्तु टीकाकार दूसरी दृष्टि सामने रखकर अरिहन्त पद की गणना भी सिद्ध में करते हैं। इस दृष्टि से दो पद सिद्ध हैं और शेष तीन साधक हैं। अरिहन्त की गणना सिद्ध में की जाती है इसके लिए शास्त्रीय प्रमाण भी है। कहा है—

एवं सिद्धा वदन्ति परमाणु।

अर्थात्—सिद्ध परमाणु की इस प्रकार व्याख्या करते हैं। सिद्ध बोलते नहीं उनके शरीर भी नहीं होता। ऐसी दशा में यह मानना पड़ेगा कि यहाँ जो सिद्ध शब्द का प्रयोग किया गया है वह अरिहन्त वाचक ही है। इससे स्पष्ट है कि अरिहन्त की गणना भी सिद्ध पद में है। शेष तीन पद आचार्य, उपाध्याय और साधु तो साधु हैं ही। [illegible] नमस्कार किया गया है।

प्रश्न—यह प्रश्न खड़ा होता है कि जब अरिहन्त को नमस्कार कर लिया गया आचार्य, उपाध्याय और साधु को नमस्कार करने की क्या आवश्यकता है? राजा को नमस्कार कर लिया तब [illegible] नहीं [illegible]। अरिहन्त राजा हैं। आचार्य उपाध्याय साधु उनकी [illegible] हैं। [illegible] नमस्कार [illegible] किया गया।

प्रत्येक कार्य दो तरह से होता है। पुरुष प्रयत्न से तथा महत्पुरुषों की सहायता से। इन दोनों उपायों के होने पर कार्य की सिद्धि होती है। महत्पुरुषों की सहायता होना बहुत आवश्यक है किन्तु कार्य सिद्धि में स्वपुरुषार्थ प्रधान है। अपना पुरुषार्थ होने पर ही महत्पुरुषों की सहायता मिल सकती है। और तभी वह सहायता काम आ सकती है। कहावत भी है कि—

हिम्मते मरदां मददे खुदा

यदि मनुष्य स्वयं हिम्मत करता है तो परमात्मा भी उसकी मदद करता है। जो खुद हिम्मत या पुरुषार्थ नहीं करता उसकी कोई कैसे मदद कर सकता है। अतः खुद पुरुषार्थ करना चाहिये। मदद भी मिलती जायगी।

अरिहन्त को नमस्कार करके आचार्यादि को नमस्कार करने का कारण उनसे सहायता प्राप्त करना है। यद्यपि काम स्वपुरुषार्थ से होता है फिरभी महान् पुरुषों की सहायता की आवश्यक्ता रहती है। जैसे मनुष्य लिखता खुद है मगर सूर्य या दीपक के प्रकाश के विना नहीं लिख सकता। लिखने में प्रकाश की सहायता लेना अनिवार्य है। मनुष्य चलता खुद है मगर प्रकाश की मदद जरूरी है। उसके विना चलते चलते खड्डे में गिर सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक काम में महत्पुरुषों के सहारे की जरूरत रहती है।

परमात्मा की प्रार्थना के विषय में भी यही बात है। यदि हृदय में परमात्मा का ध्यान हो तो दुर्वासना उस समय टिक ही नहीं सकती। परमात्म ध्यान और दुर्वासना का परस्पर विरोध है। एक समय में दोनों का निर्वाह नहीं हो सकता। जब हृदय में दुर्वासना न रहे तब समझना चाहिए कि अब उसमें ईश्वर का निवास है। यदि जानबूझ कर हृदय में दुर्वासना रखे और ऊपर से परमात्मा का नाम लिया करे तो यह केवल ढोंग है। दिखाव है। सिद्ध और साधक दोनों की सहायता की अपेक्षा है अतः दोनों को नमस्कार किया गया है।

नमस्कार रूप में जो प्रथम गाथा कही गई है उनमें एक बात और समझनी है गाथा में कहा है कि सिद्ध और संयति को नमस्कार कर के तत्त्व की शिक्षा दूंगा। इस कथन में दो क्रियाएं हैं। जब एक साथ दो क्रियाए हों तब प्रथम क्रिया त्वा प्रत्ययान्त होती है इस क्रिया का प्रयोग अपूर्ण काम के लिये होता है। जैसे कोई कहे कि मैं अमुक काम

देगा। अथवा यह मानना पड़ेगा कि शिक्षा देनेवाला आत्मा दूसरा है क्योंकि नमस्कार करनेवाला आत्मा तो क्षणविनाशी होने के कारण उसी समय नष्ट हो गया। शिक्षा देने के लिए कायम न रहा। इस प्रकार आत्मा को निरन्वय विनाशी मानने से उपर्युक्त दोनों क्रियाएँ व्यर्थ हो जाती हैं। किन्तु आत्मा बौद्ध की मान्यता मुताबिक एकांत विनाशी नहीं है। आत्मा द्रव्यरूप से कायम रहता है। अतः दोनों क्रियाएँ सार्थक हैं। दो क्रियाओं के प्रयोगमात्र से ही बौद्धों की क्षणवादिता का खण्डन होजाता है।

आत्मा का एकान्त विनाश मानने से अनेक हानियां हैं। इस सिद्धान्त पर कोई टिक भी नहीं सकता। उदाहरण के लिये किसी आदमी ने दूसरे आदमी पर दावा दायर किया कि मुझे इससे अमुक रकम लेनी है वह दिलाई जाय। मुदायले ने कोर्ट में हाकिम के समक्ष यह बयान दिया कि यह दावा बिलकुल झूठा है। कारण यह है कि रुपये देने वाला मुद्दई और रुपये लेने वाला मुदायला दोनों ही कभी के नष्ट हो चुके हैं। हाकिम ने मन में सोचा कि यह देनदार चालाकी करके सिद्धान्त की ओट में बचाव करना चाहता है। अतः उसने उस आदमी को कैद की सजा देने की बात सुनाई। सुन कर वह रोने लगा और कहने लगा कि मैं रुपये दे दूंगा। सजा मत करिये। हाकिम ने उस आदमी से कहा कि अरे रोता क्यों है ? तू तो कहता था कि आत्मा क्षण क्षण में पूर्णरूप से विनष्ट हो जाता है और बदल जाता है तब सजा भुगतने वक्त भी न मालूम कितनी बार आत्मा नष्ट हो जायगा और बदल जायगा। दुःख किस बात का करता है। मैं रुपये दिये देता हूं मुझे सजा मत करिये। कह कर उसने उसी वक्त रुपये दे दिये और पिंड छुड़ाया। इस प्रकार वह अपने क्षणवाद के सिद्धान्त पर कायम न रह सका।

कहने का मतलब यह है कि जब भावी पर्याय का अनुभव किया जाता है तब भूत पर्याय का अनुभव क्यों नहीं किया जाता। अवश्य किया जा सकता है। यदि ऐसा माना जाय कि जीव भावी क्रिया का तो अनुभव करता है लेकिन भूत पर्याय का अनुभव नहीं करता तब सब क्रियाएं व्यर्थ सिद्ध होंगी। मोक्ष भी नहीं होगा। आत्मा के विनाश के साथ क्रिया का भी विनाश हो जायगा। इस प्रकार पुण्य पाप कुछ न रहेंगे। अतः हर एक पदार्थ एकान्त विनाशी है। यह सिद्धान्त ठीक नहीं है। टीकाकार ने दो क्रियाओं का प्रयोग करके दार्शनिक मर्म समझाया है।

बीसवें अध्ययन में कही हुई कथा महा पुरुष की है। इस कथा के वक्ता महा निर्ग्रन्थ

है और श्रोता महाराजा है। इन महा पुरुषों की बातें हम जैसों के लिये कैसे लाभदा होगी इसका विचार करना चाहिये। इस कथा के श्रोता राजा श्रेणिक का परिचय कराते कहा है:—

पभूय रयणो राया सेणिओ मगहाहिवो।

मगधदेश का स्वामी राजा श्रेणिक बहुत रत्न वाला था। पहले रत्न का अ समझ लीजिए। आप लोग हीरे, माणिक आदि को रत्न मानते हो लेकिन ये ही रत्न न हैं, कुछ अन्य पदार्थ भी रत्न कहे जाते हैं। नरों में भी रत्न होते हैं, हाथी, घोड़ा आ में भी रत्न होते हैं और स्त्रियों में भी रत्न होते हैं। इस प्रकार रत्न का अर्थ बहुत व्याप है। रत्न का अर्थ श्रेष्ठ भी होता है। जो श्रेष्ठ होता है उसे भी रत्न कहा जाता है। श्रेणिक के यहां ऐसे अनेक रत्न थे।

यह बात विचार करने लायक है कि शास्त्रकार ने श्रेणिक राजा के लिए अ विशेषणों का प्रयोग न करके "बहुत रत्नों का स्वामी था" ऐसा क्यों कहा। प्रभूत कहने का आशय यह है कि यदि कोई अनेक रत्नों का स्वामी हो तो भी उसका सं बेकार है। किन्तु जिसने अपने आत्म-रत्न को पहचान लिया है उसका ही रत्न सार्थक है यदि आत्मा को न पहिचाना तो सब रत्न व्यर्थ हैं। अन्य सब रत्न तो सुलभ हैं कि धर्म-रत्न दुर्लभ है। धर्मरूपी रत्न के मिलने पर ही अन्य रत्न लेखे में गिने जा सकते हैं अन्यथा वे व्यर्थ हैं।

आप लोगों को सब से बड़ी सम्पदा मनुष्य जन्म के रूप में मिली हुई है आप इसकी कीमत नहीं जानते। यदि आप इसकी कीमत जानते होते तो यह वि चार करते कि हम कंकड़ पत्थर के बदले कीमती रत्न क्यों खो रहे हैं आप पूछेंगे कि हम क्या करें कि जिससे हमारा यह मनुष्य जन्म रूप रत्न न होकर सार्थक बन जाय। आपको ऐसा यही तो बतलाया जाता है कि यदि इसे सार्थक बनाना है तो एक एक क्षण का उपयोग करो। वृथा समय मत गंवाओ हर क्षण परमात्मा का ध्यान हृदय में जगने दो। आत्मा को ईश्वर रूप बनाने का प्रयत्न करना रत्न को सार्थक बनाना है।

फिर आप पूछेंगे कि 'आत्मा को परमात्मा कैसे बनाया जाता है?' तो इ[illegible] उत्तर यह है कि [illegible] है [illegible]

क्रोध लोभ आदि विकारों के वश में भी होता है। स्वप्न में सिंह आदि हिंसक प्राणियों को देखकर भयभीत भी होता है। दुःखी भी होता है और सुखी भी। कोई मुझे काट रहा है तथा कोई मेरे शरीर पर चन्दन का लेप कर रहा है आदि भी अनुभव होता है।

स्वप्न की सब घटनाओं से आत्मा की शक्ति का पता लगता है कि बिना भी इन्द्रियों की सहायता के भी वह किस प्रकार सब काम चला लेता है। इसका अर्थ हुआ कि भौतिक पदार्थों के साथ आत्मा का कोई ताल्लुक नहीं है। जो सम्बन्ध है वास्तविक नहीं है किन्तु हमारी गलत समझ के कारण है। 'मैं इस तरह की बाहर की चीजों में आत्मा को न डालूं किन्तु परमात्मा में अपने आपको लगाऊं' यह करने से मनुष्य जीवन रूपी रत्न की सार्थकता है।

प्रत्येक काम उसके स्वरूप के अनुसार ठीक होना चाहिए। उद्देश्य कुछ और और काम कुछ अन्य करने हों तो साध्य सिद्ध नहीं हो सकता। ऐसा करने से 'गये गणेश और बन गये महेश' वाली कहावत चरितार्थ होती है। कार्य किस प्रकार से करना चाहिए यह बात एक उदाहरण से समझाता हूं।

एक साहसी चोर साहस करके राजा के महल में घुस गया। महल में घुस तो गया, किन्तु राजा की नींद खुल जाने से वह भयभीत होगया। चोर का साहस कितना होता है? मालिक के जाग जाने पर चोर की ठहरने की हिम्मत नहीं रही। राजा को जागा हुआ देख कर चोर ने सोचा कि यदि मैं पकड़ा जाऊंगा तो मारा जाऊंगा। अतः वह चोर वहां से भागा। राजा ने भागते हुए चोर को देख लिया। राजा ने सोचा यदि मेरे महल में से चोर बिना पकड़े भाग जायगा तो मेरी बदनामी होगी अतः वह चोर के पीछे पीछे दौड़ा। आगे चोर भागता जाता था और उसके पीछे राजा भी दौड़ता जाता था। राजा को चोर के पीछे दौड़ता देखकर सिपाही आदि भी उसके पीछे दौड़ने लगे। आगे-आगे चोर, उसके पीछे राजा और राजा के पीछे सिपाही। अन्त में चोर एक [illegible] और विचारने लगा कि राजा उसके समीप में ही पहुँच रहा है, यदि पकड़ा जाऊंगा [illegible] बचने की [illegible] नहीं है, मगर बचने की भी कोई सूरत नहीं है। भागते हुए ही [illegible] को करने लायक बात ने कहा [illegible]। उसने सोचा कि [illegible] मुझे कहीं [illegible]। [illegible] किन्तु [illegible] कहीं [illegible] चाहिये। मुझे पूरी [illegible] कुछ [illegible]।

यह सोचकर वह श्मशान से श्मशान में जाकर गिर पड़ा। उसने अपनी नाड़ियों ऐसा संकोच कर लिया कि मानो साक्षात् मुर्दा ही हो। राजा उसके पास आगया और ने लगा कि यह चोर पकड़ लिया गया है। इतने में सिपाही लोग भी आगये और हने लगे कि महाराज यह काम हमारा है। इस काम के लिये आपको कष्ट करने की जरूरत थी। चोर मारके भय से गिर भी पड़ा है और मर भी गया है। राजा ने सिपाहियों से हा कि अच्छी तरह तलाश करो, कहीं कपट करके तो नहीं पड़ा है। सिपाही लोग चोर ो खूब हिलाने लगे। वह मुर्दे के समान हिलाने से इधर उधर होने लगा।

मनुष्य को आपत्ति भी महान् शिक्षा देती है। आपत्ति मनुष्य को उन्नत बनाती । "रंगलाती है हिना पत्थर पै घिस जाने के बाद" मेंहदी को जितना घिसा ाय उतना उसका रंग ज्यादा निखरता है। मनुष्य भी जितनी आपत्तियां सहन करता है तना अच्छा आदमी बनता है। राम को यदि वनवास करने की आपत्ति न उठानी पड़ती ो आज उन्हें कोई नहीं जानता। भगवान् महावीर यदि उपसर्ग और परिषह न सहते तो कौन उनका नाम लेता। कौन उन्हें महावीर कहता। सीता, मदनरेखा, अंजना, सुन्दरी आदि की शोभा आपत्ति सहन करने के कारण ही है। अतः आपत्ति से घबड़ाना नहीं चाहिए किन्तु धैर्य पूर्वक उसका सामना करना चाहिए।

राजा ने पुनः सिपाहियों से कहा कि घबड़ाओ नहीं धैर्य पूर्वक परीक्षा करो कि वास्तव में यह मर गया है या जिन्दा है। सिपाही उस मुर्दा बने हुए चोर को खूब पीटने लगे। पीटते पीटते उसके खून निकल आये मगर उसने उफ तक नहीं किया। सिपाहियों ने पुनः राजा से कहा कि सचमुच यह मर गया है। कपट पूर्वक नहीं पड़ा है। हमने इसे इतना पीटा है कि खून बह चला है फिर भी इसने चूं तक नहीं किया है। राजा ने कहा कि दर असल वह जिन्दा है। मरा नहीं है। मुर्दे के शरीर में से खून नहीं निकलता। उसके खून का पानी हो जाता है। इसके शरीर से खून निकल आया है अतः यह जिन्दा है। इसे धीरे से उठालो और इसके कान में कहदो कि तेरे सब गुन्हा माफ हैं, उठ खड़ा हो। यह सुनते ही चोर उठ खड़ा हुआ और राजा के सामने आकर हाजिर होगया।

राजा सोचने लगा कि यह चोर मेरे भय से मुर्दा बन गया था। मनुष्य के भय से भी मनुष्य इस प्रकार मुर्दा बन सकता है तो मुझे मृत्यु के भय से क्या करना चाहिए। राजा ने चोर से पूछा कि तेरे पर इतनी मार पड़ने पर भी तू क्यों नहीं बोला? चोर ने

उत्तर दिया कि महाराज ! जब मैंने मुर्दे का स्वांग किया था तब कैसे बोल सकता था मुर्दा बना और मार पड़ने पर रोने लगूं यह कैसे हो सकता है। राजा ने चोर से कहा मालूम होता है तुम बड़े भक्त हो। चोर ने कहा मैं भक्ति कुछ नहीं जानता, मैं तो भय से अचेत पड़ा था। राजा ने पुनः कहा कि हे चोर ! जैसे मेरे भय से तू मु अर्थात् शरीरादि के प्रति अनासक्त बना वैसे ही यदि तू संसार के दुःखों के भय से जाय तो तेरा कल्याण होजाय। चोर कहने लगा मैं इन ज्ञान की बातों को नहीं समझता

दृष्टान्त कहने का सारांश यह है कि चोर ने मुर्दे का स्वांग धरा था और पूरा निभाया भी था। यदि वह मार खाते वक्त बोल जाता तो क्या उसकी रक्षा हो सकती थी ? कभी नहीं। उसने मार खाकर भी अपने बिरुद का रक्षण किया था। चोर कैसे आप भी यदि अपने बिरुद की रक्षा करो तो भगवान् दूर नहीं हैं। ऊपर से यदि कहो हमारे हृदय में भगवान् बसा है और भीतर में काम क्रोध आदि विकारों को स्थान दे तो क्या आपका स्वांग पूरा निभ जायगा और आपके मन में भगवान् वास कर सकते चोर ने अपना बिरुद निभाया तो क्या आप नहीं निभा सकते। सांसारिक प्रपंचों झगड़ों में पड़ कर अपना बिरुद मत खोओ। भक्त कबीरदास ने कहा है कि—

तू तो राम सुमर जग लड़वा दे ॥

कोरा कागज काली स्याही, लिखत पढ़त वाको पढ़वा दे ॥
हाथी चलत है अपनी गत में, कुत्तर भुसत वाको भुसवा दे ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधु, नरक पचत वाको पचवा दे ॥

आप कहेंगे कि आप राम राम कहते हैं। राम तो दशरथ के पुत्र थे जि हुए हजारों वर्ष बीत चुके हैं। मैं कहता हूं राम आप सब के हृदय में बसा हुआ

रमन्ति योगिनो यस्मिन् स रामः

जिसमें योगी लोग रमण करते हैं वह राम है। योगी लोग आत्मा में ही र मते हैं अतः आत्मा ही राम है। ऐसे आत्मा का सदा स्मरण करिये। [illegible] [illegible] प्रकार [illegible]। [illegible]। यदि चोर हार मान कर बीच ही में [illegible] तो उसका स्वांग पूरा न निभ सकता। इसी प्रकार आप परमात्मा को [illegible] में पड़ कर [illegible] तो क्या भक्त बनने का [illegible]

होना जायगा। कभी नहीं। यह सोचना चाहिए कि मेरा आत्मा हाथी के समान है। संसार के झगड़े कुत्तों के समान हैं। यदि इस आत्मा रूपी हाथी के पीछे झगड़े टण्टे रूप कुत्ते भूसते हों तो इससे आत्मा को क्या। कोई कोरे कागज पर स्याही से कुछ भी लिखता हो तो वह लिखता रहे इससे आत्मा को क्या हानि है इस प्रकार सोचकर परमात्मा की शरण जाने से आपका सब मनोरथ सिद्ध होगा। चोर द्वारा पूरा स्वांग निभाने पर राजा का हृदय परिवर्तित होगया तो कोई कारण नहीं है कि आपके द्वारा ईश्वर भक्त का स्वांग पूरी तरह निभाने पर आपके लिए लोगों का हृदय न बदले। आप लोग, पक्की परीक्षा हो जाने के बाद भक्त के लिए सब कुछ करने के लिए तय्यार रहते हैं। भक्ति में कपट नहीं होना चाहिए। कपट का पर्दा कभी न कभी फाश हुए बिना नहीं रहता।

आप लोग घरबार वाले हैं अतः व्याख्या सुन कर यहां से घर पहुंचते ही संसार की अनेक उपाधियां आपको आ घेरेंगी। उपाधियों के वक्त भी यदि आप लोग मेरा यह उपदेश ध्यान में रक्खोगे तो आपका वास्तविक कल्याण होगा और यहां बैठ कर व्याख्यान श्रवण का कार्य सफल होगा। व्याख्यान हाल एक शिक्षालय है जहां अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती है। शिक्षालय से शिक्षा ग्रहण करके उसका उपयोग जीवन व्यवहार में किया जाता है। इसी प्रकार यहां से ग्रहण की हुई शिक्षाओं का पालन यदि जीवन में न किया गया तो शिक्षा लेना व्यर्थ हो जायगा। जो पालन करेगा उसका यह भव और पर भव दोनों सुधरेगा।

> अग्नि शीतल शील से रे, विषधर त्यागे विष।
> शशक सिंह अज गज होजावे, शीतल होवे विषरे॥ धन.॥
> सत्य शील को सदा पालते, श्रावक सुर शृंगार।
> धन्य धन्य जो गृहस्थवास में, चाले दुर्धर धार रे॥ धन.॥

सुदर्शन का व्याख्यान न तो उसके शरीर का है और न वैभव का। किन्तु वह शील का पालन करके मुक्तिपुरी में पहुँचा है अतः उसको नमस्कार करते हैं और उसका व्याख्यान भी करते हैं।

गो आज सुदर्शन मौजूद नहीं है अर्थात् उसका वह भौतिक कलेवर जिसके द्वारा उसने महान्‌शीलव्रत का पालन किया था हमारे समक्ष उपस्थित नहीं है। तथापि

उसका यशः शरीर चरित्र और मोक्ष तीनों मौजूद हैं। जिस शील का आचरण करने का आज उसका व्याख्यान किया जारहा है उस शील के प्रताप से धधकती हुई आग शीतल होजाती है। दृष्टान्त के लिए सीता की अग्नि परीक्षा प्रसिद्ध ही है। कदाचित् सीता का दृष्टान्त पुराना बताकर कोई भाई इस बात पर एतबार न करे कि शील से अग्नि कैसे शान्त होसकती है तो उनके लिए ऐतिहासिक ऐसे उदाहरण मौजूद हैं कि धर्म के परीक्षा के लिए उनको आग में झोंका गया लेकिन अग्नि उन्हें न जला सकी। केवल भारत में ही ऐसे उदाहरण नहीं है किन्तु युरोप में भी ऐसे उदाहरण हैं। अग्नि कहती है कि मैं कुशील-व्यक्ति को जला सकती हूं सुशील या सदाचारी को जलाने की मुझ में ताकत नहीं है। उस सुशील आत्मा की महान आध्यात्मिक शान्ति के सामने मेरी गरमी नष्ट हो जाती है। जब द्रव्यशील की यह शक्ति है तब भावशील की क्या बात करना।

मेरे कथन को सुन कर कि शील पालने से अग्नि शीतल हो जाती है कोई भाई एक आध दिन शील का पालन करके यह जांच न करे कि देखूं मेरे हाथ को अग्नि जलाती है या नहीं। और यह सोच कर कोई घर जाकर चूल्हे की अग्नि में अपना हाथ मत डाल देना। यदि कोई ऐसा करेगा तो वह मूर्ख गिना जायगा। जिस शक्ति की बात कही जा रही है माप भी उसी के अनुसार होना चाहिये। कहा जाता है और सच भी है कि हवा में भी वजन होता है। कोई आदमी एक लिफाफे में भर कर उसे तौलने लगे तो वह न तुलेगी। लिफाफे में हवा न तुलने से कोई आदमी यह निष्कर्ष निकाले कि हवा में वजन होने की बात बिलकुल गलत है तो यह उसकी भूल है। हवा तोली जा सकती है मगर उसे तोलने के साधन जुदे होते है हवा बहुत सूक्ष्म है अतः उसे तोलने के साधन भी सूक्ष्म होंगे किसी के ऐसा कह देने से क्या हवा के विषय में किसी प्रकार की शंका की जा सकती है।

शील की शक्ति से अग्नि शीतल हो जाती है मगर कब और किस हदतक शील पालने से होती है इसका अध्ययन करना चाहिए। केवल शील की बाधा लेली और करने परीक्षा कि हमारा हाथ अग्नि में जलता है या नहीं तो पछताना पड़ेगा। हाथ जल बैठोगे। शील की प्रशंसा करते हुए शास्त्र में कहा है —

देव दाणव गंधव्वा जक्ख रक्खस किन्नरा।
बंभचारीं नमंसन्ति दुक्करं जे करंति तं॥

भोग रहे हैं। उनके पैसे और कागज आदि पर सांप का चित्र आजभी रहता है।

कहने का भावार्थ यह है कि जब शील पूर्णरूप से पाला जाय तब सांप भी काटता। लेकिन कोई इस कथन पर से साप के मुँह में हाथ न डाले अथवा सांप को पकड़कर बच्चे पर छाया न करवाये। कोई ऐसा करे तो यह उसकी भूल है। यदि हमें शील का तेज होगा तो प्रकृति अपने आप हमारी सहायता करेगी।

शील की शक्ति से सिंह भी खरगोश के समान गरीब बन जाते हैं। जो व्यक्ति सुदर्शन के समान किसी भी समय और किसी भी परिस्थित में अपने शील का भंग नहीं होने देता किन्तु सदा शील की रक्षा करता है, उसी का शील सच्चा शील है आप में शील के प्रति सच्ची श्रद्धा हो तो फिर कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती। आज स्वे कामों के प्रति लोगों की श्रद्धा हिलचुकी है अतः सब कुछ कहना पड़ता है।

जिस व्यक्ति में पूर्ण शील है वह किसी प्रकार का चमत्कार दिखाना पसन्द नहीं करता। आप कहेंगे कि चमत्कार देखे बिना हमें शील धर्म पर विश्वास कैसे होगा? यदि साधु लोग चमत्कार दिखाने लगें तो बहुत लोग उनकी तरफ आकर्षित होंगे। यह बात ठीक है कि चमत्कार को नमस्कार मगर सच्चे साधुओं को न तो नमस्कार की परवाह होती है और न वे कभी चमत्कार दिखाने की झंझट में पड़ते हैं। वे तो अपना आत्म लाभ करने में तल्लीन रहते हैं। इस बात को एक छोटे से दृष्टान्त से समझाता हूं।

एक आदमी ने जल तरण विद्या सीखी। सीख कर लोगों को अपना चमत्कार दिखाने लगा कि देखो मैं जल में किस प्रकार टिक सकता हू और तैर सकता हूं। एक योगी वहां आ पहुँचा और कहने लगा कि अरे क्या अभिमान में फूले जा रहे हो। तीन पैसे की विद्या पर इतना घमण्ड मत करो। उस आदमी ने कहा योगीराज! मैंने साठ वर्ष तक परिश्रम करके यह जलतरण विद्या सिखी है और आप इसे तीन पैसे की बता रहे हैं। हां यह तीन ही पैसे की विद्या है कारण तीन पैसे में नदी पार की जा सकती है। नौका वाला तीन पैसे लेकर उस पार पहुँचा देता है। साठ साल के परिश्रम से यदि तूने यही सिखा है तो वस्तुतः समय बरबाद किया है। अगर साठ साल बिगाड़ कर इस तरह का खेल ही दिखाया तो जीवन नष्ट ही किया है। साठ सालों में केवल नौका ही बन सके। आत्म कल्याण न साध सके।

इसी प्रकार यदि कोई घरबार छोड़ कर साधु बने और शील धर्म का पालन करे।

र भी आत्म-कल्याण करने के बजाय चमत्कार दिखाने में लग जाय तो उसका साधुत्व ष्ट हो जायगा। अतः सच्चे साधु शील रूपी जल में निमग्न रहते हैं। वे चमत्कार नहीं खाते। साधु तो घर स्त्री आदि छोड़ कर शील का पालन करने के लिए ही कटिबद्ध ए हैं अतः पालते ही हैं मगर सुदर्शन ने गृहस्थावस्था में होते हुए भी शील का पालन किया है अतः वे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

शील किस प्रकार पाला जाता है इसके शास्त्र में अनेक उदाहरण मौजूद हैं। आप उनको ध्यान में लीजिये। केवल यह मान बैठिये कि स्त्री प्रसंग न करना ही शील । वास्तव में जब तक वीर्य की रक्षा न की जाय तब तक तेज नहीं आ सकता। अतः र स्त्री या घर स्त्री सब से बच कर नष्ट होने वाले वीर्य की रक्षा कीजिये।

एक आदमी की अंगूठी में रत्न जड़ा हुआ था। वह उसे निकाल कर पानी में फेंकना चाहता था। दूसरा आदमी अपनी अंगूठी की रक्षा किया करता था। इन दोनों में से आप किसे होशियार कहेंगे। रत्न की रक्षा करने वाले को ही होशियार कहेंगे। जिस वीर्य से आपका यह शरीर बना हुआ है उस वीर्य रूपी रत्न को इधर-उधर नष्ट करना कितनी मूर्खता है। यदि आप उसकी रक्षा करेंगे तो आप में तेजस्विता आ जायगी। आज लोग वीर्यहीन होते जा रहे हैं यही कारण है कि डाक्टरों की शरण लेनी पड़ती है। पहले के लोग वीर्यवान् होते थे अतः डाक्टरी सहायता की उन्हें बहुत कम आवश्यकता पड़ती थी।

आज संतति निरोध के नाम पर स्त्री का गर्भाशय ऑपरेशन कराके निकलवा डालने का भी रिवाज चल पड़ा है स्त्री का गर्भाशय निकलवा देने पर चाहे जितना विषय सेवन किया जाय, कोई हर्ज नहीं, यह मान्यता आज कल बढ़ती जारही है लेकिन यह पद्धति अपनाने से आपके शील की तथा आपकी कोई कीमत न रहेगी। वीर्य रक्षा करने से ही मनुष्य की कीमत है वीर्य को पचा जाने में ही बुद्धिमत्ता है।

आधुनिक डाक्टरों का मत है कि जवान आदमी शरीर में वीर्य को नहीं पचा सकता। ऐसा करने से दूसरी हानि होने की सम्भावना रहती है। इस मान्यता के विपरीत हमारे ऋषि मुनियों का अनुभव कुछ जुदा है। शास्त्र में ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये नववाड़ बतलाई हुई है जिनकी सहायता से वीर्य शरीर में पचाया जा सकता है।

अमेरिकन तत्ववेत्ता डाक्टर थोर एक बार अपने शिष्य के साथ जंगल में गया

था। शिष्य ने उनसे पूछा कि यदि कोई आदमी अपने वीर्य को शरीर में न रख तो उसे क्या करना चाहिये। धीर ने उत्तर दिया कि ऐसे व्यक्ति के लिये जीवन में एक बार स्त्री प्रसंग करना अनुचित नहीं है। ऐसा करना वीर का काम है। जिस सिंह जीवन में एक बार सिंहनी से मिलता है। वैसे ही जो जीवन में एक बार स्त्री करता है वह वीर पुरुष है। शिष्य ने पूछा कि यदि ऐसा करने पर भी मन न रुके तो करना चाहिये। धीर ने उत्तर दिया कि साल में एक बार स्त्री प्रसंग करना चाहिये। शिष्य ने पूछा यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना। गुरु ने कहा कि मास में बार स्त्री से मिलना चाहिये। यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना चाहिये, पर धीर ने उत्तर दिया कि फिर मर जाना चाहिये।

पवनजय की हनुमानजी एक मात्र संतान थे। अंजना पर कोप करके वर्ष तक अलग रहे। अलग रह कर उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया था किन्तु ब्रह्मचर्य पालन करते रहे। बारह वर्ष बाद अंजना से मिले थे अतः हनुमान जैसा वीर पुत्र हुआ था। आज लोगों को सशक्त और तेजस्वी पुत्र तो चाहिये मगर यह विचार नहीं करते कि हम वीर्य रक्षा कितनी करते हैं। डाक्टर धीर ने कहा है कि मास में एक बार स्त्री प्रसंग करने पर भी यदि मन न रुकता हो तो उस आदमी को मर ही जाना चाहिये क्योंकि जो आदमी मास में एक बार से अधिक वीर्य नाश करता है उसके लिये मरने के सिवा और क्या मार्ग है।

आज समाज की क्या दशा है। आठम चौदस को भी शील पालने की शिक्षा देनी पड़ती है। आठम चौदस की प्रतिज्ञा लेकर लोग ऐसे भाव दिखलाते हैं मानो हम साधुओं पर कोई उपकार करते हैं। सच्चा श्रावक स्व स्त्री का आगार होने पर भी अपनी स्त्री के साथ भी संतोष से काम लेगा। जहां तक होगा बचने की कोशिश करेगा। सब सुधारों का मूल शील है। आप यदि जीवन में शील को स्थान देंगे तो कल्याण है सुदर्शन किसका लड़का था। और उसका जन्म किस प्रकार हुआ यह बात अवसर होने पर आगे कही जायगी।

राजकोट
८—७—३६ का
व्याख्यान

स्त वं न का
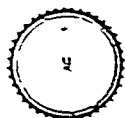
" सुज्ञानी जीवा भजले रे जिन इकवीस मां । प्रा०......... । "

यह इक्कीसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ की प्रार्थना है । परमात्मा की प्रार्थना कैसी करनी चाहिए इस विषय पर बहुत विचार किया जा सकता है किन्तु इस समय थोड़ासा प्रकाश डालता हूं । इस प्रार्थना में कहा गया है कि—

तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो ।

यह एक महावाक्य है । इसी प्रकार दूसरों ने भी कहा है-

देवो भूत्वा देवं यजेत्

इन पदों का भावार्थ यह है कि प्रभु की प्रार्थना गुलाम बनकर मत करो किन्तु परमात्म स्वरूप बनकर करो ।

यदि कोई यह कहे कि जब हम खुद परमात्म स्वरूप हैं तब प्रार्थना करने की क्या आवश्यकता रह जाती है। प्रार्थना तो इसलिए की जाती है कि हम अपूर्ण हैं परमात्मा सम्पूर्ण है। हम आत्मा हैं वह परम आत्मा है। अपूर्ण से सम्पूर्ण और परमात्मा बनने के लिए ही तो प्रार्थना की जाती है। परमात्म रूप बनकरही कैसे कर सकते हैं। ऊपर ऊपर देखने से तो यह शंका ठीक मालूम देती है किन्तु ... विचार करने से ऐसी शंका कभी नहीं उठ सकती। कुम्भकार मिट्टी से घड़ा बनाता यदि मिट्टी में घड़ा बनने की योग्यता ही न हो तो कुंभकार क्यों प्रयत्न करने लगा। सोने का जेवर बनाता है यदि सोने में जेवर रूप बनने की शक्ति ही न हो तो क्या कर सकता है। आप जो कपड़े पहिनते हैं वे सूत के धागों से बुने हुए हैं। सूत में कपड़ा रूप से परिणत होने की योग्यता न हो तो आपके शरीर की शोभा हो सकती है। यही बात परमात्म स्वरूप बनकर परमात्मा की प्रार्थना करने के लिए भी समझिये। जिस वस्तु में जैसी शक्ति होती है वही वस्तु वैसी बन सकती यदि आप में परमात्मा बनने की योग्यता अथवा शक्ति विद्यमान न हो तो ... परमात्मा की प्रार्थना करने की बात ही क्यों कही जाय? बीजरूप से आप-हम में परमात्मा विद्यमान है। प्रार्थना रूप जल सिंचन करने से वह बीज फल-द्रुप होता है। बीज ही न हो तो जल और मिट्टी क्या कर सकते हैं। अतः गुलामवृत्ति-दासवृत्ति छोड़कर अपने लिए यह मानते हुए प्रार्थना करिये कि मैं खुद परमात्मा हूं। इस कर्म रूप आवरण के कारण मेरा ईश्वरत्व ढका हुआ है। हे प्रभो! मैं आप से इसलिए ... करता हूं कि आपकी सहायता से मेरे आत्म देव पर लगा हुआ कर्म रूप मैल दूर हो और मैं भी आप जैसा ही बन जाऊं। मैं गुलाम नहीं हूं। मैं स्वतन्त्र हूं। ऐसी ... रखने से गुलामवृत्ति छूट जाती है।

राष्ट्रीय और आर्थिक स्वतन्त्रता भी स्वतंत्र भावना रखने से ही प्राप्त हो सकती सच्चा यकीन रखे बिना बिना राष्ट्रीय स्वतंत्रता भी दुर्लभ है। जब तक गुलामी की भावना में से नहीं निकल जाता तब तक स्वतंत्रता की बातें व्यर्थ हैं। सब लोग स्वतंत्रता चा... और उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न भी करते हैं किन्तु स्वतन्त्रा प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं। लक्ष्य भी एक मात्र स्वतंत्रता प्राप्ति है किन्तु मार्ग जुदे जुदे बन ये जाते हैं। कोई कहता है कि

सुशिक्षित बनाये बिना भारत आज़ाद नहीं हो सकता। कोई कहता है बिना सात करोड़ अछूत कहे जाने वाले लोगों का उद्धार किये आज़ादी दुर्लभ है। कोई कहता है बिना धर्मों और जमीयेन्गेग की उन्नति के स्वतन्त्रता की बातें बेकार हैं। कोई खादी को स्वतंत्रता की चाबी बताता है मतलब यह कि लक्ष्य एक होने पर भी मार्ग जुदा जुदा बताये जाते हैं।

यद्यपि ये सब मार्ग स्वतन्त्रता की प्राप्ति में उपयोगी हैं। किसी न किसी रूप से सब मार्ग काम के हैं। किन्तु आत्मा की गुलामी छूटे बिना सम्पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। जब तक आत्मा में गुलामी के भाव भरे हुए रहेंगे तब तक ये सब जुदे जुदे उपाय भी बेकार होंगे। ये सब उपाय अपूर्ण हैं। पूर्ण उपाय तो गुलाम वृत्ति का त्याग ही है। आत्मिक स्वतंत्रता के बिना राजनैतिक स्वतंत्रता भी इतनी उपयोगी न होगी। जब तक मनुष्य विकारों का गुलाम बना रहेगा तब तक वास्तविक शान्ति प्राप्त कर ही नहीं सकता। मान लीजिये कि एक आदमी खादी पहिनता है मगर दारू और पर स्त्री गमन के व्यसन में फंसा हुआ है। क्या केवल खादी पहिनने मात्र से स्वतंत्रता मिल जायगी। मानसिक गुलामी के रहते अन्य स्वतंत्रता किस काम की ? उस स्वतंत्रता से तो उल्टा मनुष्य स्वच्छन्द बन जायगा। अतः कहा गया है कि आत्मा को स्वतंत्र बनाओ। उसमें रहे हुए दुर्गुणों को निकाल ने का यत्न करो। यदि आत्मा स्वतंत्र होगा तो वह मन और इन्द्रियों का गुलाम न रहेगा। किसी भी दुर्व्यसन में न फंसेगा।

आज मेरा मस्तक ठीक नहीं है। गुजराती भाषा बोलने में दिक्कत होगी अतः हिन्दी भाषा में ही बोल रहा हूं। मुझे उम्मीद है कि हिन्दी भाषा आप सब की समझ में आ जायगी। दूसरी बात, जब कि मैं अपनी मातृभाषा हिन्दी को छोड़कर आपकी भाषा अपनाता हूं। तब क्या आप मेरी भाषा को न अपनावेंगे। हिन्दी राष्ट्र भाषा है। देश के बीस करोड़ आदमी इसका व्यवहार करते हैं। मुझे विश्वास है कि आपको इस भाषा से प्रेम है।

अनेक लोगों ने आत्मा को सदा गुलाम बनाये रखने का ही सिद्धान्त मान रखा है। वे कहते हैं जीव, जीव ही है और सदा जीव ही रहेगा। शिव, शिव ही है और सदा शिव ही रहेगा जीव, शिव नहीं हो सकता। जीव, शिव का दास ही रहेगा। यदि बादशाह किसी नौकर पर प्रसन्न हो जाय तो वह उसे उच्चपद पर पहुँचा देगा। सब से उच्च पद मंत्री का है। मंत्री बना देगा किन्तु बादशाहत तो नहीं देगा। इसी प्रकार ईश्वर भी हमारे कामों

से प्रसन्न होकर हमें सुखी बना देगा, किन्तु ईश्वरत्व तो नहीं दे देगा। बादशाह और नौकर के दृष्टान्त से आत्मा और परमात्मा में जो साम्य बताया गया है वह आध्यात्मिक मार्ग में लागू नहीं हो सकता। बादशाह और नौकर का दृष्टान्त स्थूल भौतिक है। जब कि आत्मा और परमात्माका सम्बन्ध सूक्ष्म है, आध्यात्मिक है। इस प्रकार की कल्पना आध्यात्मिक मार्ग में कोई मूल्य नहीं रखती।

अनलहक या खुदा शब्द का अभिप्राय यह है कि मैं ईश्वर हूं। खुदा का अर्थ है जो खुद से बना हो। तो क्या आत्मा किसी का बनाया हुआ है? क्या आत्मा बनावटी है? जैसे कुंभकार मिट्टी से घड़ा बनाता है, उसी प्रकार हमको भी किसी ने बनाया है? जब कोई हमें बना सकता है तो कोई हमारा विनाश भी कर सकता है। जैसे कि कुंभकार घड़ा बना भी सकता है और फोड़ भी सकता है। ऊपर के सब प्रश्न निरर्थक हैं। वास्तव में आत्मा वैसा नहीं है। यदि आत्मा बनावटी हो तो मुक्ति या स्वतन्त्रता के लिए किये हुए हमारे प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध होंगे। हम क्या हैं? और कैसे हैं? सो इस प्रार्थना में बताया ही है:—

> तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो।
> शुद्ध चैतन्य आनन्द विनयचन्द परमारथपद भेंटो॥ सुज्ञानी॥

कायरता और दुविधाके कपड़े फेंककर आत्म स्वरूपको पहिचानिये। आपका आत्मा ईश्वरके आत्मा से छोटा नहीं है। आप तो इतना विकास कर चुके हो, आपकी आत्मा ईश्वर के बराबर है, इस में क्या संदेह है। खसखस जितने शरीर में निगोद के अनन्त जीव रहे हुए हैं, उनका आत्मा भी ईश्वर के आत्मा के समान है।

ज्ञानियों के कथनानुसार निगोद के जीव भी ईश्वर रूप हैं। आत्मा की दृष्टि से ईश्वर और इन जीवों में कोई भेद नहीं है। यह बात समझने के लिए यदि किसी अनुभवी सद्गुरु से ठाणांग सूत्र सुना जाय तो शंका का कोई स्थान न रहे। श्री ठाणांग सूत्र के प्रथम ठाणे में कहा है कि:—

एगे आया

अर्थात् आत्मा एक है-समान है। सिद्ध और संसारी का कोई भेद न रख कर कहा है कि आत्मा एक है। सब का आत्मा एक समान है जैनों के 'एगे आया' एका-

एक साहूकार का लड़का बुरी संगत में फंस गया। उसके मुनीम गुमाश्ता आ उसे बहुत समझाते मगर वह किसी की न मानता था। उसने उन समझाने वाले मुनं गुमाश्तों आदि को भी नौकरी से पृथक् कर दिया। बुरी सोबत में पड़कर उसने अप सारी सम्पत्ति भी खो दी। हितकारी लोग उसे बुरे लगते थे और दुर्जन लोग उसे भ मालूम पड़ते थे। दुर्जनों की सलाह मानकर वह दरिद्र बन गया। स्वार्थी लोग तबतक प फिरा करते हैं। जबतक उनका मतलब सिद्ध होता है। स्वार्थ सिद्ध होजाने पर अप भविष्य में स्वार्थसिद्धि की आशा न रहने पर वे निकट नहीं आते। जैसे पक्षी वृक्षपर तब रहते हैं जबतक कि उसपर फल होते हैं। फलों के नष्ट होजाने पर पक्षी अन्यत्र चले जाते हैं स्वार्थी लोगों का भी यही हाल है। उस साहूकारके लड़केको उसकेस्वार्थी मित्रोंने छोड़ दिया अब उसके पास खाने तक के लिए पैसे न रहे। लड़का सोचने लगा कि अब क्या कर चाहिए। अन्य काम तो रोके भी जा सकते हैं मगर इस पेट पापी को तो कुछ न कु दिए बिना काम न चलेगा। लड़का सदा मौज मजे में ही रहा था अतः कोई हुनर उद्यो भी न जानता था। वह भूखों मरने लगा। अन्त में भीख मांगना प्रारंभ कर दिया।

भिखारी की स्थिति कितनी दयनीय होती है यह बात किसी से छिपी नहीं है कभी भिखारी को अच्छा टुकड़ा भी मिल जाता है मगर उसकी आत्मा कितनी पतित जाती है। लड़के की स्थिति खराब हो गई। वह दर दर का भिखारी हो गय जहाँ जाता भूल कर हाथों हाथों खाने लगा उसके पास कोई दूसरा बर्तन न थ अतः ठीकरे में ही खाने लगा।

दैवयोग से भीख मांगते मांगते एक दिन वह अपने पिता के जमाने के किसी मुनीम के घर जा निकला। और खाने के लिये रोटी मांगने लगा। लड़का मुनीम को न पहिचानता था मगर मुनीम ने लड़के को पहिचान लिया। मुनीम ने मन में विचार किया कि यह मेरे भूतपूर्व उपकारी सेठ का लड़का है मगर आज इस की क्या दशा है! सेठ का मुझ पर मेरे पिता के समान उपकार है। मुनीम यह सोच रहा था और वह लड़का 'भूख लगी है, कुछ भोजन हो तो देओ' कि रट लगा रहा था। मुनीम चाहे आदमी ने दो रोटी देकर उसे रवाना कर देता मगर उसके मन में कुछ दूसरी भावना थी। किसी भिखारी को दो पैसे देकर उससे पिंड छुड़ाना दूसरी बात है और उसका सुधार करना या जीवन के लिए उसका निर्वाह निश्चित कर देना अन्य बात है। दूसरे देने के उदाहरण तो बहुत हैं मगर मांगने वाले को भिखारी बने रहने देकर देने की उदारता है। दुखी को सुखकर देने की उदारता बहुत कम है।

मुनीम ने लड़के से कहा कि यहाँ मेरे पास आओ। लड़का सोचने लगा कि मैं इस लिबास में ऐसे भव्य भवन में कैसे जाऊँ। वहीं खड़ा खड़ा कहने लगा कि जो कुछ देना हो वह यहीं पर दे दो। मुनीम के बहुत आग्रह से वह उसके पास चला गया। मुनीम ने पूछा कि क्या तुम मुझे पहिचानते हो ? लड़के ने कहा, आप जैसे उदार और बड़े आदमी को कौन नहीं जानता। मुनीम ने कहा, इन बढ़ावा देने वाली बातों को जाने दो। मैं तेरा नौकर हूँ। तेरी स्थिति बिगड़ जाने से तू मुझे भूल गया है। मैं तुझे नहीं भूला हूँ। लड़के ने कहा माफ कीजिये सेठ साहिब, मेरी क्या बिसात जो आपको नौकर रख सकूं। मैं तो दर-दर का भिखारी हूँ। मुनीम ने याद दिलाया कि मैं तुम्हारे यहां नौकर था। जब तुम छोटे थे तब बुरी संगति में फँस गये थे। मैं तुम्हें खूब समझाता था कि इन धूर्तों की संगति में मत जाया करो। मेरी बात न मानने से आज तुम्हारी यह दशा है। तुमने मेरी बात न मानी थी अत अब मैं तुम्हारी अवहेलना नहीं कर सकता।

ज्ञानी लोग अभिमान नहीं करते। वे कभी यों नहीं कहते कि 'देखो मेरी बात न मानी थी अतः अब उसका भोग रहे हो! अब मैं कुछ मदद न करूँगा'। ज्यादातर लोग किसीको उपालम्भ देने में ही अपना पाण्डित्य मानते हैं। उपालम्भो हि पाण्डित्यम्। मैंने ऐसा कहा था, वैसा कहा था, मेरा कहना न माननेसे ऐसा हुआ आदि बातें समझदार लोग नहीं कहते। आज कल के बहुतसे सुधारक कहे जाने वाले लोग भी ऐसे ऐसे बुरे लफ्जों का प्रयोग करते हैं कि कुछ कहा नहीं जाता।

लड़के ने मुनीम को पहचान लिया। झट पैरों में पड़ गया और अपने किये का पछतावा करने लगा यदि आपको नौकरी से अलग न करता तो मेरी यह दुर्दशा न होती। मुनीम ने आश्वासन देते हुए कहा घबड़ाओ मत, मैं अब भी तुम्हारा सेवक हूं। यद्यपि तुम्हारे पिता के वक्त की सब दिखने वाली सम्पत्ति विनष्ट हो चुकी है तथापि मुझे कुछ गुप्त निधान का पता है। अब यदि मेरा कहना मानना मंजूर हो और बुरी संगत में न फंसो तो मैं भेद बताने के लिए तय्यार हूं जिससे कि तुम पहिले के समान धनवान् बन जाओ। लड़के ने सब बात स्वीकार करली। उसको स्नानादि कराकर अपने साथ भोजन करने के लिए बिठा लिया। उस मुनीम ने यह सोचकर कि यह भिखमंगा रह चुका है अतः इस के साथ न बैठना चाहिए घृणा नहीं की। उसने यह सोचा कि अज्ञान का ही दोष है इससे जो भूलें हुई हैं वे अब यह छोड़ रहा है। भविष्य में सुधार करने का प्रेम लेता है। अत घृणा करना ठीक नहीं है किन्तु इसका सुधार करना चाहिये। घृणा करने की अपेक्षा यदि सुधार करने की बात अपना ली जाय तो मनुष्य जाति का उद्धार ही जाय।

लोग पुण्य और पाप का अर्थ करते हुए कहते हैं कि जो पुण्य लाया है वह पुण्य भोगता है और जो पाप लाया है वह पाप। लेकिन यदि सब लोग ऐसा बहाने बनायें तो क्या दशा हो? इसका ख्याल करिये। डाक्टर बीमार से कहदे कि तू अपने पापों का फल भोग रहा है मैं कुछ इलाज न करूँगा तो क्या आप यह बात पसंद करोगे? पापी को पाप का उदय हुआ है मगर आपको किसका उदय है?

दया धर्म पावे तो कोई पुण्यवान् पावे, ज्यारे दया की बात सुहावे जी।
भारी करमा अनन्त संसारी, जारे दया दाय नहीं आवे जी॥

लोग यह मानते हैं कि जिनके पास गाड़ी, घोड़ी, वाड़ी तथा बाड़ी आदि माल हों, जिसे अच्छा खान पान, कपड़ा, गहना, मिलता हो, तथा जिनके यहाँ नौकर चाकर हों वह पुण्यवान् है। इसके विपरीत जिसके पास खाना पीना और कपड़े आदि न हों वह पापी है। पापी और पुण्यवान् की ऐसी व्याख्या अज्ञानी लोग करते हैं। ज्ञानीजन ऐसी व्याख्या नहीं करते। वे किसीके पास कपड़े गहने आदि होने से उसे पुण्यवान् नहीं मानते और न इनका अभाव होने से किसी को पापी ही मानते हैं। ज्ञानी उसको पुण्यवान् मानते हैं जिसके हृदय में दया है। और जिसमें दया नहीं है वह पापी है। आप लोग कहेंगे कि यह नई व्याख्या आपने कैसे निकाली है। मैं कहता हूँ कि आप लोग पुण्यवान् और पापी की व्याख्या ऐसी ही मानते हैं जैसी अभी मैं कर रहा हूँ। अब मन में करने की देरी है।

मान लो कि आपका एक लड़का है जो अकेला ही है। पानी आपका [illegible] पुत्र है। वह सड़क पर खेल रहा था। एक सेठ उधर से मोटर में सवार होकर निकला। [illegible] में अक्सर दुर्घटनाओं का भी प्रसंग होता है। जो जैसा होता है उसके [illegible] वैसे ही होते हैं। सेठ और कुत्ता दोनों मोटर में बैठे थे। कुत्ता [illegible] था। आपका लड़का मोटर की झपट में आ गया। उसे बहुत चोट आई। [illegible] और बहुत से लोग इकट्ठे हो गये। तब कुत्ता और सेठ की बातें सुनीं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] यह कहता है? [illegible]

पुण्यवान् नहीं माना जा सकता। यदि हृदय में दया हो और ऊपरी आडम्बर न हो, तो भी वह पुण्यवान माना जायगा और महापुरुष उसकी सराहना करेंगे।

वह मुनीम कह सकता था कि ऐ लड़के! तू अपने किये का फल भोग। तू अपने पापों का फल भोग रहा है, इसमें मैं क्यों दखल दूं। किन्तु बुद्धिमान और ज्ञानी लोग ऐसी निर्दयता की बात नहीं कहते। वे सोचते हैं कि यदि किसी ने एक बक्त कहना न माना और कुमार्ग में लग गया तो भी भविष्य में उसका सुधार हो सकता है। कौन कह सकता है कि कब किसकी दशा सुधर सकती है और कब नहीं। हमारा कर्त्तव्य तो सदा आशावाद पूर्ण प्रयत्न करने का है। किसी के पूर्व के पाप या अवगुणादि पर ध्यान न देकर वर्त्तमान में यदि वह सुधरना चाहता है तो सुधारने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए।

कोटि महा अघ पातक लागा, शरण गये प्रभु ताहु न त्यागा।

ज्ञानीजन शरण में आये हुए के पापों पर ध्यान नहीं करते क्योंकि वे जानते हैं कि जब वह शरण में आ गया है तो पाप भावना को भी छोड़ चुका होगा। वे तो उसकी स्थिति सुधारने का प्रयत्न करते हैं, ज्ञानीजन कीड़े मकोड़े आदि पर भी दया करते हैं तो मनुष्य पर क्यों न करेंगे।

अनुकम्पा और पौषध की दया के सम्बन्ध में मुझे व्याख्यान में कुछ कहना था किन्तु अन्य अन्य बातों में वह बात कहना रह गई थी। संक्षेप में बात कहता हूँ। आप लोग विचार करते होंगे कि हमने पौषध की स्थिति की है इस लिए महाराज ने अनुकम्पा [illegible] किया है। किन्तु यदि अनुकम्पा में एक स्थान पर ठहरने का तुम्हारा नियम न होता तो [illegible] स्थिति होने पर भी तुम वहाँ ठहर सकते थे। तुम्हारा नियम है अतः वहाँ [illegible] स्थिति होने पर भी नहीं हट सकते। पौषध में [illegible] के कारण बहुत सी [illegible] करते हैं। उनकी रक्षा करने के लिए [illegible] तुम केवल एक स्थान पर ठहरे हो। अब तुम्हारा अन्तःकरण यह कहता है कि जिन जीवों की रक्षा करने के लिए तुम [illegible] हुए हो, उनकी रक्षा भी करो। पौषध में [illegible] [illegible] [illegible]

एक आदमी सड़ा आटा, सड़ी दाल आदि चीजें खाता है जिनमें कीड़े पड़ चुके हैं। दूसरा आदमी ऐसी चीजें नहीं खाता किन्तु साफ स्वच्छ जीव रहित वस्तुएं उपयोग में लेता है। इन दोनों में से आप किसको दयावान् कहोगे ? एक आदमी घर की चक्की से पिसा हुआ आटा खाता है और दूसरा आदमी कल की चक्की से पिसा हुआ आटा खाता है। दोनों में से किसको आप दयावान् कहोगे। इन दोनों तरह के आटों में किसी प्रकार का अन्तर है या नहीं ? थोड़ी देर के लिये यह मान लिया जाय कि आप अनाज देखकर साफ करके लेगये किन्तु आपको नाज डालने से पूर्व जो नाज पिसा जा रहा था उसमें कीड़े थे तब आप कैसे बच सकते हैं। उस कीड़े वाले आटे का अंश आपके आटे में भी आवेगा या नहीं ! अवश्य आयेगा। कीड़ों के कलेवर से मिले हुए आटे का किञ्चित् भाग आपके पेट में जरूर पहुँचेगा। मैंने उरला में सुना कि जिन टोकरों में मच्छी बेंची गई थी उन्हीं टोकरों में गेहूँ भरकर चक्की पर पिसवाये गये। ऐसे आटे का अंश आपके पेट में पहुँचेगा ही। दुःख इस बात का है कि आजकल घर पर पीसना कठिन हो रहा है। यह ख्याल किया जाता है कि हम तो बम्बई की सेठानियां हैं हम चक्कीसे आटा कैसे पीसे। कल की चक्की में सीधा पीसा मंगवायें।

आटा दाल आदि प्रत्येक वस्तु के विषय में विवेक रखिये। यह मैं जरूर कहूंगा कि मेवाड़ मालवा और मारवाड़ की अपेक्षा यहां ज्यादा विवेक है। फिर भी विशेष सावधानी रखने की जरूरत है।

जो दया पात्र है उसकी स्थिति सुधारने वाला पुण्यवान् है। दयापात्र को पापी कह कर दुत्कारने वाला स्वयं पापी है। वह पुण्यवान् नहीं हो सकता चाहे उसके पास कितनी ही ऋद्धि क्यों न हो।

मुनीमने उस लड़को आश्वासन देकर अपनेयहां रखा और धीरे धीरे उसकी आखें सुधारी। बिका हुआ मकान वापस खरीद लिया गया। उस घर में गुप्त रूप से रखे हुए रत्न निकाल कर उसे दे दिए गये। लड़के ने मुनीम से कहा कि ये रत्न आपही के हैं कारण मैं तो मकान बेच ही चुका था। मुनीम ने कहा ऐसा नहीं हो सकता। जो वस्तु जिसकी हो वह उसी की रहेगी। लड़के ने मुनीम के रत्न हैं, कह कर कितना विवेक दिखाया। और अपनी कृतज्ञता प्रकट की। मुनीम ने अपने सेठ के पुत्र की स्थिति सुधार दी। वह पुण्यवान् था। अब यदि सेठ के लड़के से भीख मांगने के लिए कहा जाय तो क्या वह मांगेगा ! कदापि नहीं।

वे सत्पुरुषों के समागम में आने लगें तो उनका यह संदेह मिट जाय।

मदिरा न पीना और मांस न खाना यह जैनों का कुल रिवाज है। इस वंश परम्परा-गत रिवाज का पालन तभी तक हो सकता है जब तक लोग हमारे पास आते रहें। हमारे पास न आयें किन्तु आजकल के सुधरे हुए कहे जाने वाले लोगों की सोबत में रहें तो इस रिवाज का पालन नहीं हो सकता। आधुनिक सुधरे कहे जाने वाले लोग तो कहते हैं कि जैन धर्म में मांस मदिरा निषेध निष्कारण ही है। यदि भोजन हज़म न होता हो तो थोड़ी शराब पीली जाय तथा शक्ति वृद्धि के लिए मांस भक्षण किया जाय तो क्या हर्ज है। ऐसी शिक्षा पाने वाले लोग कब तक बचे रह सकते हैं। माता पिता का कर्त्तव्य है कि वे इस बात का ध्यान रखें कि हमारा लड़का बुरी सोबत में न पड़ जाय। अपने लड़कों को धार्मिक शिक्षा दिलाने का प्रयत्न किया जाय और सदा इस बात का खयाल रखें कि जैन कुल में जन्म लेकर कहीं बुरी स्थिति में न पड़ जाय। प्रयत्न करने और सावधानी रखने पर भी यदि कोई लड़का न सुधरे तो लाचारी होगी। प्रयत्न करने के पश्चात् भी न सुधरने वाले को तो श्रीकृष्ण भी न सुधार सके थे।

श्रीकृष्ण ने अपने परिवार के लोगों से कह दिया था कि तुम लोग यह मत खयाल करना कि हम कृष्ण के कुल में जन्मे हैं अतः बुरे काम करें तो कोई हर्ज नहीं है। यदि तुम बुरे काम करोगे तो उस के परिणाम से मैं तुम्हारा बचाव नहीं कर सकूंगा। तुम्हारी रक्षा और तुम्हारा उद्धार तुम्हीं स्वयं कर सकते हो। दूसरा कोई नहीं कर सकता।

उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमव सादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

अर्थः—आत्मा से आत्मा का उद्धार स्वयं करो। आत्मा को अवसादित मत करो। आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है।

अतः अपना उद्धार स्वयं करो। दूसरों के भरोसे मत रहो। यदि अधिक न कर सको तो कम से कम तीन काम मत करो जिससे तुम्हारी रक्षा हो सकेगी। जुआ, मदिरा और परस्त्री का त्याग करलो।

लोग जुआ, खेल कर सीधा धन लेने जाते हैं। किन्तु पास वाला धन खो बैठते हैं और जुआ खेलने की आदत सिवाय सीख लेते हैं। जिससे भविष्य भी बिगड़ जाता है।

जा सकता कि चम्पा एक थी या दो। हम इतिहास नहीं सुना रहे हैं किन्तु धर्म कथा सुना रहे हैं। धर्म से अनेक इतिहास निकलते हैं। अतः धर्म कथा से इतिहास को मत तोलो। यह धर्म कथा है। इस में बताये हुए तत्त्व की तरफ ख्याल करो। भगवान महावीर के समय में ही चम्पा के कोणिक और दधिवाहन दो राजा शास्त्रों में वर्णित हैं अतः कोणिक और दधिवाहन दोनों की चंपा एक ही थी अथवा अलग अलग कहा नहीं जा सकता।

जिनदास चम्पा नगरी में रहता था। वह आनन्द श्रावक के समान श्रावक था। उसकी स्त्री का नाम अर्हद्दासी था जो श्राविका थी। ये दोनों नाम वास्तविक हैं या काल्पनिक सो नहीं कहा जा सकता। लेकिन दोनों ही नाम सार्थक और आनन्द दायक हैं। पहले के लोग **'यथा नाम तथा गुण'** होते थे। यही कारण है कि उन के यहां सुदर्शन जैसा लड़का उत्पन्न हुआ था। जैसों का फल तैसा होता है यह प्रसिद्ध बात है। आप भी यदि सुदर्शन जैसा पुत्र चाहते हो तो जिनदास और अर्हद्दासी जैसे बनो। ऐसा करोगे तो कल्याण है।

राजकोट
८—७—३६ का
व्याख्यान

मुनि पुकार पशु की करुणा करि जानि जगत सुख फीको ।
नव भव नेह तज्यो जौवन में उग्र सेन नृप धी को ॥

जब भगवान् तोरणद्वार पर आ रहे थे तब उन्हें उस समय भारत वर्ष में फैली महान् हिंसा के दर्शन हो रहे थे । उस समय यादवी हिंसा और यादवी अन्याचार बहुत गये थे अपनी सीमा लांघ चुके थे । यादवों का अन्याय और अत्याचार सारे संसार में रहा था । उनके द्वारा हिंसा के घोर काण्ड हुआ करते थे । न केवल विवाहादि प्रसंगों किन्तु हर प्रसंग पर पशुओं की घोर हिंसा की जाती थी । उस समय मांस मदिरा विषय सेवन एक साधारण बात हो गये थे इस पाप के रोकने के लिए ही भगवान् नेमि ने विवाह का स्वांग रचा था और बारात सजाई थी ।

प्रत्येक बात पर एकान्त दृष्टि से विचार नहीं करना चाहिए किन्तु अनेकान्त से सोचना चाहिए । भगवान् तीन ज्ञान के धारी थे वे जानते थे कि मेरे पूर्वज इ तीर्थंकर यह फरमा गये हैं कि नेमजी ब्रह्मचारी रहेंगे । यह जानते हुए भी भगवान् नेमि विवाह करने के लिए क्यों चले थे । इस विषय पर यदि बारीकी से विचार करोगे तो मा होगा कि भगवान् ने साकार भगवान् का कैसा रूप रचा था । नेमिनाथ ने साकार भग का जैसा चरित्र रचा था वैसा चरित्र मेरी समझ से दूसरे किसी ने नहीं रचा है । इन सानी का उदाहरण मुझे नहीं दिखाई देता है । यदि कोई ऐसा दूसरा उदाहरण बतावे मैं मानने के लिए तय्यार हूं किन्तु ऐसा उदाहरण मिलना बहुत ही कठिन है । जैसा रच त्मक काम भगवान् अरिष्टनेमी ने करके दिखाया वैसा किसी ने नहीं किया ।

यादव कुल में जैसी हिंसा और पाप फैले हुए थे उनके विषय में भगवान् सोचा करते थे कि मैं जिस कुल में उत्पन्न हुआ हूं, उस कुल के युवक इस प्रकार के कार्य करें, यह मैं कैसे सहन कर सकता हूं । भगवान् चुपचाप सारी परिस्थिति देख रहे और किसी अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे । तीन सौ वर्ष तक वे अवसर की प्रतीक्षा क रहे अन्त में यह निश्चय किया कि इस पाप के लिए दूसरों को दोषी बनाने की अपेक्षा मिटाने का स्वयं ही प्रयत्न करना चाहिए ।

आज कल के लोग दूसरों को दोष देना तो जानते हैं मगर खुद का कर्त नहीं समझते । यदि लोग अपना अपना कर्त्तव्य देखने लगे और दूसरों पर दोषारोपण क

छोड़ दे तो संसार को सुधरने में क्या देर लगे। जब मैं जंगल गया था तब रास्ते में एक बोर्ड पर यह लिखा हुआ देखा कि '**आलस्य, मनुष्य के लिए जीवित कबर है।**' यदि विचार किया जाय तो यह वाक्य कितना अच्छा और ठीक है। आलस्य ही मनुष्य को जीवित कबर में डालता है। आलस्य के कारण ही मनुष्य अपने कर्तव्य की ओर निगाह नहीं करता और दूसरों पर दोष थोपता है!

भगवान् अरिष्टनेमि अपना कर्तव्य देखते थे अतः आलस्य त्यागकर रचनात्मक काम किया। यदि वे शक्ति से काम लेना चाहते तो भी ले सकते थे। क्यों कि उन में श्री कृष्ण को पराजित करने जितनी शक्ति थी। हाथ में चक्र लेकर उसका डर दिखा कर भी लोगों से कह सकते थे कि हिंसा बंद करते हो या नहीं। और लोग भी उनके डर के मारे हिंसा बंद कर सकते थे। किन्तु भगवान् जोर जुल्म पूर्वक धर्म प्रचार करने के विरोधी थे। वे जानते थे कि सख्ती के द्वारा यद्यपि लोग ऊपरी हिंसा करना छोड़ देंगे किन्तु उन की भावना में जो हिंसा होगी वह ज्यों की त्यों कायम रहेगी बल्कि जोर जुल्म का शिकार बना हुआ व्यक्ति अब हिंसा अधिक ही करता है। भगवान् ने शक्ति प्रयोग नहीं किया। हिंसा बंद कराने का काम बड़ा गंभीर है। हिंसा को बंद करने के लिए हिंसा की सहायता लेना ठीक नहीं है। इस प्रकार हिंसा बंद भी नहीं हो सकती। खून का भरा कपड़ा खून से धोने से कैसे साफ हो सकता है। अहिंसा के गंभीर तत्त्व की रक्षा करने के लिए भगवान् अवसर की प्रतीक्षा करते रहे। जब उन्होंने उपयुक्त अवसर जान लिया तब भी लोगों से यह न कहा कि मैं अमुक प्रयोजन से बरात सजा रहा हूं। अतः लोगों को सच्ची हकीकत मालूम न थी। भगवान् नेमिनाथ को बरात सजाकर विवाह करने के लिए जाते देख कर इन्द्र भी आश्चर्य में पड़ गये और विचार करने लगे कि इक्कीस तीर्थंकरों से हमने ऐसा सुना है कि बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ बाल ब्रह्मचारी रहेंगे। फिर भगवान् ऐसा क्यों कर रहे हैं महापुरुषों के कामों में दखल करना ठीक नहीं है सोचकर इन्द्र ने यह नाटक देखने का ही निश्चय किया।

फलानुमेया खलु प्रारंभाः ।

महापुरुषों ने किस मतलब से कौनसा काम आरम्भ किया है यह साधारण व्यक्ति नहीं समझ सकते। उस काम के परिणाम से ही जान सकते हैं कि अमुक मतलब से वह काम किया गया था।

ईशानेन्द्र और शक्रेन्द्र भी बारात में शामिल हो गये। श्री कृष्ण को मन में चि हो गई कि कहीं ये इंद्र लोग विवाह में विघ्न न कर दें। बड़ी मुश्किल से बारात सजाई और नेमजी को तय्यार किया है। श्री कृष्ण ने शक्रेन्द्र से कहा कि आप बारात में पधारे सो तो अच्छी बात है मगर महापुरुषों का यह नेम होता है कि वे बिना आमंत्रण के कि जल्से में शरीक नहीं होते। आप बिना आमत्रण के यहां कैसे पधारे हैं। कृष्ण के पूछने के उद्देश को इन्द्र समझ गये। इन्द्र ने कहा हम किसी विशेष प्रयोजन से नहीं आये हैं हमें यह विवाह कौतूक मालूम पड़ा है अतः देखने आये हैं। देखने के लिए आमन्त्रण की जरूरत नहीं होती। देखने का सब किसी को अधिकार है।

हेमचन्द भाई और मनसुख भाई दोनों यहां बिना आमन्त्रण के आये हैं। ये क्यों आये हैं और किसके मेहमान हैं। ये किसी के मेहमान नहीं हैं ये हमारे मेहमान हैं। लेकिन हमारे पास खानपान और पान सुपारी नहीं है जिससे इनकी मेहमानदारी करें। खान पान और पान सुपारी इनके पास बहुत है इसके लिए ये बिना आमन्त्रण नहीं आ सकते। ये जैसी मेहमानी लेने आये हैं मैं यथा शक्ति देने का प्रयत्न करूँगा। मेरे खयाल से सदुपदेश सुनने आये हैं।

इन्द्र सोच रहे हैं कि इक्कीस तीर्थंकरों की कही हुई बात ये कैसे लोप रहे हैं। देखें क्या होता है। श्री कृष्ण से कह दिया आप चिन्ता न करें हम किसी प्रकार का विघ्न न करेंगे। हम तो चुपचाप कौतुक मात्र देखेंगे। आपभी भगवान् के मंगल चरित्र को देखिये।

बारात के साथ भगवान् तोरण द्वार पर आ रहे हैं। तोरण द्वार के मार्ग में बाड़ों और पिंजरों में बन्द किये हुए अनेक पशु पक्षी रोके हुए थे कुछ पशु पक्षी मनुष्यों के सहवास में रहने वाले थे और कुछ जगल के निर्दोष प्राणी थे। इन पशुओं के मन में बड़ी खलबली मची हुई थी।

लोग सोचते होंगे कि घबड़ाने न घबड़ाने में पशुपक्षी क्या समझते होंगे। किन्तु मौत से सब जीव डरते हैं और उससे बचना चाहते हैं। कोठारी बलवंतसिंह जी ने उदयपुर की एक घटना मुझे सुनाई थी। उन्हों ने कहा- उदयपुर के कसाइयों के यहाँ से एक मेंढ भाग निकला कसाई लोग उसे कत्ल करने लेजा रहे थे। वह किसी तरह अपनी ब

बचाकर भाग गया और पिछोला नामक तालाब में कूद गया। तैरता तैरता उस पार पहुँच गया तथा पहाड़ोंमें भाग गया। वह तीन दिन तक पहड़ोंमें रहा लेकिन किसीभी हिंसक पशु ने उसे हाथ न लगाया। तीन दिन बाद वह भेड दरबार को शिकार करते वक्त मिला। दरबार ने पकड़ कर उसे मेरे यहाँ पहुँचा दिया। प्रत्येक जीव अपनी रक्षा करने का प्रयत्न करता है। कत्लखाने जाने के वक्त का दृश्य सब जानते ही हैं।

भगवान् अवधिज्ञानी थे अतः यह जानते थे कि ये पशु पक्षी क्यों बांध कर रखे हुए हैं। फिर भी पशुओं की पुकार सुन कर सब लोग इस बात को सुन सकें इस आशय से सारथी से पूछते हैं—

कस्सट्ठाए इमे पाणा एए सव्व सुहेसिणो वाडेहिं पिंजरेहिं च सन्निरूद्धाए अत्थइ।

अर्थ—हे सारथी! ये सुख चाहने वाले प्राणी किसके लिए बाड़े और पिंजड़ों में बंद है।

भगवान् भी बालक या अनजान के समान चरित्र कह रहे हैं। एक साधारण आदमी भी इस बात का अंदाजा लगा सकता है कि ये प्राणी विवाह के समय बरातियों और मेहमानों के लिए मारे जाने के लिए ही बन्द किये हुए हैं। भगवान् ने साधारण व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले अनुमान से काम न लेकर सारथी से पूछा कि ये जीव क्यों बंद किये गये हैं। जैसे हम लोग सुखैषी हैं वैसे ही ये प्राणी भी सुखैषी हैं। इन बेचारों को इन की मरजी के खिलाफ बंद करके क्यों दुःखी बनाया जा रहा है।

भगवान् के इस कथन में बहुत रहस्य है। लोग समझते हैं कि हमारे सुख के लिये ये पशु पक्षी इकट्ठे किये गये हैं मगर भगवान् के कथन का रहस्य है कि तुम लोग सुखी नहीं हो। यदि तुम सुखी होते तो ये पशु-पक्षी दुःखी नहीं हो सकते। अमृत के वृक्ष में अमृतमय ही फल लगता है। वह जहरीला फल नहीं दे सकता। क्षीर सागर के पानी से किसी को विष नहीं चढ़ सकता। जो दवा लाभदायक है वह किसी को मार नहीं सकती। अर्थात् जो जैसा होता है उसका फल भी वैसा ही शुभ या अशुभ होता है। यदि तुम खुद दुःखी हो तो तुम से दूसरा कोई सुखी नहीं हो सकता। और यदि तुम सुखी हो तो दूसरा तुम से दुःखी नहीं हो सकता। जो सुखी है उसमें से सब के लिए सदा सुख ही निकलेगा। दुःख कदापि नहीं निकलता। जब तुम्हारे आश्रित प्राणी दुःखी हैं भगवान ने यह कहा था

है। मैं नहीं कहता कि आप लोग सब कुछ छोड़ कर साधु बन जाय। और बन जाय तो मुझे खुशी ही होगी। मैं साधु बनने के लिए जोर नहीं दे रहा हूं। मेरा तो यह कहना है कि आज आप जिस प्रकार का जीवन व्यतीत कर रहे हैं उससे बेहतर जीवन व्यतीत कर सकते हैं। आप इस प्रकार जीवन निर्वाह करने का प्रयत्न कीजिये कि जिसमें दूसरों को तकलीफ न पहुँचे या कम से कम पहुँचे।

आप लोग तपस्या करते हैं। खासकर स्त्रियां बहुत तपस्या करती हैं। मैं पूछना चाहता हूँ आप पारणा किस दूध से करते हैं। मोल लिए हुए दूध से अथवा घर पर रखी गाय भैंस के दूध से। यदि भगवान् आकर आप से जवाब तलब करें तो आप क्या उत्तर दे सकते हैं। आप कहेंगे कि यदि हम दूध का उपयोग करने में लम्बा विचार करने लगें तो जीवन निर्वाह कठिन हो जाता है। तो क्या आपके पूर्वज इस बात को नहीं समझते थे। पहले के लोग जिस का घी दूध खाते थे उसकी रक्षा करते थे। किन्तु आज के लोग खाना तो जानते हैं मगर रक्षा करना नहीं जानते। जैसे आज यह कह दिया जाता है कि हम क्या करें हम तो पैसे देकर दूध मोल लाते हैं, गायें वाले गायों की क्या हालत करते हैं इस से हमें क्या मतलब। इसी प्रकार भगवान् अरिष्टनेमी भी कह सकते थे कि बाड़े में घेरे हुए पशुओं से मुझे क्या मतलब। मैंने कहा पशुओं को बँधवाया है। मेरी भावना तो बँधवाने की न थी। किन्तु भगवान् ने ऐसा नहीं कहा। उस विवाह पक्ष के पाप के बोझ को भगवान् ने अपने सिर पर स्वीकार किया। उनके निमित्त से होने वाली हिंसा को उन्होंने अपना पाप माना और उसमें अपना श्रेय नहीं देखा। आप लोग जो मोल का दूध पीते हो उसमें होने वाली हिंसा को आप अपनी हिंसा मानते हो या नहीं। यह हिंसा किसके निमित्त से हुई है, जरा विचार कीजिये।

सुना है कि मेहसाना और हरियाणा की बड़ी २ भैंसे बम्बई में दूध के लिए आती हैं। वहाँ के लोग एक भैंस दो दो सौ तीन तीन सौ रुपये देकर खरीदते हैं। जब तक वह भैंस दूध देती है और दूध में मक्खन आदि की पड़त ठीक बैठती है तबतक रखी जाती है, बाद में कसाई के हाथ बेच दी जाती है। कसाई खानों में भैंसे किस बुरी तरह कत्ल कर दी जाती हैं इसका विचार करें तब पता चले कि मोल का दूध खाना कितना हराम है। जब भैंसे दूध देती हैं तब ग्वाले लोग उन्हें तबेले में बांध रखते हैं। बड़ी तंग जगह में वह हर ... रहती है। बम्बई के यहाँ आते वक्त दुखी दशा का अनुभव करके भैंसे कई

प्रसन्न होती हैं। उन्हें क्या पता कि उनकी यह प्रसन्नता कितनी देर तक टिकेगी। जब भैंसे कसाई खाने में पहुँच जाती हैं तब उन्हें ज़मीन पर पटक कर यंत्र के द्वारा उनके स्तन में रहा हुआ दूध बूंद २ करके खींच लिया जाता है। दूध निकाल लेनेके बाद उन्हें इसप्रकार पीटा जाता है जिस प्रकार पापड़ का आटा पीटा जाता है। पीटते पीटते जब सारी चर्बी उनके ऊपर आ जाती है तब उन्हें कत्ल कर दिया जाता है। उनके कत्ल होने का दृश्य यदि आप लोग देख लें तो ज्ञात होगा कि आप के मोल के दूध के पीछे क्या क्या अत्याचार होते हैं।

आप ज़रा विचार करिये कि वे भैंसे बम्बई में क्यों लाई गई थी। क्या वे मोल का दूध खाने वालों के लिए नहीं लाई गई थी ? पैसा देकर दूध खरीद ने से इस पाप से बचाव नहीं हो सकता। कोई जैन धर्म का अनुयायी पैसे का नाम लेकर अपना बचाव नहीं कर सकता। न जैनों के लिए यह उत्तर शोभनीय भी है।

मैंने बांदरा (बम्बई) आदि स्थानों के कत्ल खानों की रोमांचकारी हकीकतें सुनी हैं। घाटकोपर (बम्बई) चातुर्मास में मैंने पशु रक्षा पर बहुत उपदेश दिया था जिस पर वहां जीवदया संस्था भी खुली है। आपके यहां कैसे चलता है सो मुझे पता नहीं है। मोल के दूध में अनेक अनर्थ भरे हैं। बीकानेर के एक माहेश्वरी भाई ने मुझे कहा था कि मोल का दूध पीने वाले लोगों के लिए पाली हुई गायों को देखने से पता लगता है कि उनके नीचे बछड़े नहीं होते। वे बच्चे कहाँ चले जाते हैं। गायों के मालिक बछड़ों को जन्मते ही जंगल में छोड़ आते हैं। वे सोचते हैं यदि बछड़ा जिन्दा रहेगा तो दूध चूसेगा जिस दूध के लिए ऐसे अनर्थ और पाप होते हैं उसके पीने में तो पाप नहीं और जिसमें गायों की रक्षा, पालना, पोषण, सार सम्भाल होती है उसके पीने में पाप होता है, ऐसी श्रद्धा कैसे बैठ गई, जिसने ऐसा धर्म बनाया, समझ में नहीं आता।

शास्त्र में श्रावकों के घर पशु होने का जिक्र है। पशुओं के साथ जैन श्रावक का कैसा वर्ताव होना चाहिए, इसके लिए शास्त्र में कहा है—**श्रावक वध, बंध, छविच्छेद अतिभार और भत्तपानी विच्छेद** इन पांच बातों से बचकर पशुओं का पालन पोषण करे। श्रावक किसी जानवर को खसी नहीं करता, न कराता है। किसी जानवर को गाढ़ बँधन से नहीं बांधता। किसी पर अधिक बोझा नहीं लादता। न किसी को मारता पीटता और न चारा पानी देने में भूल या देरी ही करता है। भक्त पानी का अन्तराय भी नहीं

करता। श्रावकों के लिए शास्त्र में यह विधान है। किन्तु आज के लोग पशु पालन का त्याग कर के इस झंझट से बच रहे हैं और साथमें यह भी समझते हैं कि पाप से भी बच रहे हैं। वास्तव में इस पाप से नहीं बचा जा सकता। पाप से बचाव तब हो सकता है जब मोल का दूध दही मावा आदि खाना छोड़ दिया जाय।

भगवान् नेमीनाथ जैसे समर्थ व्यक्ति धर्म के लिए, पशु पक्षियों की हिंसा बचाने के लिए सिर लेकर विवाह करना तक छोड़ देते हैं तो क्या आप दूध दही के लिए मारे जाने वाले पशुओं की रक्षा के लिए मोल का दूध दही खाना नहीं छोड़ सकते। घी दूध खाना ही है तो पशु रक्षा करनी ही चाहिए। आज तो घर में गाय रखने तक की जगह नहीं होती। मोटर लारी आदि रखने के लिए जगह हो सकती है मगर गाय के लिए जगह नहीं हो सकती।

श्रावक निरारम्भी निष्परिग्रही नहीं हो सकता किन्तु महारम्भी महापरिग्रही भी नहीं हो सकता। वह अल्पारम्भी अल्पपरिग्रही होता है। श्रावक अपना जीवन इस प्रकार की चीजों से चलाता है जिनके निर्माण में कम से कम पाप हो। जिन चीजों में अधिक पाप होता है उनका उपयोग श्रावक नहीं करता। मोल के घी दूध में कम पाप है या रक्षा करके घर की पाली हुई गायों के घी दूध में। घर की रखी हुई गायों के दूध में अल्प पाप है।

भगवान् अरिष्टनेमि ने यह भी विचार किया कि जिस वंश में मैं जन्मा हूं उस में इस प्रकार के पाप हों यह कैसे सहा जाय। यदि पाप के भार को कम न किया जायगा तो [illegible] हो जायगा। मेरे विवाह के निमित्त इन दीन हीन प्राणियों के गले पर छुरी चलाई जाएगी। अहो! विवाह कितना दुःखदायी है। सारथी से कहा—इन सब जीवों को छोड़ दो। भगवान् की यह आज्ञा सुनकर सारथी कुछ सकुचाया। पुनः भगवान् ने कहा—हे सारथी! डरते क्या हो। मैं आज्ञा देता हूं कि इन जीवों को छोड़ दो।

सारथी ने उन जीवों को छोड़ दिया। छूटकर वे प्राणी जंगल में उड़ते हुए थे। जंगल की ओर जाते हुए उन जीवों को कितना आनंद आया होगा, इसका अनुमान आप कर सकते हैं। कोई आदमी बंधन में बंद हो। बंधन से छूटने पर उसे कितना आनन्द होता है। पिंजरों में बन्द किये हुए वे जीव तो मौत के मुख से बचे थे। उनके आनन्द का क्या कहना। किसी मरते हुए व्यक्ति को एक पुरुष ने जीवनदान करने का

और दूसरा जीवनदान। वह मरणासन्न व्यक्ति किस दान को पसन्द करेगा? जीवनदान को ही वह चाहेगा। हमारे शास्त्रों में इसीलिए कहा है—

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं

सब दानों में अभयदान सर्व श्रेष्ठ है। यह बात शास्त्र कुरान पुराण से ही सिद्ध नहीं है मगर अनुभव से भी सिद्ध है। आपसे भी यदि कोई राजा यह कहे कि मैं धन देता हूं और दूसरा कोई कहे कि मैं जीवनदान देता हूं तो आप जीवनदान ही पसन्द करेंगे। कारण कि जीवन न रहा तो धन किस काम का। जीवन के पीछे धन है। यह बात एक दृष्टांत से समझाता हूं।

एक राजा के चार रानियां थी। अपने अपने पद के अनुसार चारों ही राजा को प्रिय थी। राजा ने सोचा कि इन चारों में कौन अधिक बुद्धि मती है इसका निर्णय करना चाहिए और उसी पर ज्यादा प्रेम भी रखना चाहिए। यद्यपि मुझे चारों रानियां प्रिय हैं तथापि गुण की अवहेलना करना ठीक नहीं है। गुणानुसार कद्र होना ही चाहिए। गुणों की तरह रानियों का लिहाज होता है। यह स्वाभाविक बात है अतः सब से बुद्धि मती कौन है इसका निर्णय करना चाहिए।

परीक्षा करने के लिए राजा समय की प्रतीक्षा करता रहा। योगानुयोग से परीक्षा का समय निकट आगया। एक दिन एक सूली की सजा पाये हुए अपराधी को सूली पर चढ़ाने के लिए ले जाया जा रहा था। उस अपराधी को स्नान कराया गया था। उसके आगे बाजे बजाये जा रहे थे। उसके साथ अनेक लोग कोतवाल सिपाही आदि थे। मगर वह अकेला रोता हुआ जा रहा था। यह सब रानियों ने देखा, देखकर दासियों से पूछा कि इतने अच्छे ढंग से बाजे गाजे के साथ जाता हुआ यह आदमी रो क्यों रहा है? दासियों ने कहा कि यह सूली का अपराधी है। थोड़ी देर में इसकी जीवन लीला समाप्त होने वाली है अतः मौत के भय से यह रो रहा है।

[illegible] जहां सूली दी जाती थी [illegible] के एक [illegible] वृक्ष पर अपराधी को [illegible] दिया जाता था। वह वृक्ष जंगल में [illegible] था।

रानियों ने पूछा कि क्या कोई इसको बचा नहीं सकता? दासियों ने कहा कि राजा आज्ञा के विरुद्ध [illegible] करने की किसी की हिम्मत नहीं हो सकती है। सब ने सोचा इस बेचारे का कुछ न कुछ भला करना चाहिए।

पहिली रानी राजा के पास गई। जाकर कहा मैं आप से एक वरदान मांगती हू वह आज पूरा करना चाहती हू। राजा ने कहा मांगलो वरदान और मेरा बोझ हल्का कर दो। रानी ने एकदिन के लिए उस शूलीकी सजा पाये हुए व्यक्तिको मांग लिया। उसे खूब खिलाया पिलाया और एक हजार मोहरें भेंट में दी। रात को वह सो गया मगर शूली की याद से उसे नींद नहीं आ रही थी। इन मोहरों का क्या उपयोग है जब कि मैं खुद ही न रहूंगा। दूसरे दिन दूसरी रानी ने भी उसे एक दिन अपने यहां रखकर दस हजार मोहरें भेंट दी। तीसरी ने एकलाख मोहरें दीं, इसप्रकार उसकेपास तीसरेदिन एक लाख ग्यारह हजार दीनारें थी किन्तु उसका दिल शूली की सजा के स्मरण मात्र से बड़ा दुःखी था। चौथी रानी ने विचार किया कि मुझे भी इस बेचारे के दुःख में कुछ हिस्सा बटाना चाहिए।

मृत्यु घण्ट बज रहा हो उस समय यदि कोई मुझे कितना भी धन दौलत दे तो वह मेरे लिए किस काम का हो सकता है यह सोचकर रानी ने उसकी शूली माफ कराने का निर्णय किया। राजा की इजाजत लेकर रानी ने उस सजायाफ्ता व्यक्ति को अपने पास बुलाया। बुलाकर उसे पूछा कि जैसे अन्य रानियों ने तुझे एक एक दिन रखकर मोहरें भेंट दी हैं वैसे मैं भी एक दिन रखकर तुझे दस लाख मोहरें दे दू अथवा तेरी यह सजा माफ करवा दू। हाथ जोड़कर चोर कहने लगा भगवति ? मोहरें लेकर मैं क्या करूँ। यदि आप मेरी सजा माफ करा दें तो ये एक लाख ग्यारह हजार मोहरें भी आपको देने के लिए तय्यार हूँ। मुझे जीवन दान चाहिए। धन नहीं चाहिए। उसकी बातें सुनकर रानी ने निश्चय कर लिया कि यह आदमी मोहरों की अपेक्षा जीवन को बहुमूल्य समझता है।

आज आप लोग दमड़ी के लिए जीवन नष्ट कर रहे हो। एक भव का जीवन ही नहीं किन्तु अनेक भवों के जीवन को बिगाड़ रहे हो। आप अपने कामों की तरफ निगाह करिये। क्या ऐसे कामों के चिकने संस्कारों से अनेक भव नष्ट नहीं होते। अतः प्रथम अपनी आत्मा को अभय दान दीजिये। स्वहिंसा को रोकिये।

रानी ने चोर से कह दिया कि तेरी शूली माफ है। चोर बड़ा प्रसन्न हुआ चोर की प्रसन्नता की कल्पना कीजिये कि वह कितनी अपार होगी। चोर अपने घर चला गया किन्तु रानियों में आपस में झगड़ा हो गया कि किसने चोर का अधिक उपकार

राजेमती इनके साथ विहार करने की इच्छा रखती थी। अतः इनके लौट जाने से उनकी क्या दशा हुई होगी। उनने सोचा कि भगवान् मुझे परमार्थ का मार्ग दिखाने आये थे। वे मेरे मोहनगारे हैं। आप लोग केवल गीत गाकर मोहनगारे कहते हैं मगर राजेमती ने सच्चा मोहनगारा बनाया था। कोरे गीत गाने से कुछ नहीं होता। गीत दो तरह से गाये जाते हैं। विवाह आदि प्रसंग पर वर की माता भी गीत गाती है और पड़ौसी स्त्रियां भी इन दोनों गीत गाने वालियों में कोई अन्तर है या नहीं? पड़ौसी स्त्रियां गीत गाकर लेती हैं। माता गीत गाकर देती है। यदि मां भी गीत गाकर लेने लगे तो वह माता न रहेगी पड़ौसिन बन जायगी। उसका माता का अधिकार न रहेगा। आप भी परमात्मा के गीत गायें तो अधिकारी बनकर गाइये। लेने की भावना मत रखिये। अन्यथा अधिकार चला जायगा।

विचार करने से मालूम होता है कि भगवान् नेमिनाथ से राजेमती एक कदम आगे थी। नेमिनाथ तोरण से वापस लौट गये थे। अतः राजेमती चाहती तो उनके हजार अवगुण निकाल सकती थी। वह कह सकती थी कि वरराजा बन कर आये और वापस लौट गये। मुझ से पूछा तक नहीं। यदि विवाह न करना था तो बींद बन कर आये ही क्यों थे। दीक्षा ही लेनी थी तो यह ढोंग क्यों रचा। मैं उनकी अर्धाङ्गिनी बन चुकी थी तो दीक्षा के लिए मेरी सम्मति लेनी आवश्यक थी आदि।

आज के आलोचक विद्वान कह सकते हैं कि नेमिनाथ तीर्थंकर थे फिरभी उनके काम कैसे हैं कि तोरण पर आकर वापस लौट गये। एक स्त्री का जीवन बरबाद कर दिया। विद्वानों की आलोचना पर विचार करने के पहले राजेमती क्या कहती हैं। एक सखी ने कहा अच्छा हुआ जो नेमजी चले गये। वास्तव में उनकी और तुम्हारी जोड़ी भी ठीक न थी। वे काले हैं तुम गोरी हो। मुझे यह सम्बन्ध पहले से ही नापसन्द था। मगर मैं कुछ बोल नहीं सकती थी। वे जैसे ऊपर से काले हैं वैसे हृदय से भी काले हैं। बींद बन कर आना, छत्र चंवर धारण करना फिर भी वापस लौट जाना यह हृदय का कितना कालापन है। अच्छा हुआ कि विवाह करने के पूर्व ही चले गये। नाक कटी तो उन लोगों की जो बारात में सज धज कर आये थे अपना क्या नुकसान हुआ। राजेमती! तुम तो खुशी मनाओ। तुम को कोई दूसरा इससे भी अधिक योग्य वर मिल जायगा।

से लेना चाहिए । तभी आप भगवान् के श्रावक कहला सकते हैं । ऐसा हो तभी आनन्द है ।

राजेमती दीक्षा लेकर भगवान् से ५४ दिन पहले मुक्तिपुरी में पहुँची है। कवि कहते हैं कि राजेमती की मुक्ति सुन्दरी से प्रतिस्पर्धा थी । राजेमती कहती है अयि मुक्ति सुन्दरी ! तू मेरे पति को अपने पास पहले बुलाना चाहती थी मगर यहां भी मैं पहले आ पहुँची हूँ । अब देखती हूँ कि मेरे पति यहां से मुझे छोड़ कर कैसे जाते हैं ।

सच्चा विवाह करने वाले भगवान् अरिष्टनेमी और राजेमती अन्त तक हृदय में बने रहें तो कल्याण है ।

राजकोट
१२—७—३६ का
व्याख्यान

सर्प अन्धेरे रासड़ी रे, सूने घर बेताल ।
त्यों मूरख आतम विषे, मान्यो जग भ्रम जाल ॥

अंधेरे में पड़े हुए रस्से के टुकड़े को देखकर सांप का भान होजाता है। उस काल्पनिक सांप को देखकर लोग डर भी जाते हैं। यद्यपि वह सांप नहीं है, रस्सी है, फिर भी मनुष्य अपनी कल्पना से उसे सांप मान कर कल्पना से ही भयभीत भी होता है। किसी के भ्रमवश किसी वस्तु को अन्यथा रूप से मान लेने से वह वस्तु बदल नहीं जाती। वस्तु तो जैसी होगी वैसी ही रहेगी। किसी ने कल्पना से रस्सी को सांप मान लिया इससे रस्सी सांप नहीं बन जाती और न सांप ही रस्सी बन जाता है। केवल कल्पना से मनुष्य अन्यथा मानता है और कल्पना से ही भय भी पाता है। कल्पना भ्रम से पैदा होती है। जब बुद्धि में स्थिरता होती है तब वास्तविक पदार्थ उसको मालूम होने लगता है। यह भ्रम ज्ञानरूपी प्रकाश से मिट सकता है। ज्ञान, प्रकाश है, अज्ञान अन्धकार है।

कल्पना से भय किस प्रकार पैदा कर लिया जाता है और वापस किस प्रकार दूर किया जाता है इस बात का मुझे खुद को भी अनुभव है। एकदा दक्षिण देश में मैं किसी एक ग्राम में रात के समय बैठा हुआ था। अन्य लोग भी बैठे थे। मैं छाया में बैठा हुआ था। कुछ लोग [illegible] में भी बैठे थे। हम सब ज्ञान की बातें कर रहे थे। छत पर चांदनी से कुछ छाया पड़ रही थी। उस छत में एक दरार पड़ी हुई थी। उस छाया में वह टेढ़ी मालूम हुई मानों सांप हो। इसलिए लोगों ने विचार किया कि यदि यह [illegible] को [illegible] रहा तो सम्भव है किसी को हानि पहुँचावे। यह सोच कर सब लोग उस सांप को पकड़ने का प्रबन्ध करने लगे। कोई सांप पकड़ने का [illegible] [illegible] लाने को गया तो कोई [illegible] के लिए दीपक। जब दीपक लेकर उसके पास गये तो [illegible] [illegible] हंसने लगे और एक दूसरे को कहने लगे जिसने इसे सांप बताया, वह तो छत में पड़ी हुई दरार है।

इस प्रकार उस दरार (फटन रेखा) के विषय में जो भ्रम पैदा हुआ था वह [illegible] से दूर हो गया। यदि प्रकाश न लाया जाता तो वह भ्रम दूर नहीं होता। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]। इसी प्रकार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है और [illegible]

पदार्थ चैतन्य। लेकिन आत्मा भ्रम से गड़बड़ में पड़ा हुआ है और इसी कारण जन्म मरण के चक्कर में फंसा हुआ है।

मैंने श्रीशंकराचार्य कृत वेदान्त भाष्य देखा है। उसमें मुझे जैन तत्त्व का ही प्रतिपादन मालूम पड़ा। मैं यह देख कर इस निर्णय पर पहुँचा हूं कि बिना जैन दर्शन के गहरे अध्ययन की सहायता के वस्तु का ठीक प्रतिपादन हो ही नहीं सकता यदि कोई शांति से मेरे पास बैठ कर यह बात समझना चाहे कि किस प्रकार वेदान्त भाष्य में जैन दर्शन का समावेश है, तो मैं बड़ी खुशी से समझा सकता हूं।

वेदान्ती कहते हैं कि— **एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति** अर्थात् एक ब्रह्म ही है दूसरा कुछ भी नहीं है। किन्तु भाष्य में कहा है कि—

युष्मदस्मत्प्रत्यय गोचरयोः विषय विषयिणोः।
तमः प्रकाश विरुद्धस्वभावयोः॥ शांकर भाष्य।

अर्थात् युष्मद् और अस्मद् प्रत्यय के विषयीभूत विषय और विषयी में अन्धकार और प्रकाश के समान परस्पर विरोध है। पदार्थ और पदार्थ को जानने वाले में परस्पर विरुद्ध स्वभाव है। संसार के सब पदार्थ विषय हैं और इन को जानने वाला आत्मा विषयी है। इन दोनों में परस्पर विरोध है। भाष्यकार का कथन है कि न तो युष्मद् अस्मद् हो सकता है और न अस्मद् युष्मद्। दोनों को अन्धकार और प्रकाशवत् भिन्न माना है। दोनों एक नहीं हो सकते। जैन धर्म भी यही बात कहता है कि जड़ और चैतन्य का स्वभाव और धर्म जुदा जुदा है। न तो जड़ चैतन्य हो सकता है और न चैतन्य जड़। इस प्रकार भाष्य का कथन जैन शास्त्र और जैन दर्शन के प्रतिकूल नहीं है किन्तु अनुकूल है। इसके विपरीत वेदान्त-दर्शन के 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' के सिद्धान्त के प्रतिकूल पड़ता है। यदि ब्रह्म के सिवा अन्य कुछ नहीं है तो युष्मद् और अस्मद् अन्धकार और प्रकाश, पदार्थ और पदार्थ को जानने वाला, सब एक ही [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति [illegible]

[illegible]

[illegible]

मतलब यह है कि आत्मा ने अपने भ्रम से ही जगत् पैदा कर रखा है। जिस तरह रस्सी में साप की कल्पना हुई उसी प्रकार मैं दुबला हू, मैं लगड़ा लूला हू, आदि अनेक कल्पनाए की जाती हैं। विचार करने पर मालूम होगा कि आत्मा न दुबला है और न लगडा लूला। दुबला और लगड लूला शरीर है मगर भ्रमवश शरीर के धर्म आत्मा में मानकर मनुष्य भयभीत या दु खी होता है। आत्मा और शरीर के गुण स्वभाव भिन्न भिन्न हैं। अज्ञानवश जीव दोनों को एक मानता है और अनेक प्रकार का जाल रचता है। इस भ्रम को मिटाने के लिए तथा काल्पनिक जगत् बनाने से बचने के लिए प्रार्थना में कहा गया है **'जीवरे तू पार्श्व जिनेश्वर वंद'**। भगवद् भक्ति से सब प्रकार के भ्रम मिट जाते हैं भ्रम मिटने पर दु ख कभी नहीं हो सकता।

इसी बात को जैन सिद्धान्त के अनुसार देखें कि आया यह ससार भ्रम-कल्पना से ही बना हुआ है अथवा वास्तविक है। शास्त्र कहते हैं व्यवहार दृष्टि से जगत् वास्तविक है और निश्चय दृष्टि से काल्पनिक। इस विषय का विशेष खुलासा उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन में किया गया है।

महानिर्ग्रंथ अध्ययन में नाथ अनाथ की व्याख्या की गई है और बताया गया है कि जीव भ्रमवश अपने को अनाथ मानता है और अभिमान से नाथ समझता है। वास्तव में वह न नाथ है और न अनाथ है। नाथ अनाथ का सच्चा स्वरूप बताकर राजा श्रेणिक का भ्रम मिटाया गया है। इसी बात को समझ कर किसी बात का त्याग न करने पर भी केवल सच्ची समझ पैदा हो जाने के कारण राजा श्रेणिक ने तीर्थंकर गौत्र बाध लिया था। महानिर्ग्रन्थ और श्रेणिक का सवाद ध्यान पूर्वक सुनने से उसका रहस्य ध्यान में आएगा। मैं अनाथी मुनि के चरण रज के समान भी नहीं हू और आप भी श्रेणिक राजा के समान नहीं हैं। फिर भी उन मुनि की बातचीत कहने के लिए मुझे जैसे अपने आत्मा को तय्यार करना होगा वैसे आपको भी कुछ तय्यारी करनी होगी। जैसे उस चोर ने मुर्दे का पार्ट पूरा अदा किया था वैसे आपको भी श्रेणिक का पार्ट अदा करना चाहिए। ऐसा करने पर ही इस कथा का रहस्य समझ में आयगा।

राजा श्रेणिक के परिचय के लिए इस कथा में कहा गया है—

पभूयरयणो राया सेणिश्रो मगहाहिवो।
विहारजत्तं निज्ञाश्रो मंडिकुच्छिंसिचेइये ॥ २ ॥

पहले पात्र का परिचय कराना आवश्यक होता है। श्रेणिक इस कथा में प्रधान पात्र है। वह अनेक रत्नों का स्वामी था। श्रेणिक साधारण राजा नहीं था किन्तु मगध देश का अधिपति था।

शास्त्र में श्रेणिक को बिम्बिसार भी कहा गया है। श्रेणिक की बुद्धिमत्ता के लिये कथा प्रसिद्ध है। श्रेणिक के पिता प्रसन्नचन्द्र के सौ पुत्र थे। पिता यह जानना चाहता था कि उसके पुत्रों में सबसे अधिक बुद्धिमान कौन है। परिक्षा करने के लिये प्रसन्नचन्द्र ने एक दिन कृत्रिम आग लगा दी और अपने पुत्रों से कहा कि आग लगी है अतः महलों मे से जो सार भूत चीजें हों उन्हे बाहर निकाल डालो। पिता की आज्ञा पाते ही सब लड़के अपनी २ रुचि के अनुसार जिसे जो वस्तु अच्छी लगी वह निकालने लगा श्रेणिक ने घर में से दुन्दभी निकाली। दुन्दभी को निकालते देख कर उसके सब भाई हंसने लगे और कहने लगे कि यह कैसा आदमी है जो ऐसे अवसर पर ऐसी वस्तु बाहर निकाल रहा है। नगारा के सिवा इसे कोई अच्छी वस्तु घर में नहीं दिखाई दी जो इसे निकालना पसन्द किया है। यह अब नगारा बजाया करेगा। मालूम होता है, यह ढोली है। खजाने से रत्नादि न निकाल कर यह दुन्दुभी निकाली है।

ऊपर की नज़र से श्रेणिक का यह काम बड़ा हल्का मालूम पड़ता था मगर उसके मर्म को कौन जाने। राजा प्रसन्न चन्द्र इसका मर्म समझते थे। समझते और जानते हुए भी उस समय प्रसन्न चन्द्र ने श्रेणिक की प्रशंसा करना उचित नहीं समझा। कारण निन्यानवे भाई एक तरफ थे और अकेला श्रेणिक एक तरफ। क्लेश हो जाने की सम्भावना थी। प्रसन्न चन्द्र ने पुत्रों से पूछा कि क्या बात है। सबने कहा कि हमने अमुक अमुक चीज निकाली है पर पिताजी हम सब बड़े हैरान हैं कि आप के बुद्धीमान पुत्र श्रेणिक ने नगारा निकाला है। इससे बढ़कर कोई बहुमूल्य वस्तु आपके खजाने में इसे नहीं मिली। बाद की क्या कमी है। दस पांच रत्नों से बाद मिल सकता है। यह निरा मूर्ख मालूम पड़ता है। प्रसन्न चन्द्र ने श्रेणिक की ओर नज़र कर के कहा कि ये लोग तुम्हारे लिए क्या कह रहे हैं सुनते हो। श्रेणिक ने उत्तर दिया कि पिता जी! रत्नों की [illegible] की क्या कमी है। यह नगारा राज्य चिह्न है। यदि यह [illegible] से राज्य चिह्न [illegible] जाता है और यदि यह बच [illegible] तो सब कुछ बच गया समझना चाहिए। इसलिए [illegible] [illegible] लिए बजाते है

आज कल भी नगारे की बहुत रक्षा की जाती है। नगारे पर होशियार रक्षक रखे जाते हैं। यदि किसी राजा का नगाड़ा चला जाय तो उसकी हार मानी जाती है। उसका राजचिह्न चला जाता है।

श्रेणिक ने कहा कि राज्य चिह्न समझ कर इस की रक्षा करना मैंने सब से जरूरी समझा है। श्रेणिक के भाई कहने लगे यह मूर्खता है। युद्ध के समय यदि नगारा बजाया जाय तो हमारी समझ में आ सकता है कि मौके पर राज्य चिन्ह बचा लिया किन्तु शान्ति काल में आग में जलती वस्तुओं की रक्षा के वक्त नगाड़ा निकालना कोई बुद्धिमत्तापूर्ण काम नहीं है।

प्रसन्न चन्द्र श्रेणिक पर बहुत प्रसन्न हुए किन्तु प्रसन्नता बाहर न दिखाई। श्रेणिक को आंख के इशारे से समझा दिया कि इस समय तू यहां से चला जा। श्रेणिक चला गया। बाहर रह कर उसने बहुत रत्न प्राप्त किये। प्रसन्नचन्द्र ने अन्त में उसकी बुद्धिमत्ता से खुश होकर उसी को राज्यभार सौंपा। श्रेणिक भेरी (दुन्दुभी-एक बाद्य विशेष) निकाल कर लाया था। भेरी शब्द का मागधी में भम्भा या बिम्ब होजाता है। श्रेणिक ने बिम्ब को ही सार माना था अतः उसका नाम बिम्बिसार भी है। घर से निकाल दिये जाने पर वह बहुत रत्न लाया था अतः बहुत रत्नों का स्वामी कहा गया।

अब श्रेणिक शब्द का अर्थ देखलें। कहते हैं वह घर से निकाल दिया जाने पर भी राजकुमार ही रहा। ऊँचे ओहदे पर ही रहा, नीचे नहीं गिरा। विपत्ति में पड़ जाने पर भी वह सम्पन्न ही रहा—श्रेष्ठ ही रहा अतः श्रेणिक कहलाया।

श्रेणिक संसार की सब सम्पदाओं से युक्त था मगर उसके पास ज्ञानसम्पदा नहीं थी। आप लोगों को अन्य सब सम्पदाएं प्रदान करने वाले और ज्ञानसंपदा प्रदान करने वाले में बड़ा कौन मालूम होता है। एक आदमी आपको बल देता है, धन देता है, सब कुछ देता है और दूसरा आपको आत्मा की पहिचान कराता है। इन दोनों में आपको कौन बड़ा लगता है। जो आत्मा की पहिचान कराते हैं और यह श्रद्धा पैदा कर देता है कि आत्मा और शरीर, तलवार और म्यान अलग अलग है, वे महात्मा जगत् में बहुत छोड़े हैं। संम्पदा देने वालों से ये महात्मा कम उपकारक नहीं है। बहुत अधिक उपकारक हैं।

कामदेव गृहस्थ नहीं थे। वे नहीं डरते थे तो आप क्यों डरते हो। यह कहो कि तुम्हें अभी आत्मा और शरीर के तलवार-म्यान के समान पृथक् २ होने में पूरा विश्वास नहीं है। कुछ संदेह है।

यह पिशाच मेरे शरीर के टुकड़े करना चाहता है किन्तु अनन्त इन्द्र भी मेरे टुकड़े नहीं कर सकते। मैं जानता हूं और मानता हूं कि टुकड़े शरीर के हो सकते हैं आत्मा के नहीं। शरीर के टुकड़े होने से आत्मा का कुछ नहीं बिगड़ता। शरीर तो पहले से ही टुकड़ों से जुड़ा हुआ है।

मैं सब सन्त और सतियों से यह बात कहना चाहता हूं कि यदि हमारे श्रावकों में भूत पिशाच आदि का भय रहा तो यह हमारी कमजोरी होगी। विद्यार्थी के परीक्षा में फैल होने पर जैसे अध्यापक को शर्मिन्दा होना पड़ता है वैसे ही श्रावक श्राविकाओं में भय होने पर साधुओं को शर्मिन्दा होना चाहिए। भगवान् महावीर का धर्म प्राप्त करने के बाद भय खाने की बात ही नहीं रहती।

कामदेव ने हँसते हुए कहा—ले शरीर के टुकड़े कर डाल। कामदेव मन में विचार करता है कि इस पिशाच ने धर्म नहीं पाया है अतः यह ऐसा काम करना चाहता है। मैंने धर्म प्राप्त किया है अतः इस अग्नि परीक्षा में उतरकर अपने धर्म को शुद्ध स्वच्छ बनालूं। जैसे इसने मुझ पर निष्कारण वैर भाव लाना अपना धर्म मान रखा है। वैसे मैंने भी निष्कारण वैरियों पर क्रोध न करना अपना धर्म मान रखा है। अधर्म वैर करना सिखाता है और धर्म प्रेम करना। यदि मैं शान्त-स्वभाव छोड़ कर अशान्त बन जाऊं तो इस में और मुझ में क्या अन्तर रहेगा।

दैवी और आसुरी दो प्रकार की प्रकृतियाँ होती हैं। यहां इन दोनों की परस्पर लड़ाई हो रही है। गीता में इन दोनों प्रकृतियों का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ ! संपदमासुरीम् ॥

दम, दर्प, अभिमान, क्रोध, निर्दयता और अज्ञान ये छ आसुरी प्रकृति के लक्षण हैं। जिस में ये बातें पाई जाती हों वह असुर है। दैवी प्रकृति के लक्षण निम्न प्रकार हैं।

कामदेव श्रावक भी शरीर के टुकड़े होते समय हँसता ही रहा। आखिर देव हार गया और अपना पिशाच रूप छोड़कर दैवी रूप प्रगट किया। कामदेव ने अपने धर्म के जरिये पिशाच को देव बना लिया। भगवान् महावीर देवाधिदेव हैं। अनन्त इन्द्र मिलकर भी उनका एक रोम नहीं डिगा सकते। आप ऐसे भगवान् के शिष्य हैं अतः कुछ तो दृढ़ता रखिये। जो बात सागर में होती है थोड़े बहुत रूप में वह गागर में भी होनी चाहिए। भगवान् का किंचित् गुण भी हम में आये तो हम निर्भय बन सकते हैं।

देवता कामदेव से कहने लगा कि इन्द्र ने आप के विषय में जो कुछ कहा था वह ठीक निकला। मैंने आपके शरीर के टुकड़े क्या किये मेरे पाप के ही टुकड़े कर डाले। जिस प्रकार लोहे की छुरी पारस के टुकड़े करते हुए स्वयं सोने की बन जाती है उसी प्रकार आप की धर्म दृढ़ता देखकर मेरे पाप विनष्ट हो गये हैं। मैं अब ऐसे काम कभी न करूंगा।

कहने का सारांश यह है कि श्रेणिक राजा अनेक रत्नों का स्वामी था मगर एक धर्म रूप रत्न की उसमें कमी थी। वह जल तारिणी, उपद्रवादि नाशिनी विद्याएं जानता था किन्तु धर्म रूप रत्न उसके पास न था। और इसीसे वह अनाथ था।

आज अनाथ उसे कहा जाता है जिसका कोई रक्षक न हो। जिसे कोई खाने पीने की वस्तुएं देने वाला न हो। और जिसका रक्षक हो तथा खाने-पीने की वस्तुएं देने वाला हो वह सनाथ गिना जाता है। किन्तु महा निर्ग्रन्थअध्ययन नाथ अनाथ की व्याख्या कुछ और प्रकार से करता है, यह बात अवसर होने पर बताई जायगी।
सुदर्शन चरित्र—

> तिनपुर सेठ श्रावक दृढ़ धर्मी, यथा नाम जिनदास।
> अर्हदासी नारी खासी रूप शील गुणवान रे ॥ धन० ॥ ५ ॥
> दास सुभग बालक अति सुन्दर गौएं चरावन हार।
> सेठ प्रेम से रखे नेमसे करे साल संभाल रे ॥ धन० ॥ ६ ॥

कथा में सुदर्शन का जो पूर्व भव का चरित्र बताया गया है उससे अपने चरित्र को सुधारने की शिक्षा लेनी चाहिए। सुदर्शन के परिचय के साथ उसके मां बाप का भी

परिचय दिया गया सो तो अच्छी बात है मगर उसके पूर्व भव का परिचय देना आज कल के तरुण युवकों को अच्छा नहीं लगता। आज के बहुत से युवकों को पूर्व भव की बातों पर विश्वास नहीं बैठता। उन्हें विश्वास हो या न हो किन्तु यह बात निश्चित है कि पूर्व भव है, पुनर्जन्म है। शास्त्रीय पुराणों के साथ २ पुनर्भव की पुष्टि के लिए कई प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिले हैं। कई बच्चों को जातिस्मरण ज्ञान हुआ है और उन्होंने अपने पूर्व जन्म के हालात बताये हैं।

चम्पा नगरी में जिनदास नाम का एक सेठ रहता था। उसकी पत्नि का नाम अर्हदासी था। दोनों की जोडी कैसी थी इसका वर्णन है मगर अभी कहने का समय नहीं है। जहां एक अंग में धर्म हो और दूसरे में न हो वहां जीवन अधूरा रहता है। आपके दोनों हाथ हैं और इनकी सहायता से आप सब काम कर सकते हैं फिर भी आपने विवाह किया है तो हाथ के चार हाथ बनाये हैं। विवाह करके आप चतुर्भुज—भगवान बन गये हैं चतुर्भुज भगवान को भी कहते हैं। अर्थात् विवाह करके आदमी अपूर्ण से पूर्ण बन जाता है। गृहस्थ जीवन विवाह करने से पूर्ण बनता है। यदि कोई विवाह करके चतुर्भुज के बजाय चतुष्पद बन जाय तो कैसा रहे। बहुत से लोग विवाह करके जो काम अकेले से अशक्य था वह पत्नि की सहायता से करके भगवान् में लीन हो जाओ यह चतुर्भुज बनना है और यदि ऐसा न करके संसार के विषय विकार या भोगविलास में ही फंसे रहे तो चतुष्पद बन जायगे।

जिनदास और अर्हदासी धर्म के काम इस प्रकार करते थे मानों ईश्वर के अवतार हों। एक दिन अर्हदासी के मन में विचार हुआ कि आज हम दोनों इस घर में धर्म करने वाले हैं मगर भविष्य में हमारे पश्चात् कौन धर्म करेगा। हमारे धर्म का उत्तराधिकारी कोई होना चाहिए। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में धर्म की लगनी और श्रद्धा अधिक होती है। अर्हदासी इस चिन्ता में डूब गई। चिन्तावस्था में सब कुछ बुरा लगने लगता है। बाहर से सेठ आये और सेठानी से पूछा कि आज उदास क्यों बैठी हो। सेठानी ने चिन्ता का कारण व्यक्त नहीं किया। अपने मन की मन में छिपाये रही। सेठ उसकी चिन्ता मिटाने और प्रसन्न करने के लिए उसे बाग बगीचे में ले गये, मेले तमाशे दिखाये किन्तु कोई परिणाम न निकला। सेठानी की चिन्ता न मिटी।

बुद्धिमान लोगों का कहना है कि स्त्री को मुर्झाई हुई न रखना चाहिए। स्त्री को मुर्झाई हुई रखना, अपने घर में ही दुर्दिन लाना है। सेठ ने सेठानी को हर्षित रखने के

अनेक प्रयत्न किए मगर सब व्यर्थ गये। अंत में सेठ ने सोचा कि दर्द कुछ और है और इलाज कुछ और हो रहा है। सेठानी से चिन्ता का कारण पूछा। सेठानी से अब रहा न गया। विचार करने लगी कि मेरे पति मेरे सुख-दुःख के साथी हैं अतः इनके सामने अपनी चिन्ता प्रकट करना चाहिए। सेठानी ने कहा मुझे कपड़े लत्ते और गहने आभूषण की चिन्ता नहीं है। जो स्त्रियां ऐसी चिन्ता करती हैं वे जीवन का अर्थ नहीं समझतीं। मुझे तो यह चिन्ता है कि आपके जैसे योग्य पति के होते हुए भी हमारे घर में हमारा उत्तराधिकारी घर का रख वाला नहीं है। मैं अपना कर्त्तव्य पूरा न कर सकी। कुल दीपक के बिना सर्वत्र अंधेरा है।

सेठानी का कथन सुनकर सेठ विचार करने लगे कि मैं जिन भक्त हूँ। संतान प्राप्ति के लिए नहीं करने योग्य काम मैं नहीं कर सकता। योग्य उपाय करना बुद्धिमानों का काम है। सेठानी से कहा—प्रिये! हम लोग जिनेश्वर देव के भक्त हैं। पुत्र होना न होना हमारे हाथ की बात नहीं है। यह बात भाग्य के अधीन है। ऐसी चिन्ता करना अपने नाम को लजाना है। अतः चिन्ता छोड़ कर अपनी सम्पत्ति दान आदि कामों में लगाओ जिससे संतान विषयक अन्तराय टूटनी होगी तो टूट जायेगी। हमारा धन किसी अयोग्य हाथ में न चला जाय अतः अपने हाथों से ही, पात्र कुपात्र का ख्याल रखकर दान दें। सेठ ने सेठानी की चिन्ता मिटादी और दोनों पहले की अपेक्षा अधिक धर्म करणी करने लगे। इनके घर में रहने वाला सुभगदास ही भावी सुदर्शन है। दास क्या करके सुदर्शन बनता है इसका विचार आगे है।

राजकोट
१२—७—३६ का
व्याख्यान

श्रेणिक को धर्म प्राप्ति

"श्री महावीर नमूं वरनाणी...........।"

यह भगवान् महावीर स्वामी चोवीसवें तीर्थङ्कर की प्रार्थना है। एक एक तार को सुलझाते सुलझाते सारा गुच्छा सुलझ जाता है और एक एक के उलझाने सारी वस्तु उलझ जाती है। यह आत्मा इस संसार में उलझ रहा है। इस को सुलझाने तथा साफ सरल बनाने का मार्ग परमात्मा की प्रार्थना करना है। भक्ति मार्ग आत्मा की उलझन मिटा देता है।

अब हम यह देखें कि आत्मा की उलझन कौन सी है। आत्मा द्रव्य को भूलकर पर्याय को ग्रहण करता है यही इस की उलझन है। आत्मा घट तो देखता है मगर जिस सोने का वह घट बना है उसको नहीं देखता। सोने को ग्रहण नहीं करता सोने के बने हुए विविध प्रकार के रूप ([illegible]) को ग्रहण करता है। संसार व्यवहार में भी यदि कोई सोने को न देखकर केवल रूप को ही देखे और बनावट के आधार से ही मूल्य निश्चय

करले तो उसका दिवाला निकल जायगा। चतुरव्यक्ति घाटकी तरफ गौणरूप से देखेगा। उसकी नजर सोने की तरफ होगी कि यह सोना कितना शुद्ध है। आप लोग भी दागीने खरीदो वक्त केवल डिजाइन (घाट) की तरफ नहीं देखेंगे किन्तु सोनेके टञ्च देखेंगे। द्रव्य की तरफ नजर रखेंगे। वस्तु का मूल्य द्रव्य के आधार पर होता है। बनावट मुल्य आधार नहीं होती। जबकि बनावट भी रखनी पड़ती है। बनावट का खयाल न रखने से घर की श्रीमती जी के नापसन्द करने पर वापस बाजार का चक्कर लगाना पड़ता है।

ज्यों कञ्चन तिहुं काल कहिजे, भूषण नाम अनेक।
त्यों जग जीव चराचर योनि, है चेतन गुण एक॥

ज्ञानी कहते हैं केवल पर्याय की तरफ ही मत खयाल रखो मगर द्रव्य को भी देखो। कहा है।

जिस प्रकार सुवर्ण हर समय सुवर्ण ही कहा जाता है चाहे उसके बने आभूषणों के कितने ही नाम क्यों न रख लिए गये हों। उसी प्रकार चाहे जिस योनि का जीव हो किन्तु आत्मा सब में समान है। जीव की पर्याय कोई भी हो, चाहे देव हो, मनुष्य हो तिर्यञ्च हो, नारक हो, सब में आत्मा समान है। आपने देव और नारक जीवों को आंखों से नहीं देखा है। शास्त्र में सुने हैं। किन्तु मनुष्य और तिर्यञ्च जीवों को प्रत्यक्ष देख रहे हो। ये सब पर्याय हैं। आत्मा की यही भूल है कि वह इन पर्यायों को देखता है मगर इन में जो चेतन द्रव्य रहा हुआ है उसकी तरफ लक्ष्य नहीं देता। घाट पर मोहने वाली स्त्री जैसे पीतल के दागिने खरीद कर अपनी भूल पर पछताती है उसी प्रकार पर्याय का खयाल करने वाला द्रव्य की कद्र नहीं करके पछताता है।

आत्मा इस प्रकार की भूल न करे अतः ज्ञानियों ने अहिंसा व्रत बतलाया है। सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि व्रत इसी के लिए हैं। अहिंसा व्रत में यही बात है कि अपनी आत्मा के समान सब जीवों को मानो। 'अप्पसमं मनिज्ज छप्पि कायं' छहों काया के जीवों को अपनी आत्मा के समान मानो। पर्याय के कारण भेद मत करो। जब तक अपनी आत्मा के समान सब जीवों को नहीं माना जाता तब तक अहिंसा व्रत का पालन नहीं हो सकता। जिसे पूर्ण अहिंसा का पालन करना होगा उसे पर्याय की तरफ

कतई खयाल न रखकर केवल शुद्ध चेतन रूप द्रव्य का खयाल रखना होगा। भगवद् गीता में भी कहा है कि—

'ब्राह्मणे गवि हस्तिनि, शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः' पंडित अर्थात् ज्ञानी, ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता और चण्डाल सब पर समान नजर रखते हैं। सब में शुद्ध चेतन द्रव्य को देखते हैं। उनकी विविध प्रकार की शुद्ध अशुद्ध खोलियों का खयाल नहीं करते। सब जीवों की समान रूप से सेवा करते हैं। पर्याय की तरफ देखने की आदत को मिटाने से आत्मा परमात्मा बन जायगा। जो भगवान् महावीर को मानता है उसे मनुष्य, स्त्री बालक, वृद्ध, रोगी, नीरोगी, पशु-पक्षी, सांप, बिच्छु, कीड़ी मकोड़ी आदि योनियों का खयाल किये बिना सब की समान रूप से रक्षा करनी चाहिए। जो ऐसा नहीं मानता वह भगवान् महावीर को भी नहीं मानता। महावीर को मानना और उनकी वाणि को न मानना, यह नहीं हो सकता। भगवान् स्वयं कहते हैं कि चाहे कोई व्यक्ति मेरा नाम न ले किन्तु वह यदि मेरी वाणी को मानता है, मेरे कथनानुसार अपनी आत्मा के समान सब जीवों को मानता है तो वह मुझे प्रिय है। वह मेरा ही है। जो छः काय के जीवों को आत्मतुल्य नहीं मानता। वह मेरा नाम लेने का भी अधिकारी नहीं है।

आप से अधिक न बन सके तो कम से कम छहों काय के जीवों को खुद की आत्मा के समान मानिये। पर्याय दृष्टि गौण करके द्रव्य द्राष्टि को मुख्य बनाइये। सब का आत्मा समान है और आत्मा तथा शरीर अलग २ है। गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

जिस प्रकार मनुष्य पुराने कपड़े उतार कर नये पहन लेता है उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को छोड़ कर नया शरीर धारण करता है। शरीर रूप पर्याय बदलता रहता है मगर आत्मा सब अवस्थाओं में कायम रहता है। कपड़े बदल लेने मात्र से मनुष्य नहीं बदल जाता। इसी प्रकार शरीर के बदल जाने से आत्मा नहीं बदल जाती। नाटक में पुरुष स्त्री का सांग बनाता है और स्त्री पुरुष का किन्तु सांग बदल लेने से न तो पुरुष स्त्री बन जाता है और न स्त्री पुरुष ही। साधारण मति वाले लोग सांग बदल जाने से भ्रम में पड़ जाते हैं। किन्तु समझदार सूत्र धार ऐसे भ्रम में नहीं फंसता। सूत्र धार स्त्री वेष धारी पुरुष को उसके मूल नाम से ही पुकारता है। पोशाक के कारण उसकी असलियत को नहीं भुलाता। इसी प्रकार ज्ञानी जन पर्याय की तरफ न देखकर उसके भीतर रहे हुए द्रव्य

को देखते हैं। पुट्ठा बदल लेने से पुस्तक नहीं बदलती। 'एगे आया' के सिद्धान्तानुसार सब आत्माएं समान हैं। अन्तर केवल पर्यायों और शरीरों का है। हमारी भूल का मूल कारण यही है कि शरीरों के अनित्य होने से हम आत्मा को भी अनित्य मानने लग जाते हैं। आत्मा नित्य है। शरीर अनित्य है। आत्मा को नित्य मानने पर पर्यायें अपने आप जुदा मालूम होंगी और अनित्य भी मालूम होंगी।

उत्तराध्ययन के बीसवें अध्ययन में यही बात बताई गई है। कल कहा था कि राजा श्रेणिक मगध देश का अधिपति था और प्रभूत रत्नों का स्वामी था। आगे कहा है कि:—

> पभूयरयणोराया सेणिओ मगहाहिवा।
> विहार जत्तं निज्जाओ मंडिकुच्छिंसि चेइये ॥ २ ॥
> नाणा दुम लयाइएणं नाणा पक्खि निसेवियं।
> नाणा कुसुम संच्छिन्नं उज्जाणं नंदणोवनं ॥ ३ ॥

महाराजा श्रेणिक को सब रत्न मिले हैं मगर एक समकित रूप रत्न नहीं मिला है। तत्व ज्ञान नहीं हुआ है। वे इसकी खोज में हैं।

आपलोग समकितरत्न को बड़ा मानते हो या मिट्टी के बने रत्न को। एक पैसा खो जाने पर आपको जितनी चिन्ता होती है उतनी क्या समकितरत्न के खो जाने पर होती है। 'आपलोग हम गृहस्थ हैं' कहकर गिरने के स्थान पर चले भी चले जाते हैं। यह बात प्रत्यक्ष जानते हुए कि अमुक स्थान पर गिराऊंगा, आप लोग अर्थ लाभ या कीर्ति लाभ की कामना से चले जाते हैं। क्या कामदेव श्रावक गृहस्थ नहीं था? वह भी गृहस्थ ही था किन्तु उसके मन में समकित की कीमत इन रत्नों की अपेक्षा अधिक थी। आपके एक खीसे में रत्न हो और एक में कौड़ी। आप किस खीसे को अधिक संभल करेंगे? यदि कोई कौड़ी वाले खीसे की अधिक संभाल करे तो आप उसे महा मूर्ख समझोगे। आप लोगों में यदि यह समझ आजाय कि समकित के रहते धन धान्यादि रहें तो भले रहें किन्तु समकित के जाते इनका रहना बेकार है, तो कितना अच्छा हो। धन धान्यादि और समकित दोनों में से यदि किसी एक के जाने का समय आवे तो धन धान्यादि को जाने देना चाहिये मगर समकित को न जाने देना चाहिये। शास्त्र में कहा है— "सद्धा परम दुल्लहा" श्रद्धा परम दुर्लभ। दुःख इस बात का है कि ऐसे

मन पर कमजोरी आ जाती है और मनुष्य बाह्य संपत्ति की रक्षा का विशेष ध्यान रखता है। कामदेव श्रावक में यही विशेषता थी कि वह शरीर तक के जाने पर भी अपने धर्म से न डिगा। अडोल रहा।

श्रेणिक राजा को समकित रत्न मिल गया था अतः शास्त्र में उसकी भावी गति का वर्णन है। यदि समकित प्राप्त न होता तो न मालूम क्या गति लिखी जाती। और लिखी जाती या न लिखी जाती इसका भी पता नहीं। क्योंकि शास्त्रकार धर्म मार्ग पर आये हुए या आने वालों का ही शास्त्र में जिक्र किया करते हैं। प्रसंग से दूसरों का वर्णन आये यह दूसरी बात है। श्रेणिक को केवल समकित रत्न ही मिला था। श्रावकपन प्राप्त नहीं हुआ फिर भी वह भविष्य में पद्मनाथ नामक तीर्थंकर होगा। आपलोग धर्म क्रियाएं करते हैं किन्तु यदि दृढ़ श्रद्धा विश्वास के साथ करो तो मोक्ष के लिए उपयोगी होंगी। बिना समकित या श्रद्धा के की हुई क्रियाएं ऐसी हैं जैसी कि बिना अंक वाली बिंदियां। बिना अंक वाली बिंदी किस काम की। क्रोध, मान, और लोभ को हलका बनाकर अन्तरात्मा में शान्ति लाओ और धर्म क्रियाएं करो तो आनन्द ही आनन्द है।

श्रेणिक राजा यद्यपि धर्म क्रियाएं न कर सका मगर वह तत्व का जिज्ञासु था उसकी रानी चेलना राजा चेडा की पुत्री थी, चेड़ा राजा के सात पुत्रियां थीं। सातों ही [illegible] हुई है। चेलना के रग रग में धर्म भावना भरी हुई थी। चेलना इस बात की फिक्र में रहती थी कि मेरे पति को कब और किस प्रकार समकित रत्न प्राप्त हो। [illegible] समकित धारी धर्मात्मा राजा की रानी कहाऊं। इधर श्रेणिक राजा [illegible]

चेलना के धर्म की परीक्षा करते करते एक बार श्रेणिक जिद पर चढ़ गया। एक महात्मा को देखकर चेलना से कहने लगा। देखो तुम्हारे गुरु कैसे हैं जो नीची नज़र रखकर चलते हैं। कोई मार पीट दे तो भी कुछ नहीं बोलते। मेरे राज्य में यह कानून है कि कोई किसी को मार पीट दे तो उसे सजा दी जाती है किन्तु ये तुम्हारे धर्म गुरु तो फरियाद ही नहीं करते। गुरु के कायर होने से उसके अनुयायी में भी कायरता आती है। हमारे गुरु तो वीर होने चाहिए। ढाल तलवार बांधकर घोड़े पर सवार होने वाले बहादुर व्यक्ति हमारे गुरु होने चाहिए।

चेलना ने उत्तर दिया कि मेरे गुरु कायर नहीं है किन्तु महान् वीर हैं। मैं कायर की चेली नहीं हू। वीर की चेली हूं। मेरे गुरु की वीरता के सामने आप जैसे भी वीर भी नहीं टिक सकते। आपके बड़े २ सेनाधिपतियों को भी काम देव जीत लेता है किन्तु हमारे गुरु ने इस काम देव को भी अपने काबू में कर रखा है। जो लाखों को जीतने वाला है उसको जीतने में कितनी वीरता की आवश्यकता होती है, इसका जरा विचार कीजिये। इनके सामने अप्सरा भी आजाय तो ये विचलित नहीं होते। यह बात तो एक बच्चा भी समझ सकता है कि जो लाखों को जीतने वाले को भी जीत लेता है वह कितना बहादुर होगा।

श्रेणिक राजा ने सोचा कि यह ऐसे मानने वाली नहीं है। इसके गुरु के पास एक वैश्या को भेजू और वह उन्हें भ्रष्ट कर दे तब यह मानेगी। चेलना यह बात समझ गई कि इस वक्त धर्म की कठिन परीक्षा होने वाली है। वह परमात्मा से प्रार्थना करने लगी कि हे प्रभो! मेरी लाज तेरे हाथ में है। प्रार्थना कर के वह ध्यान में बैठ गई।

राजा ने वैश्या को बुलाकर हुक्म दिया कि उस साधु के स्थान पर जाकर उसे आचरण भ्रष्ट कर आ। तुझे मुँह मांगा इनाम दिया जायगा। वैश्या बन ठन कर साथ में कामोद्दीपक सामग्री लेकर साधु के स्थान पर गई। साधु ने स्त्री को अपने धर्म स्थान पर देख कर कहा कि खबरदार! यहां रात के समय स्त्रियां नहीं आ सकतीं। ठहर भी नहीं सकतीं। यह गृहस्थ का घर नहीं है। धर्म स्थान है।

वैश्या ने उत्तर दिया, महाराज आपकी बात वह मान सकती है जो आपकी भक्त हो। मैं तो किसी और ही मतलब से आई हूँ। मैं आपको आनन्द देने आई हूँ। यह

बह कर वेश्या साधु के स्थान में घुस गई । साधु समझ गये कि यह मुझे भ्रष्ट करने आई है । यद्यपि मैं अपने शील धर्म पर दृढ़ हूँ तथापि लोकोपवाद का खयाल रखना जरूरी है । बाहर जाकर कहीं यह यों न कह दे कि मैं साधु को भ्रष्ट कर आई हूँ । कथा में यह भी कहा है कि चेलना रानी ने इस बात की परीक्षा कर ली थी कि वह साधु लब्धिधारी है । उसने सब से कह रखा था कि कोई सच्चा साधु यहां न आवे । ये साधु यहां आये थे अतः उसे विश्वास था कि वह लब्धि धारी हैं ।

महात्मा ने अपने प्रभाव से विकराल रूप धारण कर लिया । यह देख कर वेश्या घबड़ाई । कहने लगी, महाराज क्षमा करो । मैं अपनी इच्छा से नहीं आई हूँ । मुझे तो श्रेणिक राजा ने भेजा है । मैं अभी यहां से भाग जाती मगर बाहर ताला लगा है अतः विवश हूँ आप तो चींटी पर भी दया करने वाले हो । मुझ पर दया करो ।

उन महात्मा ने अपना वेष दूसरा ही बना लिया था । शास्त्र में कारण वश वेष बदलने का लिखा है । साधु लिंग को बदलना अपवाद मार्ग में है । चारित्र की रक्षा तो उस समय भी की जाती है ।

इधर यह कांड हुआ, उधर श्रेणिक ने चेलना से कहा कि जिन गुरु की प्रशंसा के तुम पुल बांध रही थी जरा मेरे साथ चलकर उनके हाल तो देखो । वे एक वेश्या को लिये बैठे हैं । रानी ने कहा बिना आंखों से देखे मैं इस बात को नहीं मान सकती । अगर सचमुच मेरे गुरु वेश्या को लिये बैठे मिलेंगे तो मैं उन्हें गुरु नहीं मानूंगी । मैं सत्य की उपासिका हूं । राजा चेलना को लेकर साधु के स्थान पर आया और किवाड़ खोले । किवाड़ खुलते ही वह वेश्या इस प्रकार भगी जैसे पिंजड़े का द्वार खुलने पर पक्षी भागता है । भागते हुए वह वेश्या कह गई कि महाराज ! आप मुझ से दूसरे काम ले सकते हैं मगर ऐसे तप तेज धारी महात्मा के पास कभी मत भेजियेगा । मैं इन की दया के प्रभाव से ही अपने प्राण बचा पाई हूं ।

रानी ने यह बात सुनकर राजा श्रेणिक से कहा कि महाराज यह तो आप की करतूत मालूम पड़ती है । मैं तो पहले ही कह चुकी हूँ कि मेरे धर्म गुरु ऐसा कभी नहीं कर सकते । चलिये उनके दर्शन करें । अन्दर मुंहपत्ति बांधे जैन वेषधारी साधु न थे किन्तु दूसरा वेष पहने हुए साधु थे । रानी ने कहा मैं द्रव्य भाव दोनों दृष्टि से जो साधु होता है उसे

सच्चासाधु मानती हूं। ये रजोहरण मुखवस्त्रिका धारी नहीं है। अतः मेरे धर्म गुरु नहीं हैं। राजा बड़ा लज्जित हुआ। मन में विचारकिया कि रानी ठीककहती है। अब मुझे … तत्व जानने चाहिए। यहीं से राजा को जैन धर्मके तत्त्वों को जाननेकी रुचि जागृत हुई।

यद्यपि राजा श्रेणिक राज महलों में रहता था फिर भी जंगल की खुशनुमा हवा लेने के लिए जाया करता था। वह यह बात समझता था कि ताजा हवा के बिना ताजा जीवन नहीं बनता। शास्त्र में विहार यात्रा शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसी यात्रा होती है वैसा ही उसका फल भी होता है। धर्म यात्रा, धन यात्रा, शरीर यात्रा आदि जुदी जुदी यात्राओं का फल जुदा २ है। धर्म की यात्रा में धर्म की और धन की यात्रा में धन की रक्षा की जाती है। इसी प्रकार शरीर यात्रा का अर्थ शरीर की रक्षा करना है।

आज शरीर यात्रा के नाम से ऐसे काम किये जाते हैं कि जिनसे शरीर अधिक बिगड़ता है। आप लोग बाहर घूमने जाते हो मगर आपकी यह यात्रा कितनी निकम्मी और व्यर्थ होती है इसका जरा विचार करो। आज शहरों में बिना पाखाने के कोई मकान नजर नहीं आता जब कि पुराने जमाने में अच्छे अच्छे घरों में भी पाखाने न होते थे। शक्तिकी कमीके कारण मैं यहां गोचरी के लिए नहीं निकला हूं मगर दिल्ली में मैं गोचरी के लिए घूमा करता था। जहां कहीं भी गया पहले प्रवेश करते ही पाखाने के दर्शन होते थे। बम्बई, कलकत्ता की इस विषय में क्या दशा होगी कहा नहीं जा सकता। एक मारवाड़ी भाई को यह गाते सुना है कि—

कलकत्ता नहीं जाना यारों, कलकत्ता नहीं जाना।
जहर खाय मर जाना यारों, कलकत्ता नहीं जाना॥
कलका आटा, नलका पानी, चर्बी का घी खाना॥ यारों कल०॥

यह भाई कलकत्ते जाने का इतना विरोधी क्यों बन गया इसका कारण सोचिये। आज वेजिटेबल घी चला है। गाय रखने में कई लोग पाप मानते हैं मगर वेजिटेबल घी खाने में पाप नहीं मानते। जीवन यात्रा को लोग भूल गये हैं। जीवन नष्ट करने की सामग्री बढ़ रही है।

एक दिन जंगल में मुनि देखे, तन मन उपज्यो प्यार।
खड़ा सामने ध्यान मुनि में, बिसर गया संसार रे। धन ॥७॥

कल बताया गया था कि सेठानी को पुत्र की चाहना थी। किन्तु पुत्र प्राप्ति के लिए उन्होंने अपना धर्म कर्म नहीं छोड़ा था। धर्म पर कलंक लगे ऐसे काम नहीं किये। अरणक श्रावक को धन की जरूरत थी अतः जहाज लेकर विदेश गया था। समुद्र में देव ने आकर उसे कहा कि अपना धर्म छोड़ दे अन्यथा जहाज डूबो दूंगा। अरणक ने जहाज डूब जाना मंजूर किया मगर धर्म न छोड़ा। पहले के श्रावक धर्म पर दृढ़ रहते थे।

जिनदास सेठ के यहां गायें भी थीं। वह उन की रक्षा और पालन, पोषण अपने शरीर के रक्षण पोषण की तरह करता था। गायों के लिए प्राचीन भारतीयों की कैसी दृष्टि थी यह बात सब जानते हैं। कृष्ण महापुरुष थे, यह बात सबको मंजूर है। वे स्वयं हाथ में डण्डा लेकर गायें चराया करते थे। गायों का महत्व समझने के लिए यह बात बड़े महत्व की है।

श्री उपासक दशांग सूत्र में वर्णित दसों श्रावकों के यहां हजारों की तादाद में गायें थीं। उनका जीवन गौओं की सहायता के बिना नहीं चल सकता था। [illegible] गौदान दिया जाता था। गौ के बिना जीवन पवित्र नहीं रह सकता। अमेरिका जैसे देश भी गौ की उपयोगिता समझ गये हैं। गौ शब्द का अर्थ पृथ्वी भी होता है। पृथ्वी जैसे सब का आधार है वैसे गाय भी मनुष्य जीवन का आधार है यह बात ध्यान में रख कर [illegible] का नाम भी गौ रखा गया है। पुष्टि कारक घी और दूध यही गाय से ही मिलता है। आज हम कितने पतित हो गये हैं कि ऐसे महान उपकारक पशु की रक्षा करने में भी असमर्थ बन गये हैं।

जिनदास ने अपनी गायों की देखभाल करने के लिए सुभग नामक एक लड़के को रखा। सुभग को जिनदास अपना पुत्र समझता था। सुभग प्रतिदिन गायों को जंगल में चराने ले जाता और संध्या को वापस ले आया करता था।

आज गायों के लिए गोचर भूमि की चिन्ता कौन करें। वकील लोग अन्य कामों के लिए तय्यार हो जाते है मगर इस काम के लिये कौन तय्यार हो। वकील लोग गाये रखते ही नहीं अतः उन्हे क्यों चिन्ता होने लगे। जो लोग गाये रखते है। उन्हे फारियाद नहीं करना आता और जिन्हे अपने हक्को की रक्षा के लिये फारियाद करना आता है वे गाये ही नहीं रखते। आज गोचर भूमि की बहुत तंगी हो रही है और इससे गोधन कमजोर हो रहा है। कुछ समय पहिले तक जंगल प्रजा की चीज माना जाता था। प्रजा को उसमें पशु चराने और लकड़ी आदि लाने का अधिकार था। अबतो जंगलात कानून लागु हो गया है अतः गायों को खड़ी रहने के लिये भी जगह नहीं है।

सेठ जिनदास सुभग के खाने-पीने ओढ़ने बिछाने आदि का खयाल रखते थे। उसे शीतताप और वर्षा से बचाने का भी वे प्रबन्ध करते थे। मुसलमानी मज़हब में कहा गया है कि जिस गृहस्थ के घर में मनुष्य या पशु-पक्षी दुःखी हों वह गृहस्थ पापी है। अपने आश्रित प्राणियों के सुख दुःख का खयाल रखना परम कर्त्तव्य है। आजकल पोशाक, फर्निचर, मोटर और घोड़ागाड़ी आदि की जितनी सम्भाल रखी जाती है उतनी अपने आश्रित मनुष्यों और पशुओं की नहीं रखी जाती। आश्रितजनों को क्या क्या कष्ट हैं, उनके कुटुम्ब का भरण पोषण ठीक तरह से होता है या नहीं आदि बातों का ध्यान यदि मालिक लोग रखा करें तो आपसी सम्बन्ध मीठा हो जाय।

प्रेम के जरिये किसी से काम लेना अच्छा तरीका है। मारपीट कर जबरदस्ती काम लेना बेहुदा तरीका है। मारपीट कर किसी को नहीं सुधारा जा सकता। खुद के लड़के को भी मारपीट कर नहीं सुधारा जा सकता, यह बात अब लोग समझने लग गये हैं। पढ़ाने लिखाने के लिए लड़कों को मारना पीटना अब अच्छा नहीं माना जाता। स्कूलों और पाठशालाओं में इसकी मुमानियत होती जा रही है।

पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज कहा करते थे कि मनुष्य को न तो पानी की तरह अति नम्र होना चाहिये और न पत्थर के समान कठोर ही। किन्तु बिकानेरी मिश्री के कुजे के समान होना चाहिये। मिश्री को यदि कोई सिर में मारे तो उसे चोट लगेगी और खून आ जायगा। लेकिन यदि कोई मिश्री को मुंह में रखेगा तो वह पानी-पानी होकर मिठास देगी। मनुष्य को भी व्यवहार में ऐसा ही बनना चाहिए।

जिनदास, सुभग के साथ इसी प्रकार का वर्ताव करता था। वह उसे सु
का प्रयत्न करता था। सुभग भी उसे अपने पिता के समान मानता था और कभी
जिनदास को धर्म क्रियाएँ करते हुए देखा करता था। वह अभी धर्म के समीप नहीं आ
है। एक दिन वह जंगल में गायें चरा रहा था कि वहाँ एक महात्मा को वृक्ष के नीचे
ध्यान लगा कर बैठे हुए देखा। महात्मा और सुभग का संगम किस प्रकार हुआ यह बात
अवसर आने पर बताई जायगी। अभी तो यह ध्यान में रखा जाय कि महात्मों
के दर्शन से कैसा चमत्कारिक असर होता है। मनुष्य का कुछ का कुछ बन जाता है।

राजकोट
१४—७—३१ का
व्याख्यान

वृक्षों की उपयोगिता
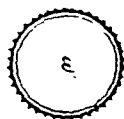
"श्री आदिश्वर स्वामी हो, प्रणमूं सिरनामी तुम भणी.........."

यह प्रार्थना प्रथम तीर्थ कर भगवान् ऋषभदेव की है। प्रार्थना करने का अभ्यास कम ज्यादा मात्रा में संसार के सब प्राणियों को है। प्रभु प्रार्थना, ईश प्रार्थना, पारमार्थिक प्रार्थना, सब प्रार्थनाओं में उत्कृष्ट प्रार्थना है। यदि प्रभु प्रार्थना सबसे उत्कृष्ट वस्तु है तो उसमें सबसे उत्कृष्ट तत्व का विचार होना चाहिये। हर एक मनुष्य किसी न किसी वस्तु का ग्राहक जरूर होता है किन्तु जो रत्न का ग्राहक होता है वह उत्कृष्ट माना जाता है। परमात्मा की प्रार्थना करने वाले के भाव भी उच्च होने चाहिए। हम लोग इस बाबत विचार करें कि कैसे भाव रख कर ईश प्रार्थना करें। क्या इच्छा लेकर प्रार्थना करें। इच्छायें भी बदलती रहती हैं। अतः निरीह और निर्विकार होकर प्रार्थना करनी चाहिए। पहले अशुभ इच्छाओं का त्याग करके शुभ इच्छायें पैदा करना चाहिए। बादमें धीरे धीरे शुभ इच्छाओं को भी

मिटाकर निरीह-इच्छा रहित शुद्ध इच्छा वाले बनने की कोशीश करना चाहिए। अशुभ से शुभ में और शुभ से शुद्ध में प्रवेश करना चाहिए। शुद्ध इच्छा से प्रार्थना करने वाला व्यक्ति परमात्मा के निकट पहुँचता है।

भगवान् आदिनाथ की प्रार्थना अनेक कला से की गई है। पानी का किसी भी प्रकार सुधार किया जाय। वह अनादि कालीन ही रहेगा। इसी प्रकार प्रार्थना, किसी भी कला से की जाय वह नई नहीं कही जा सकती। यह बात अलग है कि प्रार्थना करने वालों कि रुचि भिन्न हो और इससे प्रार्थना की भाषा में भी भिन्नता हो। पहले मागधी में प्रार्थना की जाती थी। मागधी से फिर संस्कृत में प्रार्थना होने लगी और अब हिन्दी भाषा में प्रार्थना हो रही है। रुचि के अनुसार भावों और भाषा में परिवर्तन अवश्य हुआ है मगर प्रार्थना पुरातन ही है प्रार्थना में कहा गया है।

मो पर मेहर करिजे हो, मेटीजे चिन्ता मन तणी।
मारा काटो पुराकृत पाप ॥

हे प्रभो! मैं अनेक लोगों की शरण में गया मगर मेरे मन की चिन्ता नहीं मिटी। तथा मेरी आशा भी पूरी नहीं हुई। मेरे मन की चिन्ता कायम है अतः मैं तेरी शरण आया हू। तू मेरी आशा पूर और चिन्ता चूर। भगवान् से आशा पूरी करने की प्रार्थना की जा रही है किन्तु क्या आशा पूरी कराना है यह भी समझलें। आप लोग साधुओं के पास जाते हैं। कौन-सी आशा पूरी कराने के लिए जाते हैं? क्या धन दौलत, स्त्री, पुत्र कीर्ति आदि की आशा लेकर जाते हैं। ऐसी आशा तो साधुओं के यहां पूरी नहीं होती अतः ऐसी आशा से उनके पास जाना वृथा है।

परमात्मा संसार के वातावरण से परे है अतः उससे सांसारिक कामना पूरी कराने की प्रार्थना करना व्यर्थ है। परमात्मा से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हे प्रभो! हमें आशा रहित बनादे। हमारी कामना मात्र खतम हो जाय। हमें संकल्प विकल्प करते अनन्त काल हो गया है अतः अब संकल्प विकल्प मिटादे। भगवन्! तू मेरी यह आशा पूरी कर कि मुझ में आशा ही न रहे।

कोई मनुष्य जब पानी में डूब रहा हो तब वह राज्य लेना पसन्द करेगा अथवा नौका। जो मनुष्य समुद्र को पार करना चाहेगा वह तो परमात्मा की चरण शरण रूप नौका

ऐसा ही पसंद करेगा। उसे राज्य से क्या मतलब । आप भी भगवच्चरण शरण की प्रार्थना करिये।

मनुष्य सच्ची प्रार्थना कब कर सकता है यह बात शास्त्र द्वारा बताता हूं। सिद्धान्त में कहा है कि किस तत्त्व को जान लेने के बाद सच्ची प्रार्थना होती है। सम्यक्त्व रूप तत्त्व का बोध होने पर सच्ची प्रार्थना होती है। श्रेणिक राजा को किसी बात की कमी न थी। वह जिसकी तरफ निगाह डाल लेता था सामने वाला अपने को धन्य मानता था। ऐसे श्रेणिक राजा से भी महामुनि अनाथी ने अनाथ होना स्वीकार करा लिया। आप नाथ होने का अभिमान मत करो।

राजा श्रेणिक विहार यात्रा के लिए नगर से बाहर निकला। प्रकृति के नियमों का पालन और भ्रमण करना आवश्यक है। ऐसा करने से आगे उन्नति होती है। श्रेणिक ७२ कलाओं में निपुण था। तदुपरान्त शरीर शास्त्र, नीति शास्त्र, अर्थ शास्त्र और भौतिक शास्त्र विशारद अनेक लोग उसके दरबार में रहते थे । फिर भी वह विहार यात्रा के लिए मंडी कुक्ष वन में गया। वह वन अनेक वृक्षों से परिपूर्ण था। जिसमें अनेक वृक्ष हों, शास्त्रकार उसे वन कहते हैं। वृक्ष और लता में यह अन्तर है कि वृक्ष अपने आधार पर खड़ा रहता है जब कि लता दूसरे के आधार से ऊपर की ओर फैलती है। दोनों फूल-फल देते हैं। वृक्ष और लता से जो युक्त हो वह वन कहा जाता है। वृक्षों के साथ लता होना आवश्यक है।

कोई भाई यह प्रश्न कर सकता है कि मोक्ष मार्ग बताने वाले इस प्रकरण में शास्त्रकार ने वन का क्यों वर्णन किया। शास्त्रकार जीवनोपयोगी वस्तुओं को नहीं भूले थे। हम कर्तव्य च्युत हो रहे हैं। बौद्ध साहित्य में यह बात पाई जाती है कि बुद्ध ने एक बार जब कि वे गया के जंगल में गये थे कहा था हम योगियों के मन्त्र से ही जंगल हरा भरा रहा है। यदि जंगल न होता तो हम योगियों की आत्म साधना में बड़ी कठिनाई होती। योग लेने पर भी योगी जंगल का महत्त्व नहीं भूलते। बड़े २ जंगलों में ही बड़े २ सिंह पैदा होते हैं। वृक्षों से सिंह नहीं जन्मते मगर वृक्षों में उनका भरण पोषण होता है। मैदानों में सिंह नहीं उत्पन्न होते। मतलब यह है कि जीवन के लिए आवश्यक बातें न जानकर केवल मोक्ष की बातें ही बताना आकाश के फूल बताने के समान है। वृक्ष और लताएं हमारे जीवन के लिए अन्य वस्तुओं के समान उपयोगी हैं। वैज्ञानिकों का तो यहां तक कथन है कि अन्य वस्तु और मित्रों से भी वृक्षों की आवश्यकता अधिक है। वृक्षों की

सहायता से हमारा जीवन टिक रहा है। मनुष्य के शरीर में से कारबन हवा निकलती है जिस में बहुत जहर होता है। यदि यह ज़हरीली हवा बनी रहे, वृक्ष उसे न खींचें तो मनुष्य मर जायें। इस कारबन हवा को वृक्ष खींच लेते हैं। उनके लिए यह अनुकूल है। प्रकृति की कुछ विचित्र रचना है कि जो चीज मनुष्य के लिए जहर है वही चीज वृक्ष के लिए अमृत होती है। वृक्ष उस कारबन हवा को पचा कर आक्सीजन हवा छोड़ते हैं। मनुष्य जीवन आक्सीजन हवा के आधार पर टिका हुआ है।

वृक्ष की इतनी उपयोगिता होते हुए भी कुछ भाई कहते हैं कि वृक्षों की क्या महत्ता है, बड़ा आश्चर्य होता है। पहले के लोग वृक्ष की आत्मीयजन के समान रक्षा करते थे। किसी बड़े वृक्ष को काटना महान् पाप समझा जाता था। यदि वृक्ष कट जाता तो उन्हें बड़ा दुःख होता था। जो जहर लेकर बदले में अमृत प्रदान करता हो उसको नष्ट करना महान् कृतघ्नता है।

महाभारत में वृक्ष को अजात शत्रु कहा है। यानी वृक्ष का कोई शत्रु नहीं है वृक्ष किसी को अपना शत्रु नहीं मानता। जो उसे पत्थर मारता है उसे भी वह फल देता और जो कुल्हाड़ा मारता है उसे भी अपना सर्वस्व तक दे देता है। बदले में कोई वस्तु नहीं मांगता। अहा! वृक्ष के समान उपकारी कौन होगा, फिर भी उसकी रक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं किया जाता।

दिल्ली के लोग कहते थे कि पहले पुरानी दिल्ली में बहुत वृक्ष थे, किन्तु लार्ड हार्डिङ्ग पर बम फेंका गया तब से सब वृक्ष काट डाले गये हैं। यह विचारणीय है कि बम किसने फेंका और दन्ड किसको मिला। वृक्षों ने क्या अपराध किया था? मित्रवत् उपकारी वृक्षों को कटवा कर भी लोग अपने को सुधरे हुए समझते हैं। जंगल नष्ट करवा दिए गये हैं जिससे वर्षा में भी कमी हो गई है। जब बड़े बड़े जंगल होते थे तब केसरीसिंह के समान साधु महात्मा लोग वहीं ठहरा करते थे। दुःख है कि महात्माओं को भी आज शहर के गंदे वातावरण के बीच रहना पड़ता है। वृक्षों के प्रति यही उपेक्षा भाव बना रहा तो भविष्य में बड़ी कठिनाई उपस्थित होने को बना है। श्रेणिक राजा बाग को महान् सम्पत्ति मानता था।

बढ़े हैं। डाक्टरों की वृद्धि होना अच्छा चिह्न नहीं है। वास्तविक चीजें नष्ट की जा रही हैं और भ्रष्ट वस्तुएं उन का स्थान ले रही है।

इत्र और सेंट के लिए बड़े २ पाप होते हैं। उनके उपयोग से मन और बुद्धि में विकृतियाँ पैदा होती हैं। किन्तु जंगल या बगीचे की प्राकृतिक खुशबू में दोष नहीं होते यदि मैं अपने कान में इत्र का फुम्बा (रुई में लगा इत्र) रखलूं तो आप लोग क्या कहेंगे। साधु मानने से भी इन्कार कर दोगे। किन्तु प्राकृतिक सुगन्ध हवा के द्वारा हमारे नाक में प्रवेश करे उसमें किसे क्या एतराज हो सकता है? इत्र लगाना यानी कुदरत से लड़ाई करना है। फूलों से अपने आप जो सुगन्ध निकलती है वह प्राकृतिक है। अनाथी मुनि बाग में बैठे हैं। उनके लिए कोई यह नहीं कह सकता कि वे मौजमजा लेने के लिए बैठे हैं। वह बाग इतना सुन्दर था कि नन्दन वन के लिए भी उस की उपमा दी जाती थी। आध्यात्मिक साधना में प्रकृति बड़ी साधक है।

उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंहजी कहा करते थे कि बुद्धि का घर आराम है। जब आराम हो तभी बुद्धि पैदा होती है। आराम का स्थान शहर ही नहीं है। शहर के बाहर एकान्त स्थान में जाकर देखने से पता लगेगा कि वहां कितना आराम और कैसी बुद्धि खिलती है। आप लोग केवल नगरवासी मत बन जाओ। आप लोग केवल नगर में रहते हो अतः हम साधुओं को भी नगर में आना पड़ता है। ग्रामों की अपेक्षा नगर में विकार ज्यादा पैदा हो गये हैं। उनके सुधार के लिये हमें भी शहरों की खाक छाननी पड़ती है। मेरा मतलब यह नहीं है कि आज ही आप लोग शहर छोड़दें। किन्तु वास्तविक जीवन स्रोत कहां है यह बात ध्यान में रखिये। मुझे दया, पौषध और सामायिक आदि धर्म कार्य बहुत प्रिय हैं फिर भी मैं उनके विषय में अधिक भार न देकर शरीर और आत्मा के कल्याण के लिये भार इसलिये देता हूं कि बिना शरीर स्वस्थता के धर्म कार्य ठीक तरह से नहीं हो सकते। धर्म को पवित्र रखने के लिये ही मैं शरीर धर्म पर भार देता हूं।

सुदर्शन चरित्र।

जीवन का सुधार कैसे होता है यह बात सुदर्शन के चरित्र से बताता हूं:—

एक दिन जंगल में मुनि देखी तन मन उपज्यो प्यार।
खड़ा सामने ध्यान मुनि में बिसर गया संसार रे। धन० ॥ ७ ॥

प्राकृतिक दृश्य देख कर आनन्द मानता था। बादलों के उतार चढ़ाव से जीवन के उतार चढ़ाव की कल्पना करता था। वह प्रकृति से प्यार करता था अतः प्रकृति भी उसकी सहायता करती थी। प्रकृति मनुष्य की क्या सहायता करती है यह बात बहुत कम लोग जानते हैं। मनुष्य को अच्छी समझदार स्त्री अथवा पुत्रादि मिलते हैं यह प्रकृति की ही कृपा है। पूर्व पुण्य के प्रभाव से ही ऐसा होता है।

प्रकृति सुभग के लिए क्या करती थी यह नहीं कहा जा सकता मगर जो कुछ आगे हुआ है उसे देख कर यह कहा जा सकता है कि उसने पुण्यानुबन्धी पुन्य बांधा था जिससे जंगल में एक महात्मा से उसकी भेंट हो गई। आप लोग वेश्या को पैसों के बल पर घर बुला सकते हो मगर कोयल को नहीं बुला सकते। उसकी मधुर तान सुनने के लिए वन में ही जाना पड़ेगा। अन्य लोगों को कहीं भी बुलाया जा सकता है मगर महात्माओं को हर कहीं नहीं बुला सकते। वे स्वेच्छा से ही जहाँ चाहें जाते हैं।

एक तपोधनी महात्मा उस वन में वृक्ष के नीचे आगये और ईश्वर ध्यान में लीन हो गये। वे महात्मा कैसे थे। कहा है—

ज्ञान के उजागर सहज सुख सागर सुगुन रतनागर विराग रस भर्यो है।
शरण की रीति हरे मरण को न भय करे करन सौं पीठि दे चरन अनुसर्यो है॥
धर्म को मंडन मर्म को विहडन है परम नरम हो के कर्म से लर्यो है।
ऐसे मुनिराज भुवलोक में विराजमान निरखी बनारसी नमस्कार कर्यो है॥

महात्माओं को ज्ञान उजागर नहीं करता मगर वे ज्ञान को उजागर करते हैं। वे शास्त्र को सुशास्त्र बनाते हैं, जगत् को तीर्थ बनाते हैं। वे सहज सुखी हैं। किसी का सुख हरण करके वे सुखी नहीं होते। न कोई उनका सुख हरण ही कर सकता है। इन्द्र में भी यह ताकत नहीं है कि वह महात्माओं का सुख छीन सके। आप पूछेंगे कि सहज सुख कैसा है। आप सहज सुख को जानते हो मगर अभी उसे भूले हुए हो। मान लो एक आदमी के पास खाने पीने और ऐश आराम की सब सामग्री मौजूद है किन्तु किसी ने कह दिया कि एक सप्ताह बाद तुम्हारी मृत्यु होने वाली है। खान पान और भोग विलास के मिलने वाला उसका सुख उसी क्षण काफूर हो जायगा। यदि इन वस्तुओं में सुख होता तो इनके होते हुए भी सुख कैसे हवा हो गया। अतः मानना पड़ेगा कि वस्तु

जितना समय नहीं है। थोड़ा कहता हूं—

प्रार्थना करने वाला भक्त कहता है कि मुझे तू (अजितनाथ) ही पसन्द है। दूसरा कोई देव मुझे पसन्द नहीं है। इस पर से यह प्रश्न उठता है कि क्या अन्य देवों में शक्ति या सामर्थ्य नहीं है जिससे वे पसन्द नहीं पड़ते। अन्य देवों से सांसारिक कार्यों में जैसी सहायता मिलती है वैसी श्रीअजितनाथ तीर्थङ्कर से नहीं मिलती। वे वीतराग है अतः संसार व्यवहार की बातों में हमारे मदद गार नहीं हो सकते। इस प्रश्न का विशेष विचार एक प्रकार का चमत्कार मालूम होगा किन्तु अभी समय नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर किसी पतिव्रता स्त्री से पूछा जाय। उसे अपना पति ही क्यों पसन्द है।

रावण के यहां किसी सांसारिक सुख की कमी न थी। उसकी लंका सोने की थी। दूसरी ओर राम वन में रहते थे। वल्कल वस्त्र धारण करते थे, वन्य फल फूल पर अपना गुजारा चलाते थे और ज़मीन पर सोते थे। सीता ने राम को क्यों पसन्द किया ! रावण को पसन्द क्यों नहीं किया ? आधुनिकलोगोंका साजोसामान की वस्तुओंके प्रति आकर्षण अधिक है अतः ऐसा प्रश्न उठता है कि ऐश्वर्य को छोड़कर सादगी को क्यों पसंद किया गया था। सांसारिक पदार्थों के प्रति राग भाव न हो तो ऐसा प्रश्न ही खड़ा न हो। सीता का रावण के साथ कोई द्वेष भाव न था। रावण, राम से स्नेह तुड़वाकर अपने प्रति जुड़वाना चाहता था। इसी कारण वह उससे नाराज थी।

भक्त कहते हैं, जो दूसरे देव परमात्मा से हमारा नेह तुड़वाते है वे हमें पसन्द नहीं है। सीता भी यही कहती थी कि जो राम से मेरा नाता तुड़ाना चाहता है वह मुझे प्रिय नहीं है। जो राम के साथ स्नेह जुड़ाता है वह मुझे अति प्रिय है जैसे जटायु पक्षी और त्रिजटा राक्षसी।

भक्त लोग माया के ठाठ बाट की तरफ नहीं देखते अत: सांसारिक पदार्थों का आकर्षण होते हुए भी अन्य देवों से प्रेम नहीं करते। शंका कांक्षा आदि पांच दोष इसी लिए बताये गये हैं कि कहीं भक्त संसार की माया में फसकर दूसरे देवों को न मानने लग जाय। पहले के श्रावकों के जीवन चरित्र की तरफ ध्यान देंगे तो आप अनन्य भक्ति का

सकते । मगर प्रयत्न करो, कुछ तो उनका अनुकरण करो । बालक अक्षर जमाने के लिए अपने सामने अच्छे अक्षर रखते हैं । यद्यपि वे तादृश अक्षर नहीं लिख सकते तथापि वैसेही सुन्दर लिखने की कोशिश करते हैं । और कोशिश करते करते कभी तादृश-अक्षर और उनसे अच्छे भी लिखने लग जाते है । यही बात चित्रकार के विषय में भी है । आप प्राचीन श्रावकों का आदर्श सामने रखकर आगे बढ़िये ।

आनन्द श्रावक था । उसके पास सम्पत्ति थी । वह हमारा आदर्श कैसे हो सकता है । उसने सर्वथा निवृत्ति मार्ग अंगीकार नहीं किया था । साधारण श्रावक के लिए उत्कृष्ट श्रावक आदर्श हो सकता है । इस में किसी प्रकार की बाधा नहीं आती । अंतिम मंजिल तो मुक्ति ही है यह बात ठीक है मगर बीच की सीढ़ियां जब तक कि उन पर न चढ़ा जाय तब तक के लिए आदर्श हो सकती है । कुटुम्ब का मोह छोड़े बिना यदि आनन्द निवृत्ति मार्ग को ग्रहण कर लेता तो वह कहीं का न रहता । वह क्रमिक विकास का मार्ग पकड़े हुए था । भगवान् ने भी उसे साधु बनने का उपदेश नहीं दिया किन्तु बारह व्रत धारण करने का उपदेश दिया था ।

आजकल तो बारह व्रतों के अर्थ में भी संकुचितता आगई है । आनन्द के यहां चालीस हजार गायें थी फिर भी वह श्रावक था । भगवान् का अनन्य भक्त था । प्रवृत्ति मार्ग में रह कर भी भक्त भगवान् की अनन्य भक्ति कर सकता है । जिसे कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का वास्तविक भान होता है । वह सच्ची भक्ति कर सकता है । आनन्द श्रावक के पास चालीस हजार गायें थीं । गायें अधिक न बढ़ने का यह कारण मालूम पड़ता है कि जिसको उसे सहायता करनी होती थी उसे वह गायें ही देता था । पैसे देकर मनुष्यों को आलसी न बनाता था । जब तक स्वयं कुटुम्ब न छोड़ दिया जाय तब तक दूसरे कुटुम्बों का रक्षण करना और उन्हें सुखी बनाने का प्रयत्न करना श्रावक का नैतिक कर्त्तव्य है । कुटुम्ब की ममता त्यागे बिना अन्य प्राणियों की दया छोड़ देना अनुचित है । निवृत्ति क्रमशः होती है । अनधिकार चेष्टा से किसी को लाभ नहीं हो सकता ।

निवृत्ति कैसी हो यह बात महानिर्ग्रन्थ के चरित्र से बताता हूं । कल बताया गया था कि मंडीकुक्ष बाग फूलों से छाया हुआ था और मेरु पर्वत पर स्थित नन्दनवन के समान था । देवों का वर्णन करते हुए नन्दन वन सबसे बड़ा मान लिया । आप किन्तु एक दृष्टि से देखें तो नन्दन वन मंडीकुक्ष बाग से छोटा था । एक दृष्टान्त से यह बात समझाता हूं ।

एक राजमहल है जिसमें संगमरमर की फरसी लगी हुई है। दीवालों पर चित्र चित्रित हैं। सब सजावट से सुसज्जित है। दूसरी ओर एक खेत है जिसमें काली मिट्टी है। राजमहल और खेत दोनों में से आप किसे पसन्द करेंगे। दोनों में से कौनसी वस्तु आपके लिए अधिक उपयोगी है। यदि आपको कुछ दिन के लिए राजमहल में रख दिया जाय तो अच्छा लगेगा किन्तु साथ में यह शर्त लगादी जाय कि जब तक राजमहल में रहोगे खेत से निपजने वाली कोई वस्तु वहां न दी जायगी। शायद आप ऐसी अवस्था में एक दिन भी रहना पसन्द न करोगे। इसके विपरीत यदि आपसे कहा जाय कि आपको खेत से उत्पन्न सब वस्तुएं दी जायंगी मगर रहना झोंपड़े में पड़ेगा। आप झोंपड़े में रहना पसन्द कर लेंगे क्योंकि खेत के बिना निर्वाह नहीं हो सकता है। राजमहल का आमोद दुःख देने वाला है।

नंदन वन और मन्डीकुक्ष के विषय में यही बात लागू है। नंदन वन देवों के मन बहलाव के लिए है। वहां मनुष्यों के जीवन के लिए उपयोगी सामग्री नहीं है। मंडीकुक्ष बाग में फलफूल आदि हैं जिनसे हमारे शरीर को पुष्टि मिल सकती है। पक्षी भी फलादि खाकर आनन्दित होते थे तो मनुष्य अवश्य उससे लाभ प्राप्त करते थे। पक्षी फलों के पहले परीक्षक हैं। आक का फल बंदर और पक्षी नहीं खाते। अतः मनुष्य भी उसे नहीं खाते। एक बात और है। जो पशु पक्षी फल खाते हैं अर्थात् फलाहारी हैं वे मांस नहीं खाते। मनुष्य कैसा प्राणी है जो फल भी खाता है और मांस भी खा जाता है। बंदर फलाहारी है अतः मांस नहीं खाता। पर मनुष्य ने फलाहार की मर्यादा का उल्लंघन कर दिया है। क्या अधिक बुद्धि मिलने का यह दुरुपयोग नहीं है।

मंडीकुक्ष बाग से सब को पोषण मिलता था लेकिन नंदन वन के लिए यह बात नहीं है। यही कारण है कि मंडीकुक्ष बाग में तपोधनी मुनि बैठे हैं और भगवान् के दर्शन भी हुए हैं मगर नंदन वन में क्या कोई साधु मिल सकता है। अतः नंदन वन की अपेक्षा मन्डीकुक्ष बड़ा ठहरता है। आप लोग स्वर्ग का सुन्दर वर्णन सुन पढ़ कर ललचा मत जाइये। आपका राजकोट बड़ा है या स्वर्ग? राजकोट में धर्म की जो जागृति हो सकती है वह स्वर्ग में नहीं हो सकती। स्वर्ग में मुनि नहीं मिल सकते मगर आपके यहां मुनियों का ठाट लग रहा है।

कहा जाता है कि गोपिकाओं की भक्ति से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उन्हें स्वर्ग में लिवा लाने के लिए विमान भेजा। गोपियों ने क्या उत्तर दिया सो सुनिये—

ब्रजवालो म्हारे वैकुण्ठ नथी आवो।
त्यां नन्द नो लाल क्यां थी लावो ॥ ब्रज ॥

गोपियों ने कहा स्वर्ग में नन्दलाल सी वस्तु नहीं है अतः हमें वहां जाना पसंद नहीं है। विमान लाने वालों ने कहा कि अरी तुम क्या पागल हो गई हो जो स्वर्ग में आने से मना कर रही हो। वहां रत्नों के महल हैं और इच्छा करने मात्र से ही पेट भर जाता है। तुम्हारे ब्रज में दुष्काल का भय रहता है और अनेक प्रकार के दुःख भी मौजूद हैं। गोपियों ने कहा कि पहले यह बताओ कि तुम विमान लेकर हमें लेने के लिए किस कारण आये हो। हमारे किस शुभ कार्य से प्रेरित होकर यहां आये हो। नन्दलाल की भक्ति से प्रेरित होकर ही यहां आये हो। तुम्हीं बताओ कि नन्दलाल की भक्ति बड़ी चीज़ है या स्वर्ग। स्वर्ग में नन्दलाल की भक्ति नहीं हो सकती अतः हम वहां आना नहीं चाहती। हम भक्ति का विक्रय करना नहीं चाहती। तुम्हारा स्वर्ग हमारे ब्रज से बड़ा होता तो वहां नन्दलाल ने जन्म क्यों नहीं लिया। गोपियों के उत्तर से देव चुप हो गये और उनकी भक्ति और श्रद्धा की प्रशंसा करते हुए आकाश में चले गये।

आप लोग भी यदि स्वर्ग को बड़ा मानों तो क्या वहां साधु श्रावक मिल सकते हैं। क्या वहां तीर्थंकर जन्म धारण कर सकते हैं। यहां रहकर धर्म की जैसी साधना की जा सकती है वैसी वहां नहीं हो सकती।

मुसलमानों की हदीसों में कहा है कि अल्लाने दुनिया बनाकर फरिश्तों से कहा कि तुम लोग इन्सानों की इबादत करो। उनकी बन्दगी करो। इस हुक्म के अनुसार सब फरिश्ते इन्सानों की बन्दगी करने लग गये मगर एक फरिश्ते ने इस हुक्म का पालन नहीं किया। उसने अल्ला से कहा कि आप कैसी क्या आज्ञा देते हैं। कहां हम फरिश्ते और कहां इन्सान। इन्सान खाक का बना है अतः नापाक है हम पाक हैं। अल्लाह ने उसको फटकार दी और बन्दगी के लिए हुक्म दिया। इन्सान की बन्दगी फरिश्ते भी करते हैं अतः इन्सान बड़ा है।

आप लोगों के लिए राजकोट बड़ा है। राजकोट [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] से दोनों एक हैं। कमी इस बात की है कि यहां [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है। [illegible] [illegible] जैसे भोजन भी तो नहीं है। साधु और श्रावक [illegible] [illegible] [illegible] हैं फिर भी स्वर्ग से ज्यादा राजकोट बढ़कर है क्योंकि यहां के [illegible] [illegible] के [illegible]

श्रावक भी नहीं होते । आप लोग इस सुअवसर से लाभ उठाइये । स्वर्ग के लिए धर्म की करणी को बेच मत डालिये । निष्काम होकर धर्म कर्म करिये । मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि निष्काम कर्म हजार गुना फल देता है ।

आपका विवाह हो चुका है । आपकी श्रीमती यदि कहे कि मैं रोटी बनाती हूँ अतः बदले में कुछ दीजिये तो आप अपनी स्त्री से क्या कहेंगे । आप यही कहेंगे कि क्या तुम मेरे यहां किराये पर आई हो । जब स्त्री को आप यह उत्तर देते हैं तब भगवान् से किसी प्रकार की मांग करना कितना बेहुदापन है ।

मीराबाई से किसी ने पूछा कि तुम्हें राणा प्रिय क्यों नहीं लगते उसने उत्तर दिया कि:—

> संसारी नो सुख एवो, झांझवानो नीर जेवो ।
> तेने तुच्छ करी फरीये रे मोहन प्यारा ॥

संसार का सुख तुच्छ है । मुझे भगवान् अति प्रिय हैं । राणा एक जन्म के साथी बन सकते हैं । मैं ऐसे साथी की खोज में हूं जो कभी साथ न छोड़े ।

मैंने शांकर भाष्य देखा तो उसमें भी यही बात देखने को मिली संसार के जीव मृगजल के समान भुलावे में पड़े हुए हैं । सूर्य की किरणें रेत पर गिर कर ऐसा भ्रम पैदा करती हैं मानों पानी भरा पड़ा हो । बेचारा मृग पानी की लालसा से दौड़ता जाता है मगर कहीं पानी नहीं मिलता । और आगे दौड़ लगाता है मगर उसकी इच्छा पूरी नहीं होती । यही हाल संसार के लोगों का है । उनकी इच्छायें कभी पूरी नहीं होतीं । मीराबाई इस तत्त्व को समझ गई थी अतः सांसारिक सुखों के भ्रम जाल में न फंसी । एक साथ दो घोड़ों पर सवार नहीं हुआ जा सकता परमात्मा की भक्ति और विषयवासना दोनों साथ नहीं चल सकते । विषय वासनाओं का मन्त्र त्यागे बिना ईश्वर भक्ति असंभव है ।

कहने का मतलब यह है कि न तो स्वर्ग से यह भूमि कम है और न मर्हूँगे बाग नन्दन वन से कम है । फिर आप स्वर्ग की प्रशंसा और इच्छा क्यों कर करते हैं ।

अमेरिकन इमर्सन थोरो जो कि महान् आध्यात्मिक विद्वान था । एक दिन अपने शिष्य के साथ बाग में गया । शिष्य ने प्रश्न किया कि स्वर्गभूमि बड़ी है या यह भूमि ।

...ने की शक्ति आजाय, सच्ची और निस्वार्थ प्रार्थना है। हे भगवान् ! मुझे ऐसा बल दीजिए कि मैं अपनी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, कौटुम्बिक या अन्य समस्त शक्तियाँ ...र्पण करदूं।

देने में सुख मानने वाले लोग जगत् में बहुत हैं। किन्तु चन्द लोग ऐसे भी हैं ... देने में राजी होते हैं। ऐसे भी कई व्यक्ति हो गये हैं जिन्होंने स्वयं भूखा रह कर ...रों को भोजन खिलाया है। दूसरों के प्राणों की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों का ...दान करने वालों की भी कमी नहीं है। मेघरथ राजा ने कबूतर की रक्षा के लिए अपना ...रा शरीर तक दे डाला था। मोहम्मद साहब के लिए कहा जाता है कि वे एक फाखता ...लिए अपने गाल का मांस काट कर देने के लिए तैय्यार हो गये थे। महाभारत में राजा ... और रन्तीदेव की कथा है। राजा रन्तीदेव चालीस दिन से भूखा था। जब वह भोजन ...ने के लिए बैठा तब एक चाण्डाल चिल्लाता हुआ आया कि मैं भूखों मर रहा हूं। रन्ती- ...ने अपना भोजन उसे देदिया। इस प्रकार देकर राजी होने वालों की संख्या भी कम ...है। दूसरों को कुछ भी देना निस्वार्थ भाव से देना परमात्मा को ही देना है। नम्रीभूत ...र देना चाहिए, अभिमान से नहीं देना चाहिए। देते देते कभी आप महापुरुष बन ...ते।

[illegible] के साथ व्यावहारिक बातों का भी जिक्र करना पड़ता है। [illegible]—बन्धन का [illegible] भाषा में जागृति [illegible] है। जागृति जिस प्रकार से हो उस प्रकार से उपदेश देने की आवश्यकता होती है। दो दिन से [illegible] का वर्णन किया जा रहा है और [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

वर्ण के समान लेश्या में गन्ध, रस और स्पर्श भी है कोई कृष्ण लेश्या वाले व्यक्ति को सूंघकर यह पता नहीं लगा सकता कि इसमें अमुक लेश्या है। इसका पता लगाने का साधन जुदा है। मन का फोटो लिया जाता है मगर साधारण केमेरे से नहीं। उसके साधन जुदा हैं। द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या का परस्पर सम्बन्ध है अतः द्रव्य लेश्या के समान भाव लेश्या को भी समझना चाहिए।

जैसे फूलों में सुधार किया जाता है वैसे लेश्या में भी सुधार हो सकता है। आप भी अपनी लेश्या को सुधारने का प्रयत्न कीजिये। वस्त्र और खानपान के साथ भी लेश्या का सम्बन्ध है। भगवान महावीर ने साधुओं के लिए सफेद वस्त्रों का विधान किया है। यह बात रहस्य पूर्ण है। आधुनिक राष्ट्रीय पोशाक भी सफेद ही पसन्द किया गया है। रंग के साथ भावों का सम्बन्ध है स्वाभाविक रंग से स्वाभाविक भाव पैदा होते हैं। भगवान ने खानपान के विषय में भी विधि बतलाई है। कौनसी वस्तुएं खाने योग्य है और कौनसी नहीं खाने योग्य है इसका विस्तृत विवेचन है। बहुत से भाई कहते हैं कि जीव रहित पदार्थ खाने योग्य हैं। किन्तु केवल जीव रहित होना ही भोजन की उपयुक्तता नहीं है। किस भोजन से कैसी प्रकृति बनती है यह गुह्य बात है। गीता में तामसी राजसी और सात्विक भोजन का विस्तृत वर्णन है। विकारी निर्विकारी आहार का वर्णन जैनागमों में भी है। तमोगुणी पदार्थों को जैनागमों में विगय अर्थात् विकृति कहा गया है। जो साधु आचार्य उपाध्याय के दिये बिना ऐसा आहार करता है उसे दण्ड आता है। दूध दही घी शक्कर आदि में जीव नहीं है मगर ये विगय हैं। खाने पर नियन्त्रण रख कर अपनी प्रकृति सतोगुणी बनाने से लेश्या में भी सुधार होता है।

आजकल बहुत से लोग लाल शरबत पीते हैं जो शराब का ही रूपान्तर है। कुरान हदीसों में भी कहा है कि जो वस्तु बुद्धि में विकार पैदा करती हो वह न खानी पीनी चाहिए। वह हराम है। देशकाल के अनुसार खाने पीने की वस्तुओं में थोड़ा परिवर्तन हो सकता है। मैंने कुरान में पढ़ा है कि खुदा ने जमीन और आसमान बनाकर इन्सान के खाने के लिए फल और वृक्ष बनाये। इससे मालूम पड़ता है कि इन्सान का आहार फलादि है। मांस आदि नहीं। सब समझदार लोगोंने मांस खाने का निषेध किया है और कहा कि अपने पेट को किसी की कबर मत बनाओ।

याद देता है। तेरा अहो भाग्य है जो तूने ऐसे लब्धीधारी मुनि के दर्शन किये हैं। घर बैठे नहीं होती वह जंगल में हो गई है। यदि मुझे श्रीकृष्ण द्वारा गौएं चराने का ज्ञात होता तो मैं खुद गायें चराने आता और ऐसे महात्मा के दर्शन करता। इस वक्त गोरक्षा के काम भुलाये जा रहे हैं। बल्कि बहुत से लोग ऐसे कामों में बाधक भी होते हैं। एक भाई ने गोरक्षा के लिए भूमि दान किया था। उसके मर जाने के बाद उसके वारिस ने कहा कि भूमि दान करने वाले के साथ मर गया। अब इस भूमि का मैं मालिक हूं। मुकदमा चल रहा है। वकीलों की बन आई है। अच्छे काम के लिए दान की हुई भूमि का मोह छोड़ देने में क्या हर्ज है। मुख से बातें करने मात्र से गोरक्षा नहीं हो जाती। यदि आप लोग विचार पूर्वक यत्न करें तो एक भी गाय न कटने न पाये। सुना है मोटेमियां ने यह जाहिर किया था कि गौरक्षा करना हिन्दु और मुसलमान दोनों का कर्त्तव्य है। गाय हिंदुओं को मीठा और मुसलमानों को कड़ुआ दूध नहीं देती। सबको समान रूप से दूध देती है और पोषण करती है। लोग अपने बगलों की चिन्ता करते है मगर गाय की चिन्ता नहीं करते।

सुभग बड़ा राजी हो रहा था। जब सेठने उसकी सराहना की तब उसकी खुशी का पार न रहा। पाप के कार्मों की सराहना करने से पाप वृद्धि होती है और धर्म कार्यों की सराहना करने से धर्म की। आज कल कुछ युवकों ने तो केवल निन्दा करने का ही काम अपना रखा है। वे कहते है हमारे दिल में जो धधक होगी वही काम करेंगे। युवकों से मेरा कहना है कि युवावस्था के जोश में होंश गुमाकर काम मत करना। होंश कायम रखकर विचार पूर्वक कार्य करने से सफलता चेरी बन जाती है। बेसमझी से आपकी धधक कहीं आपको गिरा न दे इसका ध्यान रखना। पहले के श्रावक जहां कहीं मिलते कहते थे। अयमाउसो ?

अयमाउसो ! यह निग्गंथे पावयणे अट्ठे । अयमाउसो ! निग्गंथे पावयणे परमट्ठे । सेसे अणट्ठे ।

हे आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थ है, यह निर्ग्रन्थ प्रवचन परमार्थ है। इसके सिवा सब अनर्थ है। इस प्रकार धर्म की प्रशंसा करते थे। हम जाकर आने वाले मे मुसलमान भाई इसी लिए मिलते हैं। वे कहते हैं हम हज करने के लिए नहीं जा सके। तुम्हें धन्य है जो तुम हज करके आ सके हो। जो लोग व्याख्यान सुनने के लिए नहीं आये हैं वे व्याख्यान सुनने वालों की प्रशंसा किया करें और व्याख्यान सुनने वाले हमारी

सुनाई हुई बातें सुनाया करें तो हमारा काम कितना हल्का हो जाय । तथा उपदेशक ही उपदेशक हो जाय ।

सुभग ने सेठ से कहा कि आकाश में उड़ते समय वे मुनि कुछ मंत्र बोल रहे थे । आप मुझे वह मंत्र सिखा दीजिये ताकि मैं भी आसमान में उड़ा करूं । सेठ ने पूछा वह कौनसा मंत्र था जरा बताओ । 'अरिहंताणं, नमो अरिहंताणं' ऐसा वे बोलते थे । सेठ समझ गया और उसे सिखाने लगा--

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्व साहुणं
ऐसो पंच नमोकारो, सव्व पाव पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम् ॥

कहो यही वह मंत्र है न! जो साधु महात्मा बोले थे । जी हां, यही मंत्र था सुभग ने उत्तर दिया । सेठ ने कहा तू ने अच्छी बात याद रखी ।

मित्रो ! एक दिन मैं जंगल गया था । रास्ते में एक फकीर बोल रहा था 'याद है आबाद, भूल से बरबाद' । वह किसकी याद के लिए कह रहा था । धन पुत्र स्त्री आदि की तो लोग खूब याद रखते हैं । वह परमात्मा की याद के लिए कह रहा था । जो परमात्मा को नहीं भूलता उसके हाथ से कभी पाप नहीं हो सकता । वह बरबाद नहीं होता ।

बिस्मिल्लाहि रहमाने रहीम

अर्थात् अल्ला के नाम के साथ शुरू करता हूं । जो भगवान् का नाम याद रखता है उससे बुराई नहीं हो सकती । क्या वह किसी के गले पर छुरी चला सकता है । क्या कोई ठाकुर साहिब रामजी का नाम लेकर किसी के गले पर छुरी चला सकता है । या चोरी कर सकता है ।

कई लोग कहते हैं नाम से क्या होता है । मैं कहता हूं नाम के बिना काम नहीं होता । अदालत में जाकर कोई जज महोदय से कहे कि मुझे दस हजार रुपये लेने हैं सो दिलवाो । बिना नाम के जज किससे रुपये दिलाये । अतः नाम याद रखना बहुत जरूरी है।

नाम लेने में भी अन्तर है । एक तो सम्बन्ध जोड कर नाम लिया जाय और दूसरा बिना सम्बन्ध के नाम लिया जाय । उदाहरणार्थ समझिये कि एक तो वर या कन्या एक दूसरे का नाम सगाई होने के पहले लेते हैं और एक सगाई होने के बाद । दोनों समय के नाम लेने में कितना अन्तर हो जाता है । साधारण रीती से ईश्वर का बार बार नाम लेने में और उसके साथ सम्बन्ध जोड़कर नाम लेने में बड़ा फर्क है । परमात्मा से तादात्म्य सम्बन्ध जोड़कर नाम लिजीये, बड़ा आनन्द आयगा ।

नवकार मंत्र सिखाकर सेठ जिनदास सुभग से कहने लगे कि इस मंत्र का बड़ा प्रभाव है । भगवान् पार्श्वनाथ ने जहरीले सांप को यह मंत्र सुनाया था । इसके प्रभाव से वह धरणेन्द्र देव हुआ ।

एक चोर को शूली की सजा दी गई थी । वह शूली पर लगे हुए था कि उसे प्यास लगी । राजा के डर से कोई उसके पास न आता था । एक दयालु सेठ उधर से निकला । चोर ने कहा सेठजी मैं प्यास के मारे मर रहा हूं । शूली से जितनी वेदना नहीं हो रही है उतनी प्यास के मारे हो रही है । सेठने कहा मैं पानी लेने के लिए जाता हूं । मगर न मालूम मेरे पहुँचने के पूर्व ही तेरी मृत्यु हो जाय । अतः तब तक तू नमो अरिहन्ताण आदि मंत्र बोलते रहना ताकि मर जाय तो तेरी सदगति हो जाय । वह चोर नमो अरिहन्ताण आदि मंत्र भूल गया मगर बोलने लगा—

आणु ताणु कछु न जानू सेठ वचन परमाणू ।

जो कुछ सेठने कहा वह प्रमाण है । सेठ पानी लेकर आया तब तक वह मर चुका था । नवकार मंत्र के प्रभाव से वह देव हुआ । उधर चोर को पानी पिलाने की कोशिश करने के कारण राजा के आदमियों ने सेठ को पकड़ लिया और राजा के सामने उपस्थित किया । राजा ने उसका आज्ञा भंग करने के कारण उसे शूली की सजा दी । किन्तु देव बने हुए चोर के जीव ने अपना आसन कंपायमान होने से आकर उसकी रक्षा की । शूली का सिंहासन बन गया ।

नवकार मंत्र का प्रभाव बताने के लिए जिनदास सेठ एक और कथा सुभग को सुनाते हैं। एक श्रीमति नवकार मंत्र का बहुत जाप किया करती थी। उसकी सासू उसके इस कार्य से बहुत अप्रसन्न रहा करती थी। एक दिन अपने बेटे से शिकायत की कि बहू मेरा कहना नहीं मानती है और दिन भर नवकार मंत्र जपती रहती है। इस से यह मंत्र छुड़ा दे मगर उसने न छोड़ा। श्रीमती ने कहा पति देव! इस मंत्र के प्रभाव से ही मैं सासूजी के कठोर वाक्य बाण सहन करती हूं। यह मंत्र क्रोध पर काबू करना सिखाता है। 'नमो अरिहन्ताणं' का अर्थ है जिन्होंने अरि अर्थात् काम क्रोध लोभ आदि शत्रुओं को हन्ताणं यानी नष्ट कर दिया है उनको नमस्कार हो इस मंत्र में क्या बुराई है। आप मेरी परीक्षा कर सकते हैं कि मैं इस मंत्र के प्रभाव से क्रोध को जीतती हूं या नहीं।

श्रीमती के पति ने सोचा इस प्रकार रोज रोज घर में क्लेश होना ठीक नहीं है, इसको मार डालना ही अच्छा है। एक दिन एक गारुड़ी सांप लेकर उधर से निकला। उसने सोचा यह अच्छा उपाय है। लोग समझेंगे सांप काटने से मर गई है। गारुड़ी से सांप ले लिया और एक मटके में बन्द करके रख दिया। शाम को जब श्रीमती अपने पति के पास गई तब कहा पति देव! क्या आज्ञा है। पति ने कहा तू आज्ञा आज्ञा कहती है मगर मेरा कहा तो करती नहीं है। श्रीमती ने कहा ऐसा तो मैंने कभी नहीं किया। मैं सदा आपकी आज्ञा पालन करती रही हूं। पति ने कहा, जा इस घड़े में फूलों की माला रखी है, उसे ला और मुझे पहना दे। नवकार बोलती हुई घड़े में हाथ डाला और माला लाकर उसे पहना दी। पति के आश्चर्य का पार न रहा। यह नवकार मंत्र के प्रभाव से चमत्कार हुआ।

मंत्र बड़ो नवकार, सुमरलो, मंत्र बड़ो नवकार।
पुष्प सुगंध की माला घट में, दिया भरतार को डार।
नाग मिट के भई फूल की माल, मंत्र बड़ो नवकार। सुमरलो॥

[illegible]

के आने के पहले माता को बता दिया था कि घड़े में क्या है। माता घड़े में सांप देख कर डर गई थी। मगर श्रीमती तुरत गई और घड़े में हाथ डालकर माला लाई। नवकार मंत्र के प्रभाव से जब श्रीमती सांप को हाथ लगाती थी तब वह माला हो जाता था और जब मा बेटे देखते तब सांप ही दिखाई देता था। लड़के ने माता को समझाया कि माता नवकार मंत्र के प्रभाव से ही यह सॉंप माला बन जाया करता है। जिस नवकार मंत्र को छुड़ाने के लिए आप जिद पकड़े हुए हो उसका यह प्रभाव है। हम सब क्रोध किया करते हैं मगर श्रीमती कभी किसी के प्रति क्रोध नहीं करती है यह भी इस मंत्र का ही प्रभाव है। श्रीमती के घर का क्लेश उसदिन से शान्त हो गया। सब आराम से रहने लगे।

सुभग नवकार मंत्र के प्रभाव की कथाएँ सुनकर बहुत खुश हुआ। उसे नवकार मंत्र याद होगया था अतः अपने को निर्भय अनुभव करने लगा। आगे क्या होता है यह अवसर होने पर कहा जायगा।

राजकोट
१७—७—३६ का
व्याख्यान

—: स्तुति का प्रभाव :—

श्री अभिनन्दन दुःख निकन्दन वंदन पूजन योग जी ॥ श्रा० ॥

जहां वे विराजते हैं वहां वैर भाव नहीं रहता। आगम में वैर रखने वाले जीव भी निर्भ विचरने लगते हैं। शेर और बकरी तक साथ रहने लगजाते हैं। भयभीत होने निर्भय होजाते हैं। चैतन्य प्राणियों के अलावा जड़ जगत् पर भी महात्माओं का पड़ता है।

राजा श्रेणिक विचार करने लगा आज बगीचे का वातावरण क्यों बदला हुआ मालूम होता है। मैं नित्य यहां आया करता हूं मगर आज कुछ नवीनता अनुभव हो रही है। क्या मेरा मन बदल गया है। अथवा बगीचे के सब प्राणी और वृक्षादि बदल गये हैं। वृक्ष के नीचे एक मुनिराज को देखकर वह विचार में डूब गया। साधु का और वृक्ष का क्या सम्बन्ध है जिससे शास्त्रकार ने दोनों को जोड़ दिया है। यदि परस्पर तुलना की जाय तो ज्ञात होगा कि साधु और वृक्ष में बहुत साम्य है। वृक्ष पर शीत और ताप गिरते हैं। वह शांति पूर्वक अडिग खड़ा रहकर उन्हें सहता है। किसी से इस बात की फरियाद नहीं करता। आप कहेंगे 'वह क्या फरियाद करें, वह जड़ है। क्या हम भी उसके समान जड़ बन जाय'। आप वृक्ष के समान जड़ मत बनिये मगर आपको शक्ति मिली है उसका कुछ तो उपयोग करिये। वृक्ष शीत ताप को सहन करता है। आप भी कुछ सहन करिये। आपको वह बहू पसन्द है या नहीं जो सासू के वचनों का आघात सह लेती है और सामने नहीं बोलती। यदि आघात सहने वाली बहू पसन्द है तो इसका अर्थ स्पष्ट होगया कि आघात सहन करना अच्छी बात है। जो सासुएं अच्छी बहूएं चाहती हैं उन्हें स्वयं अच्छा बनने की कोशिश करना चाहिये। वृक्ष जैसे पवन का आघात सहन करता है वैसे ही जो पुरुष संसार व्यवहार के अनेक आघात सहन करता है वह महान् बन जाता है। संसार में कैसे भी काण्ड हों सब अवस्थाओं में शान्त शील रहना, कल्याण का मार्ग है।

महाभारत में कहा है कि युधिष्ठिर ने भीष्मपितामह का अन्तिम समय जानकर एक बात पूछी थी। धर्म और राजनीति की अनेक बातें जानने के बाद आखीरी शिक्षा लेने के लिए यह बात पूछी गई थी। भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा तुम जो कुछ पूछना चाहो पूछ सकते हो। तुम्हारी तिजोरी में जितनी भी शिक्षा की बातें हों रखना चाहता हूं। युधिष्ठिर ने पूछा कि प्रबल शत्रु के आक्रमण करने पर राजधर्म का अनुसरण करते हुए क्या करना चाहिए। भीष्म ने दिया उत्तर कि यह बात समझाने के लिए मैं तुम्हें एक प्राचीन कथा सुनाना चाहता हूं।

कवि अपने मन को सम्बोधित करके कहता है हे मन ! तू वृक्ष की भांति प्रसन्न कर। वृक्ष अपने पर कुल्हाड़ी मारने वाले पर वैरभाव नहीं रखता और न पानी सिंचने वाले पर स्नेह भाव रखता है। सुख दुःख में समान भाव रखता है। न काहू सो वैर न काहू सो द्वेष। यदि मनुष्य समाज वृक्ष से शिक्षा लेकर किसी से राग द्वेष न करे तो यह संसार कितना सुन्दर बन जाय।

कदाचित् कोई यह कहे कि यदि हम इतने सीधे और सरल बन जाय तो हमारे शत्रु हमें काट डालें और हमारा नामो निशान मिटा डालें। पर इस विषय में वृक्ष क्या कहता है सो सावधान होकर सुनिये। वृक्ष कहता है ' मैं किसी से भी नहीं कट सकता जब कटता हूं तब अपने ही वंशज की सहायता से कटता हूं। यदि कुल्हाड़ा में लकड़ी का हत्था न हो तो मैं कट नहीं सकता' इसी प्रकार सामने वाला व्यक्ति आप से वैर भाव रखता है किन्तु यदि आप उसे अपने मन की सहायता न पहुँचायें तो वह आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। आप अपना मन रूपी हत्था शत्रु को पहुँचाते हैं अतः वह आपका नुकसान कर सकता है। वैर से वैर की वृद्धि होती है। यदि हम में सामने वाले के लिए बुरी भावना नहीं है किन्तु सद्भावना है तो सामने वाले की ताकत नहीं है कि वह अपने दुष्ट परिणामों का हम पर असर कर सके। उसकी दुष्ट भावना का असर हम तक नहीं पहुँच सकता बशर्ते कि हम प्रतिवैर करके उसके भावों को उत्तेजित न करें।

इस प्रकार सुविधा देने वाले महान् उपकारी वृक्ष को भी मनुष्य काट डालते हैं यह कितनी कृतघ्नता है। घाटकोपर (बम्बई) में एक दिन मैं जंगल गया था। वापस लौटते वक्त, जिस वृक्ष को मैं जाते वक्त हरा भरा और लहलहाता हुआ छोड़ गया था, कटा हुआ देख कर मुझे बहुत दुःख हुआ। मेरे साथी सन्तों ने वृक्ष काटने वालों से पूछा कि इसे क्यों काट डाला तो उत्तर मिला कि इसके कोयले बनाकर चूना पकाया जायगा जिससे मेडिकल लोगों के बंगले बनेंगे। आप लोगों के बंगलों के लिए बेचारे वृक्षों की यह दशा होती है।

मैंने हदीसों में पढ़ा है कि [illegible] को महापाप माना गया है परन्तु हरे वृक्ष को काटना बड़ा गुनाह माना है। हरा वृक्ष सबको शान्ति देता है। [illegible] सबको [illegible]

नहीं देता। मकान बनाने के लिए ही वृक्षों का विनाश नहीं हुआ है किन्तु इस मशीनरी युग में एंजिनों और मील आदि कारखानों को आहुती देने के लिए जंगल उजाड़ कर दिए गये हैं। कहीं लकड़ी के कोयले जलाये जाते हैं और कहीं लकड़ी। मेवाड़ के कई कारखानों में लकड़ी जलाई जाती है। जिससे वृक्ष काटे जाते हैं। इस प्रकार इस यंत्रयुग ने वृक्षों का बड़ा नाश किया है। वृक्षों के नाश के साथ प्रकृति का सौंदर्य और आपका सुख भी नष्ट हो रहा है।

मंडीकुक्ष बाग में वृक्ष के नीचे जो महात्मा विराजमान हैं वे वृक्ष के ही समान हैं। किसी भी प्रकार के आघात प्रत्याघात की वे शिकायत करने वाले नहीं हैं। आप भी देखे इन्हें।

सुदर्शन चरित्र—

कल कहा था कि सेठ ने सुभग को नवकार मंत्र सिखा कर उसका महत्व समझाने के लिये कुछ कथाएं सुनाई थी। श्रावक के संपर्क में रहने से रहने वाले का सुधार होना चाहिये। आज तो लोग अपने लड़के का भी सुधार नहीं कर सकते हैं। अपनी स्त्री को भी नहीं सुधार सकते। वकील बैरिस्टर और पंडित लोग अन्य कामों में समय दे देते हैं मगर घर की स्त्री के सुधार के लिये उन्हें समय नहीं मिलता। बल्कि यों कहते हैं कि वह अपनी मर्जी से काम करे। हमें क्या। लेकिन श्रावक का कर्तव्य है कि जो गुण खुद में हो वह दूसरों को भी दे। उववाई सूत्र में श्रावक को धम्मक्खाई कहा है। धम्मक्खाई का अर्थ है धर्म का कथन करने वाला। श्रावक स्वयं धर्म का अभ्यासी हो तभी दूसरों को धर्म का स्वरूप समझा सकता है। [illegible] गुरु की परीक्षा भी नहीं की जा सकती है। पर पूरा पक्का होना चाहिये।

शास्त्र में कहा है कि जिनदास श्रावक एक के सुबुद्धि श्रावक [illegible] का [illegible] था। जितशत्रु धर्म को न [illegible] सुबुद्धि ने उन्हें [illegible] दिया। श्रावक का [illegible] है।

स्वारथ के सबहि सगे [illegible] के नांहि, [illegible] है।
[illegible] के [illegible] नाहिं [illegible] है॥

सिद्धि ऋद्धि वृद्धि दीसें घट में प्रकट सदा, अन्तर की लच्छी सों अजाची लच्छपति है।
दास भगवान के उदास रहे जगत सों, सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती है॥

श्रावक सोचता है कि मैं गृहस्थ नहीं हूं और साधु भी नहीं हूं। श्रावक अपना स्वार्थ साधता है मगर सत्य के साथ। दूसरों को पीड़ा पहुंचाये बिना। यदि सत्य का घात होता हो तो श्रावक लाखों की सम्पत्ति की भी परवाह नहीं करता। कई लोग किसी भी प्रकार से विषय भोग की सामग्री इकट्ठा करने में ही भक्ति मानते हैं। मगर भक्ति भोग में नहीं है, त्याग में है।

श्रावक सत्य का उपासक होता है। कोई कहे कि उपाश्रय में रहे तब तक सत्य का उपासक रहे और दुकान पर जाये तब सत्य का आश्रय कैसे लिया जाय। किन्तु शास्त्र कहता है सत्य की खरी कसौटी तो लोक व्यवहार ही है। उपाश्रय में धर्म या सत्य का पाठ पढ़ाया जाता है। उस पाठका असली आचरण तो व्यवहारमें ही होना चाहिये। मदरसे में छात्र पांच और पांच दस सीखे और दुकान पर आकर पांच और पांच ग्यारह बताने लगे तो कैसे काम चले। क्या वह शिक्षा सच्ची गिनी जा सकती है? कदापि नहीं। धर्म स्थानक में सत्य अहिंसा की शिक्षा ली जाय और बाहर जाकर बाजार में सफेद झूठ का व्यवहार किया जाय तो धर्म की हंसी कराना है।

श्रावक लोग बारह व्रत ग्रहण करके व्यवहार में उसका पालन करते हैं। कई लोग दलील करते हैं कि 'कन्नालीए' अर्थात् कन्या सम्बन्धी गोवालीए–गाय सम्बन्धी और भोमालीए–भूमि सम्बन्धी झूठ न बोलना इतना अर्थ ठीक है। व्यवहार में यह निभ भी सकता है। मगर कन्या, गाय और भूमि को उप लक्षण बनाकर मनुष्यमात्र, पशुमात्र और भूमि से उत्पन्न सम्पूर्ण पदार्थों के विषय में झूठ न बोलना, कैसे निभ सकता है। दलील करने वालों की मंशा है कि व्रतों में कुछ छूट होनी चाहिए। मगर ज्ञानी कहते हैं यदि कन्या के विषय में झूठ बोलना पाप है तो वर या अन्य किसी के विषय में झूठ बोलना कैसे धर्म होजायगा। झूठ मात्र पाप है। श्रावक को इसके लिए अपने आप पर काबू करना ही चाहिए। यदि यह कहा जाय कि बिना झूठ बोले व्यापार करना सम्भव नहीं है तो यह लिया जायगा है यूरोप के लोग सत्य के साथ अपना व्यापार चला सकते हैं तो आप क्यों नहीं चला सकते। बल्कि जो सत्य पूर्वक व्यापार करता है उसका व्यापार अच्छा चलता है। असत्य के बिना काम चल सकता है किन्तु सत्य के बिना काम नहीं चल सकता।

जितशत्रु राजा को धर्म की बातें अच्छी न लगती थी। मगर सुबुद्धि प्रधान राज्य का काम संभालता हुआ भी धर्म का पालन करता था। एक दिन राजा और प्रधान दोनों साथ में हवा खाने निकले, मार्ग में एक खाई के सड़े हुए पानी से बड़ी दुर्गन्ध निकल रही थी। राजा घृणा-भाव दिखाता हुआ झट से निकल गया। सुबुद्धि ने कहा, राजन्! हमारी कमी के कारण ही यह पानी दुर्गन्ध युक्त है। राजा ने कहा प्रधान! दुर्गन्ध सुगन्ध कैसे हो सकती है। प्रधान ने बात को वहीं छोड़ कर मन में नक्की कर लिया कि राजा को यह बात प्रत्यक्ष करके दिखानी चाहिए। उसने अपने एक खानगी नौकर से उस खाई का सड़ा पानी एक घड़े में भरवाकर मंगवाया और उसमें क्षारादि द्रव्य डालकर एक घड़े से दूसरे में और दूसरे से तीसरे में, इस प्रकार ४९ दिन तक उंडेल कर उसे शुद्ध किया। फिर राजा की पनिहारी को एक कलश भर करके दिया और कह दिया कि आज राजा जब भोजन करे तब पीने के लिए यही पानी रखना, राजा ने पानी पीकर पनिहारी से कहा कि आज पानी बहुत अच्छा है। सदा ऐसा ही क्यों नहीं लाया करती। पनिहारी ने कहा महाराज! यह पानी प्रधानजी के यहां का है। प्रधान को बुलाकर राजा ने उपालंभ दिया कि तुम अच्छा पानी पीते हो और हमारे लिए उसका प्रबन्ध नहीं करते यह कितनी भद्दी बात है। प्रधान ने कहा यह तो पुद्गलों का स्वभाव है कि बुरे के अच्छे और अच्छे के बुरे बन जाते हैं। उस दिन जिस खाई के पानी की दुर्गन्ध के मारे आप ने नाक बंद कर लिया था, यह वही पानी है जिस का आप आज बखान कर रहे हो। महाराज! किसी पर घृणा करने से उसका सुधार नहीं हो सकता। मगर उसे सुधारने का भरसक प्रयत्न करने से वह सुधर सकता है। पानी का सुधार हो सकता है तो मनुष्य का क्यों नहीं।

राजा ने प्रधान की अकल होशियारी से प्रसन्न होकर कहा कि तू मुझे प्ररूपित धर्म सुना। प्रधान ने कहा महाराज! पानी की तरफ क्या देखते हैं अपनी आत्मा की ओर देखिये। यह भी पानी के समान दुर्गन्ध युक्त है। इसे शुद्ध बनाने का प्रयत्न करना चाहिए मूल खराब होने से सारा वृक्ष खराब होता है। आत्मा सब का मूल है अतः प्रथम इसे सुधारना चाहिए।

कहने का सारांश यह है कि श्रावक दूसरों को इस प्रकार सुधारा करते हैं। जो खुद सुधरे हुए होते वही दूसरों को सुधार सकते हैं एक फारसी के शायर ने कहा है 'अपने दिल के कोट में बदी को स्थान मत दो, नेकी को दो'।

सुभग नवकार मंत्र सीखकर खाते, पीते, उठते, बैठते हर वक्त उस की रट लगाने लगा। भोले लोगों में विश्वास अधिक होता है। सुभग एक भोला और सीधा सादा लड़का था। दुनिया के गुड़ माया जाल से एकदम अपरिचित था। सुभग नवकार मंत्र के कारण अपने आपको निर्भय अनुभव करने लगा। 'अब मैं कहीं भी जाऊं, मुझे भूत प्रेत डाकिन शाकिन आदि किसी का भी कोई भय नहीं है मैं निर्भय और अमर हूँ'।

गांधीजी की अन्य बातों में चाहे किसी का मतभेद हो मगर उनके सत्य के विषय में किसी को भी संदेह नहीं है। उन्होंने अपनी आत्म कथा में लिखा है कि 'मुझे मेरी धाय माताने यह बात सिखाई थी कि राम का नाम लेने से किसी तरह का भय न रहेगा। मेरे कोमल दिमाग में उसके उस कथन पर विश्वास जम गया था अतः उस प्रकार का भय नहीं होता था।

आप लोग भी नवकार मंत्र जानते हैं। आपके हृदय में भूत प्रेत आदि का भय तो नहीं है। यदि आपसे कोई श्मशान में रहने के लिए कहे तो आप इन्कार तो नहीं करेंगे। आपकी कल्पना का भूत और शास्त्र कथित देवयोनि का भूत जुदा जुदा है। आपका कल्पित भूत तो एक थप्पड़ में भाग जाता है। एक ताबिज या गंडा बांध लेने से भी भाग जाता है। शास्त्र वर्णित देव के लिए तो कहा गया है ' कोड चक्की एक सुर कहो।

अमेरिका में भूतों की लीला का ढोंग चला। दो मित्रों ने इसकी जांच करने का निश्चय किया। भूत लाने वाले के पास जाकर एक ने कहा कि मेरी बहिन का भूत ला दो। बहिन जीवित थी। भूत लाने वाले ने जरा ऊँचा करके कहा लो भूत आ गया है। वह बड़े आश्चर्य में पड़ गया कि जीवित व्यक्ति का भूत कैसे आ गया। खामोश होकर बैठ गया। दूसरे ने कहा, नेपोलियन का भूत ला दो। झट नेपोलियन का भूत आ गया। वह मित्र तलवार लेकर उसके सामने दौड़ा भूत नौ दो ग्यारह हो गया। वह सोचने लगा कि जिस नेपोलियन ने अपनी वीरता से सारे यूरप को कंपा दिया था उसका भूत क्या एक तलवार से डर सकता है। फिर शंकराचार्य के भूत को बुलवाकर उससे वेदान्त के प्रश्न पूछे गये मगर उत्तर नहीं दिये जा सके। उन दोनों मित्रों ने भूत लाने वाले ढोंगियों का भण्डाफोड़ कर दिया।

आप लोग नवकार मंत्र पर विश्वास रखो तो ऐसे चक्र में कभी न फंसो। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में भ्रम की मात्रा अधिक होती है। वे बच्चों को डराया करती है '

...यां भूत रहता है ' कोमल दिमाग के बच्चों में यह बात घर कर जाती है और ... भूत उम्र तक साथ रहता है । इस प्रकार के वहम दिल में से निकाले बिना धर्म ...न रखने में आप समर्थ नहीं हो सकते ।

सेठ ने सुभग की रग २ में नवकार मंत्र के महत्त्व को उतार दिया जिससे वह ...रित होकर रहने लगा । आप भी इस प्रकार परमात्मा के नाम पर विश्वास रखकर ...बनो तो कल्याण है ।

राजकोट
१८—८—३६ का
व्याख्यान

:—: व्याख्यान :—:

" सुमति ! सुमतिदातार महामहिमानिलो जी········· । "

परमात्मा की प्रार्थना करने के कुछ उदाहरण इस प्रार्थना में बताये गये हैं। वे उदाहरण स्पष्ट हैं फिर भी मैं और स्पष्ट करता हूं। यदि इन उदाहरणों को हृदय में रख कर प्रार्थना की जाय तो प्रार्थना में पूर्ण सफलता मिल सकती है।

भ्रमर की फूल से प्रीति होती है। सूर्य से कमल की और पपिहा की पानी से प्रीति होती है। जैसी इन तीनों—भ्रमर कमल और पपिहा की अपनी इष्ट वस्तुओं के प्रति प्रीति होती है वैसी यदि मनुष्य की प्रीति परमात्मा के साथ हो जाय तो बेडा पार है। भ्रमर एक ही दिशा में गमन करता है। अर्थात् जिससे उसने प्रीति करली है उससे विपरीत दिशा में नहीं जाता। उसकी प्रीति पुष्प से है। वह पुष्प की सुगन्ध का रसिक है। वह फूलों से सुगन्ध ग्रहण

प्रार्थना भी करते जाना और दुराचरण भी सेवन करते जाना, ठीक नहीं है तो क्या हम सब लोग साधु बन जाएँ ? मैं सब को साधु बनने के लिए नहीं कहता। सब लोग साधु बन जाये तो रोटियाँ कहां से मिलेगी। साधु होना तो अपनी अपनी अन्तःकरण की भावना और शक्ति पर निर्भर है। किन्तु जो व्यक्ति जिस स्टेज-दर्जे पर है उसे उसके अनुसार सच्चरित्र बनना ही चाहिये। आप गृहस्थ हैं अतः गृहस्थ के योग्य सच्चरित्रता बनना ही चाहिए। गृहस्थों की सच्चरित्रता के हालात आप लोग उपासक दशांग सूत्र से सुन ही रहे हो। बिना साधु हुए यदि धर्माचरण न किया जा सकता होता तो भगवान महावीर स्वामी यह न कहते कि—

दुविहे धम्मे पराणत्ते, तं जहा आगार धम्मे अणगार धम्मे।

धर्म दो प्रकार का है। एक साधु के लिए और दूसरा गृहस्थों के लिए। गृहस्थ अपने धर्म का पालन करे और साधु साधु धर्म का। यदि गृहस्थ अपने धर्म का सम्यक् प्रकार से पालन करने लगें तो साधु भी अपना साधुपन अच्छी तरह निभा सकें। साधु धर्म और गृहस्थ धर्म एक दूसरे पर आधार रखते हैं। गृहस्थों को भी अपने पद के अनुसार प्रार्थना में वर्णित उदाहरणों के अनुसार भगवान् की भक्ति करनी चाहिए।

अब मैं शास्त्र की बात कहता हूँ। अनाथी मुनि की कथा सम्बन्धी गाथा की एक चर्चा रह गई है जिसे स्पष्ट करना उचित है।

विहारजत्तं निज्जाओ मंडिकुच्छिसि चेइये।

श्रेणिक राजा मंडिकुक्ष नामक चैत्य में विहार यात्रा के लिए गया। यहां मंडिकुक्ष-उद्यान का प्रयोग न करके मंडिकुक्ष चैत्य शब्द का प्रयोग किया गया है। चैत्य शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिए। इस उत्तराध्ययन सूत्र के टीकाकार 'चैत्य इति उद्याने' अर्थात् 'चैत्य शब्द का अर्थ उद्यान है,' ऐसा लिखते हैं। श्रेणिक राजा उद्यान में गया।

चैत्य शब्द 'चिय चयने, चिति-संज्ञाने' धातु से बना है। जहा प्रकृति का बहुत उपचय हो, बहुत सुन्दरता हो उस स्थान को चैत्य कहते हैं। अथवा आत्मा के ज्ञान को भी चैत्य कहते हैं। मनः प्रसन्नता के कारण को भी चैत्य कहते हैं। यह बात मैं मनगढ़न्त नहीं कह रहा हू मगर पूर्वाचार्यों के कथनानुसार कह रहा हू। रायपसेणी सूत्र में वर्णन है

कि सुर्याभदेव ने भगवान को 'देवयं चेइयं' कहकर वन्दना की है। मलयगिरि टीका में इस बात का खुलासा किया गया है कि भगवान् को चेइयं क्यों कहा गया। टीकाकार ने लिखा है 'सुप्रशस्त मनोहेतुत्वादिति चैत्यं' अर्थात् मनः प्रसन्नता का कारण होने से भगवान चैत्य हैं। किसी के लिए संसार व्यवहार मनः प्रसन्नता का कारण होता है और किसी के लिए भगवान् मनः प्रसन्नता के कारण होते हैं। सुर्याभदेव को देवलोक के सुख मनः प्रसन्नता के कारण न जान पड़े किन्तु भगवान् मनः प्रसन्नता के कारण मालूम हुए। इसी कारण से भगवान को चेइयं शब्द से सम्बोधित करके वन्दना की है।

चैत्य शब्द रूढ़ नहीं है किन्तु व्युत्पत्ति प्रतिपादक है। इसके अनेक अर्थ हैं—ज्ञान, इष्ट, मनः प्रसन्नता का कारण आदि। मगर चैत्य शब्द का अर्थ व्युत्पत्ति से मूर्ति नहीं होता। जैनशास्त्रों में जहां कहीं प्रतिमा का वर्णन आया है वहां स्पष्ट शब्दों में 'जिणपडिमाणं या अरिहन्त पडिमाणं' कहा है। मूर्ति के लिए कहीं भी चैत्य शब्द का प्रयोग नहीं है। मूर्ति के लिए पडिमा शब्द का प्रयोग किया गया है। पडिमा और चेइय शब्द भी अलग अलग हैं और इन का अर्थ भी जुदा जुदा है। चैत्य शब्द का जहां कहीं प्रयोग हुआ है वहां प्रायः ज्ञान या साधु के अर्थ में हुआ है। शान्त्याचार्य कृत बड़ी टीका में भी चैत्य शब्द का अर्थ उद्यान किया गया है। यहां प्रकरण से भी यही मालूम होता है कि राजा श्रेणिक वन में विहारयात्रा के लिए गया है। वह बाग नाना वृक्षों और लताओं से संकुल था। उसमें नाना प्रकार के पक्षी और पुष्प थे।

उद्यान का दर्शन और मुनि का दर्शन करके राजा को क्या हुआ सो शास्त्रकार कहते हैं—

तत्थ सो पासई साहुं, संजयं सुसमाहियं।
निसन्नं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइयं ॥ ४ ॥
तस्स रूवं तु पासित्ता, राइणो तम्मि संजए।
अच्चन्त परमो आसी, अउलो रूवविम्हओ ॥ ५ ॥
अहो वण्णो अहो रूवं, अहो अज्जस्स सोमया।
अहो खंति अहो मुत्ती, अहो भोगे असंगया ॥ ६ ॥

[illegible]

गाथा में कहा है पहले राजाने साधु को देखा है। अतः हम भी पहले साधु का अर्थ समझलें।

साधयति स्व पर कार्याणीति साधुः

जो अपना और दूसरों का काम साधता है वह साधु है। जिस प्रकार नदियाँ समुद्र की ओर जाती है मगर जाती हुई अपने आप पास के क्षेत्रों का सिंचन करती जाती है। उनका मुख्य उद्देश्य अपने आपको समुद्र में मिला देना है। मगर उनकी चेष्टाएं और क्रियाएं ऐसी है कि अपना काम साधते हुए दूसरों का भला हो जाता है। उनके पास पड़ने वाले प्रदेश हरे भरे और फल फूलों से संयुक्त हो जाते हैं। ठीक यही बात साधुओं के विषय में लागू पड़ती है। साधुओं का लक्ष्य अपना आत्म कल्याण करना है। अर्थात् अपने आप को परमात्मा रूप समुद्र में मिलाना है। मगर समुद्र मिलन रूप मुख्य कार्य के साथ, उनके आचरण से उनके आसपास रहने वाले और उनकी सोबत में आने वालों का बड़ा भला हो जाता है। साधु अपना मुख्य ध्येय त्याग कर दूसरों की भलाई करने में नहीं पड़ते किन्तु अपने साध्य की सिद्धि के साथ २ दूसरों का भी उपकार करते हैं। जिस प्रकार वृक्ष अपनी प्रकृति से ही फलते फूलते हैं दूसरों पर उपकार करने के लिए नहीं फलते फूलते। यह बात दूसरी है कि दूसरे उन का लाभ लेते हैं। उसी प्रकार साधु भी अपना काम साधते हुए दूसरों के उपकारी बन जाते हैं। उनके मन में यह भावना नहीं होती कि हम दूसरों की भलाई के लिए अमुक काम कर रहे हैं। उनकी स्वाभाविक क्रियाएं ही दूसरों के उपकार करने में निमित्त भूत बन जाती है। पत्थर या कुल्हाड़ी मारने वाले के लिए भी जैसे वृक्ष फल प्रदान करने में परहेज नहीं करता वैसे सन्त जन भी गाली देने वाले या बुराई करने वाले का उपकार करने में किसी प्रकार का भेद भाव नहीं रखते। ऐसा कभी नहीं करते कि अमुक आदमी ने हमारी बुराई की है अतः उसे हमारे व्याख्यान सुनने का अधिकार नहीं है। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' अपनी आत्मा के समान सब प्राणियों के साथ बर्ताव करते हैं।

अब प्रश्न यह है कि जब गाथा में साधु शब्द आ गया है तब संयति शब्द के प्रयोग की क्या आवश्यकता थी। टीकाकार इस बात का खुलासा करते हैं कि [illegible] साधन का [illegible] गृहस्थावास में रहते हुए गृहस्थ में भी हो सकती है। वह [illegible] [illegible] करता हुआ अपना और दूसरों का भला कर सकता है। [illegible] [illegible] करते हुए [illegible] को नहीं भूलता उसके लिए भी साधु शब्द का प्रयोग [illegible] है। गृहस्थ [illegible] [illegible] का [illegible] देखा जाता हुआ [illegible]

जनों का भी भरण पोषण कर सकता है। आप लोग केवल अपने कुटुम्बी जनों को अपनी दया मत प्रात प्रदान करो मगर दुःखी जनों के लिये भी अपनी पांखें फैलाये रहो। यदि आपने किसी दुःखी मनुष्य को दुतकार दिया तो आपको क्या समझना चाहिये। तब आप गृहस्थ साधु न रह जायेंगे। मेघ कुमार ने हाथी के भव में पशु होते हुए भी गरीब ससले को आश्रय दिया था। क्या आप तिर्यञ्च पशु से भी गये बीते बनेंगे। उस हाथी ने कितने शास्त्र और पोथियां पढ़ी थीं जिनके कारण उसमें इतनी उदारता आई थी। हाथी में बिना ग्रन्थ वाचन के भी उदारता आ गई और आपमें ग्रन्थ वाचन के होते हुए भी जरूरत मन्दों की जरूरत पूरी करने की उदारता नहीं आई यह आश्चर्य की बात है। आपमें बहुत से भाई बी. ए., एम. ए. आदि डिग्रियों और रायसाहिब, रायबहादुर आदि उपाधियों के धारक होते हुए भी पर दुःख भंजन करने की उदारता नहीं दिखाई देती।

मतलब कि गृहस्थोंमें भी चन्द लोग साधु हो सकते हैं। क्या श्रेणिक राजा ने उद्यान में ऐसे गृहस्थ साधु को देखा है? नहीं। इसी बात का खुलासा करने के लिये आगे संयति शब्द का प्रयोग किया गया। वे संयति थे। संयम के धारक थे। पूरी तरह से आत्मा का कल्याण साधने वाले थे। निरारंभी और निष्परिग्रही थे।

तीसरा सुसमाधिवन्त पद इस लिये दिया गया है कि बाह्य क्रियाओं का यथावत् पालन करके ढोंगी लोग भी संयति कहे जा सकते हैं। अथवा जिनका ऊपरी दिखावा सारा साधु के जैसा ही हो किन्तु अन्तःकरण में केवली प्ररूपित धर्म के प्रति सन्देह हो जैसे गोशालक और जामाली, वे सुसमाधिवन्त नहीं कहे जा सकते। वे उल्टे तत्त्व श्रद्धते थे। उनके मन में भ्रान्ति थी। अतः ऐसे साधुओं का व्यवच्छेद करने के लिए सुसमाधिवन्त पद दिया गया है। इन मुनि के मन में किसी प्रकार की भ्रान्ति न थी। इन की आत्मा समाधि में तल्लीन थी।

वे मुनि सुकुमार थे। सुकुमार का अर्थ है जो कामदेव को अच्छी तरह जीत ले. उनका शरीर कामदेव को भी जीतने वाला था। इसके साथ ही एक विशेषण 'सुहोइअं' और है। वे मुनि सुखो चित थे। उनका शरीर सुख में पला था। उन्होंने कभी दुःख या कष्ट नहीं पाया था। किसी आदमी ने तकलीफें झेली हुई हों तो उनकी छाया उसके शरीर पर थोड़े बहुत अंशों में रह जाती है। किन्तु पहले कष्ट सहा हुआ होने पर भी उनके शरीर

पर इस बात का कोई चिह्न नहीं था। सुखो चित का यह भी अर्थ होता है कि उनका शरीर सुख के योग्य था। वे सुख भोगने के योग्य रूपवान् थे।

आजकल गुणों की अपेक्षा रूप की कद्र ज्यादा की जाती है। इसीलिए लोग बाल रखाते हैं और तेल साबुन का उपयोग करते हैं। रूपवान होने का दिखावा करके अपना महत्त्व बढ़ाना चाहते हैं। हिन्दुओं के सिर पर रहने वाली चोटी—शिखा बाल रखाने के रूप में आगे आगई है स्त्रियों में भी लेडी फेशन घुस गई है। जब स्त्रियाँ लेडी बनेंगी तो उनके पतियों को भी साहब बनना होगा। स्त्रियों ने रूप को अपना अस्त्र मान रखा है। इसी अस्त्र के द्वारा वे पुरुष को अनेक प्रति मुग्ध करना चाहती हैं। वास्तविक रूप कैसा होता है इसका उन्हें पता नहीं होता। वास्तव में रूप का सम्बन्ध शरीर से नहीं है मगर हृदय से है। जिसका हृदय कलुषित हो उसका शरीर सौन्दर्य कैसा भी क्यों न हो चेहरा विकृत ही होगा। चेहरे पर मनोभावों का असर रहता है।

राजा श्रेणिक ने मुनि को देखकर आश्चर्य से कहा, अहो वर्ण और अहो रूप। यदि बाल सँवारने मात्र से ही रूप होता तो उन मुनि के न तो बाल सँवारे हुए थे और न अच्छे कपड़े ही थे। श्रेणिक जैसा व्यक्ति जो कि अनेक रत्नों का स्वामी और शृंगार शास्त्र पारंगत था रूप और वर्ण की प्रशंसा कर रहा है इस से मालूम होता है कि उन मुनि का वर्ण और रूप असाधारण थे। मुनि के शरीर पर किसी प्रकार की शृंगार सामग्री न थी फिर भी श्रेणिक ने इतनी प्रशंसा क्यों की इस बात पर विचार करिये। इस विषय में मैं अधिक न कह कर केवल इतना ही कहना चाहता हूं। आधुनिकसभ्यता और ऊपरी टापटीप दिखावे पर अवलम्बित है जब कि पुरातन भारतीय लोग हृदय की शुद्धी अशुद्धी के प्रमाण से सुरूपता कुरूपता मानते थे। मनोगत भावों का सुन्दरता पर गहरा असर पड़ता है। ब्रह्मचर्य पालन करने वाले की आंखों की तरफ देखिये। उसका चेहरा कैसा खिला हुआ और पुष्ट होगा। व्यभिचारी का सुन्दर रूप भी कुरूप मालूम पड़ता है। इस विषय का विशेष स्पष्टी करण सुदर्शन-चरित्र से होगा। अतः आप लोग ध्यान लगा कर सुनिये

सुदर्शन चरित्र

सिखा मंत्र नवकार वाला, मन में करता ध्यान।
उठत बैठत सोवत जागत, बस्ती और उद्यान॥

सुदर्शन को जो धन्यवाद मिल रहा है उसमें पूर्व जन्म के संस्कार भी कारण है। कोई काम एक जन्म में ही पूरा नहीं हो जाता मगर कभी कभी अनेक जन्म भी लग जाते हैं। गीता में कहा है—

अनेक जन्म संसिद्धिस्ततो याति परांगतिम्।

अनेक जन्मों के सुसंस्कारों के बाद आत्मा परागति–मोक्ष को पहुँचता है। जिस प्रकार कुंभकार के द्वारा मिट्टी और सुनार द्वारा सोने का सुधार होता है। उसी प्रकार आपका और हमारा समागम हुआ है उससे अच्छा सुधार होना चाहिए। मगर सुधार में यह शर्त रहनी चाहिए कि पहले खुद का सुधार हो। यदि सेठ खुद सुधरा हुआ न होता तो नाटकीय पात्रों की माफक उसके कथन का सुभग पर कोई असर न हो पाता। सेठ सुधरा हुआ था अतः उसने अपना कलेजा निकाल कर उस में रख दिया। कवियों के लिए कहा जाता है कि मानों कविता में हृदय निकाल कर रख दिया है। अन्तःकरण से निकली हुई कविता के लिए ही ऐसा कहा जाता है। जिस व्यक्ति में सुसस्कार पड़ गये हो वही दूसरों पर असर डाल सकता है।

आजकल व्याख्यान बड़े लम्बे लम्बे दिये जाते हैं मगर व्याख्यता स्वयं उन पर अमल नहीं करते। ऐसे व्याख्याताओं के व्याख्यान का क्या असर हो सकता है एक व्याख्याता के सम्बन्ध में सुना कि उनका व्याख्यान बहुत अच्छा था मगर व्याख्यान से आते ही लाओ २ की रट लगादी। कहने लगे अभी तक जलेबी नहीं आई दूध नहीं आया आदि ऐसी लेक्चर बाजी केवल नाटक का रूप धारण करती है। उसका असर कुछ नहीं होता।

सेठने सुभग को स्वातः करण से आत्मीय जन की माफक शिक्षा दी थी। सुद भी नवकार मंत्र पर पूर्ण श्रद्धा रखते थे। आजकल लोग नवकारमन्त्र का अभ्यास भूल गये हैं। आपका पैसा चला जाता है उसकी बड़ी चिन्ता करते हो मगर अमूल्य समय, की कुछ भी परवाह नहीं करते हो। अंग्रेज जाति के लोगों को रुपयों की अपेक्षा भी समय की चिन्ता ज्यादा रहती है। भगवान् महावीर ने तो क्षण २ की चिन्ता करने का फरमाया है।

समय गोयम ! मा पमाइये।

हे गौतम ! समय मात्र के लिए भी प्रमाद मत कर। भगवान् की इस शिक्षा को ध्यान में रखकर अपने मन को भगवन्नाम रूपी तार में पिरो दो। तार से अलग रहा हुआ मोती गिर जाता है। मन रूपी मोती को अलग रखोगे तो विमार्ग में चला जायगा।

लोगों को मैंने गाते सुना है कि जिस मुख पर राम का रंग नहीं है वह मुख नहीं देखना चाहिए। राम का रंग क्या है यह बात समझने की है। जो चोरी जारी आदि बुरे काम नहीं करता उसके मुख पर जो तेज है वह राम का रंग है। सदाचरण राम का रंग है। 'गई सो गई अब राख रही को' कहावत के अनुसार भूत कालीन बातों को भुलाकर वर्तमान को सुधारिये जिससे भविष्य उज्ज्वल बने। भगवद् भक्ति बिना एक सांस भी खाली न जाने दो। एक भक्त कहता है—

> दम पर दम हरि भज नहीं भरोसा दम का,
> एक दम में निकल जायगा दम आदम का।
> दम आवे न आवे इसकी आश मत कर तू,
> एक नाम साईं का जप हिरदे में धर तू॥
> नर इसी नाम से तरजा भवसागर तू,
> एक नाम साईं का जप हिरदे में धर तू।
> छल करता धोखे [illegible] जीने की खातिर तू,
> वह मालिक है जल्लाद [illegible] हो डर तू।
> यहाँ [illegible] दम दम का॥

आदम का अर्थ मनुष्य है। [illegible] 'दम पर दम हरिभज' [illegible] 'हरति दुष्कृतान् इति हरिः' [illegible] कहता है—

तो सुमिरन विन या कलिजुग में अवर नहीं आधारो।
मैं वारी जाउं तो सुमिरन पर दिन दिन प्रीति वधारो ॥

आप लोग दिन ब दिन परमात्मा का नाम भूलते जा रहे हो सो कहीं इस क
से तो नहीं भूल रहे हो कि परमात्मा का नाम लेने पर झूठ कपट का सेवन नहीं कि
जा सकेगा और इस प्रकार हमारा धंधा रोजगार बन्द होगया। अगर इसी विचार से
भुला रहे हो तो इसमें आपकी भूल है। जो परमात्मा का स्मरण भजन करेगा वह झूठा
हाथ में न लेगा फिर भी भूखों न मरेगा। यदि नाम लेने वाले भूखो मरते हों तो प्र
प्रभु नाम लेने के लिए कभी नहीं कहा जाता। यह बात जुदी है कि कभी आपकी क
हो। मगर भूखो नहीं मर सकते।

सुभग को नवकार मंत्र पर पूरी आस्था बैठ गई अतः वह उसीका जाप करता रहा
अब उसकी कसौटी का समय आता है। एक दिन सुभग जंगल में गाये लेकर गया।
वह जंगल में ही था कि बहुत जोरों की वर्षा शुरु होगई। वर्षा साधारण न थी मगर
घनघोर थी। बालक मन में विचार कर रहाथा कि इस प्रकार गरजना बरसना मेरी परीक्षा
के लिए है। भक्त लोग कहते हैं—

गरजि तरजि पाषाण बरसि पवि प्रीति परखि जिय जाने।
अधिक अधिक अनुराग उमंग उर पर पर परमिति पहिचाने॥

ये बादल गरजते हैं, पानी बरसता है, बिजली चमकती है, कभी गिरती भी है,
और ओले पड़ते हैं, यह सब परीक्षा के लिए है। हमने भजन किया है या नहीं और
भजन पर विश्वास है अथवा नहीं इस बात की जांच भी तो होनी चाहिए। पपीहा स्वाति
का ही पानी पीता है दूसरा नहीं। जब बादल गरजते हैं और बिजली चमकती है तब वह
बड़ा प्रसन्न होता है कि इस परीक्षा के बाद मुझे पानी मिलेगा। इसी प्रकार भक्त लोग भी
ऐसे अवसरों पर घबड़ाते नहीं मगर डटकर सामना करते हैं।

सुभग यही सोच रहा है कि आज मेरी परीक्षा है। वह चाहता तो मन में यह
सन्देह कर सकता था कि रोम रोम नवकार मंत्र का जाप करते रहने पर भी आज यह क्या

क्यों भगाई। किन्तु नहीं। सच्चे भक्त इस प्रकार की ओछी कल्पनाएं नहीं किया करते। वे ऐसा सोचते और करते हैं। आपको जोर की प्यास लगी हो और कोई आदमी गाली देता हुआ आपको पानी पिलाये, उस वक्त आप उसकी गाली की तरफ ध्यान दोगे या पानी पियेंगे? कोई छात्र परीक्षा देने के लिए परीक्षा हॉल में आये और उस समय यदि कोई उसको गाली गलौच दे तो वह गाली देने वाले से लड़ने बैठेगा या अपना प्रयोजन सिद्ध करेगा। बुद्धिमान् गाली गलौच का खयाल न करके अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। आप लोग भी दुःखों पर ध्यान न देकर इस संसार की परीक्षा में उत्तीर्ण होइये।

सुभग इस अवसर को अपने लिए कसौटी का समय मानकर गायें लेकर घर की ओर चल दिया। मार्ग नदी बहुत पूर से बह रही थी। नदी के दोनों किनारों से सटकर पानी बह रहा था। गायें तैर कर परले पार पहुंच गईं मगर सुभग न जा सका। वह उस पार खड़ा खड़ा सोचने लगा कि इस समय मुझे क्या करना चाहिए। अन्त में निश्चय किया कि जब मैं नवकार मंत्र जानता हूं तब डर किस बात का-। नदी का पूर कैसा भी हो मेरा साहस उससे कम नहीं है। वह नदी में कूदने के लिए वृक्ष पर चढ़ गया। इस विषय में अनेक तर्क वितर्क किये जा सकते हैं और उनका निवारण करने के लिए सामग्री भी है मगर कहने का समय नहीं है। अभी तो इतना ही ध्यान में रखिये कि वह नदी में कूदने के लिए वृक्ष पर चढ़ गया है। अब क्या होता है इसका बयान यथावसर किया जायगा।

राजकोट
१९—७—३६ का
व्याख्यान

साधुता का आदर्श

" पदम प्रभु पावन नाम तिहारो…………….. । "

प्रार्थना अनेक तरीकों से की जा सकती है। इस प्रार्थना में वह तरीका अख्तियार किया गया है जो विद्वान और मूर्ख, बलवान् और निर्बल, धनवान् और गरीब, राजा और प्रजा, पुरुष और स्त्री, साधु और गृहस्थ सब के लिए समान रूप से उपयोगी है। इस में कहा गया है, परमात्मा का नाम स्मरण करना सब के लिए सुलभ है।

संसार में जितने भी आस्तिक दर्शन हैं उनमें अन्य बातों के विषय में मत भेद हो सकता है मगर परमात्मा के नाम स्मरण की उपयोगिता के विषय में कोई मत भेद नहीं हो सकता है। हर एक दर्शन ने किसी न किसी रूप में परमात्मा के नाम स्मरण का महत्व स्वीकार किया है। जो निष्काम होकर प्रभुनाम का स्मरण करते हैं उनके शरीर में बहुत अलौकिक

गुण प्रकट हो जाते हैं। जो नाम स्मरण की बात सुन लेता है और सुनकर हँसी उड़ाता है उसके लिए नाम काम का नहीं है। नाम के साथ श्रद्धा होना बहुत जरूरी है।

नाम स्मरण में एक बात पर खास तौर से ध्यान रखना चाहिए। वह है नाम और नामी में अभिन्नता साधना। परमात्मा का नाम क्या लेना उसमें तल्लीन हो जाना चाहिए तब और परमात्मा में भेद न रहने पावे।

शास्त्र-चर्चा—

मुझे शास्त्र में भी परमात्मा की प्रार्थना ही जान पड़ती है। राजा श्रेणिक साधु की भेंट करने के उद्देश्य से घर से नहीं निकाला था। आत्म कल्याण का साधन कब किस को मिल जाता है इसका कोई निश्चय नहीं है। इधर श्रेणिकका हवा खाने के लिए बगीचे में आगमन हुआ और उधर घूमते फिरते कहीं से अनाथी मुनि भी पधार गये। यह कैसा सुयोग मिला। मानना पड़ेगा कि इसके पिछे कोई अदृश्य शक्ति काम कर रही थी। आप प्रत्यक्ष प्रमाण से इस बात को न मानो मगर अनुमान से आपको मानना ही पड़ेगा। आपके शरीर पर पहने हुए कपड़े किसने बनाये। किसने रूई पैदा की और किसने उसे कातकर सूत बनाया। फिर कपड़ा बुना गया। किसी दूकानदार से आपने खरीदा। आपके कपड़ों के लिए अनेक लोगों ने अनेक प्रयत्न किये इस में आपकी कोई गुप्त शक्ति काम कर रही थी। जिसे भाग्य नसीब या अदृष्ट कह लीजिये। हमारे लिए बिलायत में सामग्री तैय्यार होती है इस में भी हमारा अदृष्ट शामिल है। इस संसार में स्थूल कारणों के पीछे प्रत्येक काम में गुप्त शक्तियां भी काम करती हैं। इन शक्तियों को धर्म शास्त्र में अदृष्ट भाग्य, नसीब आदि नामों से पुकारा गया है।

जब फल सामने आ जाता है तब जमीन में दटा हुआ बीज मालूम नहीं देता फिर भी अनुमान से मानना ही पड़ता है कि बीज जरूर रहा होगा। अन्यथा फल कहां से होता। राजा श्रेणिक और अनाथी का संमिलन हुआ है अतः मानना पड़ेगा कि इसमें कोई अदृष्ट कारण है।

राजा श्रेणिक मुनि को देखकर उनकी ओर इस प्रकार आकर्षित हुआ जिस प्रकार लोहा चुम्बक की ओर होता है।

तस्स रूवं तु पासित्ता, राइणो तंमि संजये।
अच्चन्त परमो आसी, अउलो रूव विम्हिओ ॥५॥

कवि भी कहते हैं कि जब मनुष्य कामान्ध बन जाता है तब खराब वस्तु को भी अच्छी कहता है और मानता है। भर्तृहरि आगे कहते हैं कि स्त्रियों का मुख कफपित्त थूंक लार के घर के सिवाय अन्य क्या है? फिरभी कवियों ने उसको चन्द्रमा की उपमा दी है। इतना ही नहीं किन्तु स्त्री के वदन के सामने चन्द्रमा को भी तुच्छ माना है। कवियों ने स्त्री को हंसगामिनी और गजगामिनी रूप से वर्णित किया है। इस प्रकार स्त्री के अंग प्रत्यंगों का वर्णन करके कवियों ने स्त्री रूप को बहुत महत्त्व दिया है। इस पर से यह प्रश्न उठता है कि क्या स्त्रियों में ही रूप होता है, पुरुषों में नहीं। इस विषय में कवि कहते हैं कि अन्य बातों में पुरुष स्त्री की अपेक्षा ऊंचा हो सकता है मगर रूप के विषयमें उसका दर्जा नीचा ही है। स्त्रियों के रूप के सामने पुरुष अपने जीवन को पतंग के समान समर्पित कर देते हैं। स्त्रियों के रूप की मोहनी पुरुषों को अपने काबु में कर लेती है। रावण का सर्व नाश स्त्री के रूप ने ही किया है। तुकोजीराव होल्कर को राज्य छोड़ने के लिए स्त्री की मोहिनी ने ही विवश किया था। दामोदरलालजी महन्त एक वेश्या के पीछे ही खराब हुए हैं। रूप के गुलाम बनने और स्त्रियों में अधिक रूप है यह धारणा बांध लेने से वेश्याओं की वृद्धि हुई है और कुलांगनाओं को कष्ट भोगना पड़ता है।

क्या सचमुच स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक सुन्दर होती हैं। यदि अधिक सुन्दर होती तो उन्हें रूप वृद्धि के लिए कृत्रिम साधनों को इस्तेमाल करने की आवश्यकता होती। जिसके मुख दांत अच्छे हैं वह बनावटी दांत क्यों बिठावेगा। जिसकी आंखोंमें रोशनी है वह चश्मा क्यों लगावेगा। जिसके पांव अच्छे हैं वह रबर या लकड़ी के पैर क्यों लगावेगा। कृत्रिम साधनों का उपयोग तब किया जाता है जब असलियत में खामी हो। स्त्रियों में रूप की पूर्णता होती तो वे सौन्दर्य वृद्धि के लिए नकली साधनों का उपयोग नहीं करतीं। वे बनावटी साधनों से अपने को सजाती हैं इसी से मालूम होता है कि उनमें रूप की कमी है। स्त्रियों को शृंगार सामग्री बहुत प्रिय होती है अतः इसकी पूर्ति करके पुरुष उन्हें अपने काबू में करते हैं। दूसरी बात, प्राकृतिक रचना पर विचार करने से भी मालूम होता है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ सुन्दर नहीं होतीं। पुरुष अधिक सुन्दर होते हैं। मोहवश के कारण स्त्रियों को अधिक सुन्दर माना जाता है। मयूर और मयूरी को एक साथ बराबर रखकर देखा जाय तो यह बात स्पष्ट मालूम होगी कि मयूर अधिक सुन्दर होता है। मयूर की गर्दन और पुच्छ मयूरी से अधिक अच्छे होते हैं। मुर्गे और मुर्गी को [illegible]। जैसी कलगी मुर्गे के होती है वैसी मुर्गी के नहीं। [illegible]

ही अधिक सुन्दर होता है। सिंह की गर्दन पर जैसे बाल होते हैं वैसे सिंहनी की गर्दन पर नहीं होते। हरिण जैसे सींग हरिणी के नहीं होते। हाथी के समान सुन्दर दांत हथिनी के नहीं होते। पशुपक्षियों में भी मादा की अपेक्षा नर ही अधिक सुन्दर है। मनुष्य, सारी सृष्टि में उत्कृष्ट प्राणी है वह स्त्रियों की अपेक्षा कम सुन्दर कैसे हो सकता है। मोह के कारण अधिक सुन्दरता का आरोप किया गया है।

जो महापुरुष पहले स्त्रियों में अधिक सौन्दर्य मानते थे वे भी स्त्रियों के जाल से छूट निकलने के बाद यही कहते हैं कि स्त्रियों में क्या सौन्दर्य है जिस प्रकार मछली जाल में और सांड बंधन से अवसर मिलते ही भाग निकलते हैं इसी प्रकार ज्ञानी जन स्त्री की फंद में से निकल भागते हैं। भर्तृहरि भी पहले पिंगला को सर्वस्व मानते थे और उसके रूप को अच्छा समझते थे किन्तु बाद में उन्हें असलियत का पता लगा। तब वे उसे छोड़ कर चल दिए। कहा जाता है कि मजनू ने जिस लैला के पीछे अपने प्राण दिए थे वह देखने में भद्दी थी। वस्तुतः स्त्रियों में उतनी सुन्दरता नहीं है जितनी मानी जाती है।

मोहान्धता के कारण भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न प्रकार की स्त्री को सुन्दर माना जाता है। यूरोप में बिल्ली की तरह आंख वाली और भूरे बाल वाली स्त्री सुन्दर मानी जाती है। चीन में चपटी नाकवाली और सोमाली लेण्ड में जाड़े होठ वाली। यदि भारत में कोई स्त्री बिल्ली जैसी आंखों वाली, भूरे बाल वाली, चपटी नाक और जाड़े होठ वाली होतो लोग घृणा करने लगेंगे।

वास्तव में स्त्री शरीर में मल मूत्र कफ मांस और रक्त के सिवा अन्य क्या है। लेकिन काम वासना के वशीभूत होकर उसकी वास्तविकता को छिपाकर उसको चन्द्र, सूर्य हंस और गज आदि की उपमा दी जाती है इसी मोहान्धता के कारण साधु और साध्वियों ने चेलना और श्रेणिक का रूप निहार कर नियाणा किया था। जो कि भगवान् ने उनकी भावना जानकर निदान के भेद समझा कर प्रायश्चित्त देकर वापस उनको शुद्ध कर लिया था। मगर मोहान्धता ने एकबार साधुओं को भी नहीं छोड़ा।

श्रेणिक स्वयं रूपवान् था फिर भी मुनि का रूप देख कर अति आश्चर्य प्रकट करता है जिससे मालूम होता है कि वे मुनि महान् रूप सम्पन्न थे वस्त्राभूषण आदि न होने पर भी उन मुनि में किस का रूप था। रूप, केवल चमड़े में ही नहीं होता। रूप का सम्बन्ध हृदय शुद्धि के साथ है। हृदय में जो रूप होता है। वह चेहरे पर निकलता है। मुनि के

शरीर पर मुकुट कुण्डल आदि न थे। वस्त्र भी थे या नहीं इसका पता नहीं है। बैठे भी वृक्ष के नीचे थे। फिर भी रूपवान् थे। अतः स्वीकार करना पड़ेगा कि रूप हृदय में है।

श्रेणिक जैसे को भी रूपने आश्चर्य चकित कर दिया। इन मुनि का ऐसा कैसा रूप था। रूप की परीक्षा उसका विशेषज्ञ ही कर सकता है। हीरे की परीक्षा जौहरी ही कर सकता है। कहा जाता है कि कोहिनूर हीरा कृष्णा नदी के किनारे पर किसी किसान को मिला था। मिला किसान को मगर उसकी कीमत जौहरियों ने ही आँकी थी। राजा श्रेणिक हृदय का परीक्षक था अतः मुनि के रूप की सच्ची परीक्षा कर सकता था। उसने उनके हृदय को चेहरे और आँखों में देख लिया। यह बात आप भी जानते हैं कि दयालु और सदाचारी की आँखें कैसी होती हैं और व्यभिचारी की कैसी। आँखें देख कर ही आदमी के गुणावगुण का पता लग सकता है। पशु भी आँखें देख कर मनुष्य को समझ लेता है। देवता भी दयालु और सदाचारी के रूप पर मुग्ध हो जाते हैं। आप भी ऐसा रूप प्राप्त करने का यत्न करिये। कम से कम ऐसे रूपवान् की प्रशंसा तो अवश्य करियेगा। ऐसा करोगे तो भी कल्याण है।

सुदर्शन चरित्र

एक दिन जंगल से घर आता, नदिया आई पूर।
पेली तीर जाने को बालक, हुआ अति आतुर ॥ धन. ११ ॥
धर के ध्यान नवकार मंत्र का, कूद पड़ा जल धार।
खेर खूंट घुस गया उदर में, पीड़ा हुई अपार ॥ धन. १२ ॥
छोड़ा नहीं नवकार ध्यान को, तत्क्षण कर गया काल।
जिनदास घर नारी कूंखे, जन्मा सुन्दरलाल ॥ धन. १३ ॥

वृक्ष पर चढ़कर सुभग उछलती हुई नदी की तरंगे देखने लगा। देखकर मन में विचार किया कि वे मुनि नवकार मंत्र बोलकर आकाश में उड़ सके थे तो क्या मैं इस मंत्र के द्वारा नदी भी न लांघ सकूंगा? मुझे भी मंत्र याद है। सेठजी ने मंत्र का प्रभाव बताते हुए कहा भी था कि यह मन्त्र नौका के समान है। मैं इसकी सहायता से नदी पार करूं। देर करना ठीक नहीं। सेठजी घर पर मेरी प्रतीक्षा करते होंगे।

इस प्रकार सोचकर सुभग नवकार मंत्र गिनता हुआ नदी में कूद पड़ा। नदी में

एक सेर का खूंटा था। वह उसके पेट में घुस गया जिससे बेहद पीडा होने लगी। वह एकाग्रता से नवकार का ध्यान करने लगा। वेदना वृद्धि के साथ साथ उसके परिणाम भी उज्ज्वल होते जाते थे। भाइयों! मैंने स्वयं पीडा भोगी है अतः मुझे अनुभव है कि वेदना के समय कैसे भाव-परिणाम होते हैं। वेदना के समय मेरे परिणाम जैसे ऊंचे थे वैसे वेदना शान्त होने पर नहीं हुए। मैंने उस समय के अपने परिणाम नोट कर दिए थे मगर एक साधु ने नोट के कागजों को रद्दी समझ कर फाड़ दिये। कपासन चातुर्मास में भी फोड़े के कारण मुझे वेदना हुई थी उस समय भी मेरे परिणाम बहुत उत्तम रहे थे। उस एक घटना के विषय में मैंने एक ग्रन्थ तय्यार करवा दिया था। अब यदि ऐसा ग्रन्थ लिखना चाहूं तो शायद न लिखा सकूं। मुझे जब दाह की पीड़ा हुई थी तब युवाचार्य श्री गणेशीलालजी मेरे पास मौजूद थे। उस समय मैंने नाथ अनाथ का जैसा स्वरूप समझा वैसा कभी न समझा इससे मालूम होता है कि वेदना के समय परिणाम कितने उत्कृष्ट हो सकते हैं।

जो व्यक्ति परमात्मा का ध्यान करता है और कष्ट आने पर भी उसे नहीं छोड़ता वह महा पुरुष है। सुभग का ध्यान वृद्धिगत होने लगा। अन्त में खूंटे की पीड़ा से वह काल कर गया।

इस घटना के सम्बन्ध में यह प्रश्न होता है कि नवकारमंत्र के प्रभाव से जब शूली का सिंहासन तक हो जाता है फिर यहां नवकार मंत्र ने सुभग की रक्षा क्यों नहीं की। नवकार मंत्र की वह शक्ति कहां चली गई? इस प्रश्न का समाधान किये बिना लोगों को शान्ति नहीं मिल सकती। अतः समाधान करने के लिये प्रयत्न करता हूं।

गज सुकुमार मुनि के सिर पर अग्नि के अंगारे रखे गये थे। उन्होंने कौनसा अपराध किया था जिससे उनके सिर पर अंगारे रखे गये। [illegible] के लिए थे उन्होंने राजसी सुख छोड़ कर संयम धारण किया था। क्या संयम लेने से उनके सिर पर अग्नि रखी गई? क्या यह ठीक न्याय था [illegible]? कदापि नहीं। [illegible] उन्होंने यह सोचा कि मेरा कर्ज उतर रहा है। [illegible] [illegible] [illegible] करने की। [illegible] [illegible] [illegible]

भाइयों ! इन शंका करने वालों से मैं पूछता हूँ कि इस विषय में आपके विचार पर ध्यान दिया जाय या जिनपर गुजरी है उन सीता द्रौपदी और दमयन्ती के विचारों को देखा जाय ! वे सब अपने अपने पतियों को दोष नहीं देतीं वैसी हालत में आप वकालत करने वाले कौन होते हैं ! वे अपने पतियों को किस दृष्टि से देखती थीं। इस बात पर खयाल करके अपने दिमाग को ठीक कर लीजिये ।

सुभग के विषय में भी शंका ठीक नहीं है । यद्यपि वह मर गया मगर मरने पर उसे क्या मिला यह देखिये । आस्तिक लोग एक जन्म नहीं देखते । वे पुनर्जन्म पर विश्वास करते हैं। अतः उनके दिमाग में ऐसी शंका नहीं उठती ।

सुभग मर कर अर्हद्दासी की कूख में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। आगे क्या होता है यह बात यथावसर कही जायगी । विपत्ति पड़ने पर परमात्मा का स्मरण, संपत्ति है और विस्मरण विपत्ति है। यह बात याद रखेंगे तो कल्याण है ।

राजकोट
२०—७—३६ का
व्याख्यान

कमी रहे। काम धेनु के मिल जाने पर भेड़ या गधी के दूध की क्या कमी रहेगी। परमात्मा की प्रार्थना से सब कामनाएं पूर्ण हो जाती है विविध प्रकार की इच्छाएं मिटकर एक इच्छा रह जाती है। प्रार्थना करने का मकसद ही यह है कि आकाश के समान अनन्त इच्छाएं मिटकर एक ही इच्छा बाकी रह जाय वह इच्छा है अपने आपको परमात्मा में मिलादेने की भावना जो सच्चे दिलसे भगवान की प्रार्थना करते हैं उन की सब मनो कामनाएं पूर्ण हो जाती है अर्थात् कामनाएं कामना ही नहीं रह जाती।

प्रार्थना पूर्ण है और मैं अपूर्ण हूं अतः उसका समग्र विवेचन शक्य नहीं है। लेकिन प्रार्थना को चिन्तामणि रत्न और कल्पवृक्ष की उपमा दी जाती है उसका मैं कैसे वर्णन कर सकता हूं। पूर्ण का वर्णन मनुष्यों द्वारा नहीं हो सकता। भक्ति शास्त्र में मैने पढ़ा है कि—

सा तास्मिन परम प्रेम रूपा

अर्थात् मनुष्य में जो भक्ति है वह परम प्रेम रूप है। परम प्रेम में तल्लीन होजाना हृदय की सब कामनाओं को मिटा देना भक्ति है। प्रेम तल्लीन होजाने का अर्थ है आत्मा के प्रेम में तल्लीन होजाना। आत्मा सो परमात्मा। आत्मा के अतिरिक्त भौतिक वस्तुओं से दिल को खींच लेना और परमात्मा में अपने आपको जोड़ देना वास्तविक भक्ति है। वस्तु हमारे पास है मगर विवेक की जरूरत है। विवेक पूर्वक भक्ति की जाय कोई कमी न रहने पावे।

शास्त्र चर्चा–

भक्तियुक्त हृदय में कैसे विचार होते हैं, यह बात शास्त्र द्वारा बताता हूं। राजा श्रेणिक बुद्धिमान था। अपने मंत्रियों में वह सबसे बुद्धिमान था। विद्वान तथा कलावान् भी था। फिर भी वह उन मुनि के विषय में क्या कहता है ? अहो ! इनका वर्ण। अहो ! इनका रूप। इनके हृदय की [illegible], मुक्ति और भोगों से [illegible], [illegible]।

इन दो [illegible] के [illegible] [illegible] का [illegible] हुआ है। इन [illegible] [illegible] कि [illegible] है। इन मुनि का [illegible]। [illegible]।

[illegible]

निश्चय ही वह पानी के बरतन को लेना पसंद करेगा जब प्यास न हो तब इत्र को पसन्द करे यह दूसरी बात है। और पैसे होतो खरीदा भी जा सकता है। मगर पिपास के समय पानी ही पसंद किया जायगा। इत्र नहीं। किसी भूखे के सामने एक तरफ बाजरे की रोटी और दाल आये तथा दूसरी तरफ मिट्टी के बने केले आदि पदार्थ आये तो वह क्या लेना पसन्द करेगा। भूखा भोजन ही चाहेगा। उसी प्रकार श्रेणिक राजा उन मुनि के रूप के सामने दुनिया की सब वस्तुओं को तुच्छ मान रहा है। वह मान रहा है, इत्र और खिलौनों के समान अन्य सब तुच्छ है। अन्य रूप मेरी भूख प्यास नहीं मिटा सकते मगर मुनि का रूप मेरी मनोकामनाओं को पूरी करने वाला है। यह सोचकर ही वह कह रहा है अहो ! वर्ण और अहो ! रूप।

वर्ण और रूप में क्या अन्तर है ? शरीर के सुन्दर आकार के अनुसार जिसका रंग सुन्दर होता है उसे सुवर्ण कहा जाता है। उदाहरण के लिए सोने को समझिये। सोने को सुवर्ण कहा जाता है। यदि केवल अच्छे वर्ण अर्थात् रंग के कारण ही सोने को सुवर्ण कहा जाय तो अच्छा वर्ण पीतल का भी है। उसे सुवर्ण क्यों नहीं कहा जाता सोने में वर्ण के साथ दूसरी विशेषता भी है। सोने के परमाणुओं में यह विशेषता है कि यदि सोने को हजारों वर्षों तक जमीन में गाड़ कर रखा जाय और फिर बाहर निकाल कर तोला जाय तो उसका वजन पूरा उतरेगा। उसका वजन कम न होगा तथा उस पर जंग या कीट न चढ़ेगा। यह विशेषता पीतल में नहीं है। पीतल पांच दस वर्षों में ही बिगड़ जाता है, उस पर कीट चढ़ जाता है। सोने में ऐसी चिकास है कि वह सड़ता नहीं है। दूसरे वह तोल में भी बहुत भारी होता है। तीसरे उसके बारीक से बारीक तार निकाले जा सकते हैं।

राजा श्रेणिक अन्य लोगों के वर्ण की इनके साथ तुलना करके फिर कहता है अहो ! इनका वर्ण अनुपम है। दूसरों के वर्ण में गर्द या देरी से कीट लग सकता है मगर इन मुनि के वर्ण में धब्बा लगने की कोई सम्भावना नहीं है। मुनि के वर्ण में और अन्य के वर्ण में वही भेद है जो पीतल और सोने के वर्ण में है। मुनि सोने के समान थे। क्या मुनि को भी गाड़ रखने पर जंग न लगेगा ? क्या इनको काल न लगेगा ? इसका उत्तर यह है कि जो नग्न है उन्हें कौन पृथ्वी में गाड़ सकता है। सोना जड़ है अतः गाड़ा जाता है और आग पर गल भी जाता है। इनको न आग जला सकती है और न पवन हिला सकता है। इनका रूप देवों से भी श्रेष्ठ था क्योंकि देवों का रूप बिगड़ सकता है मगर इनका रूप बिगड़ सकता न।

अन्य लोग रूप के दास होते हैं मगर ये मुनि रूप के नाथ थे । राजा श्रेणिक मन में यह विचार कर रहा था कि हम लोग रूप के गुलाम हैं मगर ये रूप के नाथ हैं । इनकी आंखों में न अंजन है और न शरीर पर कोई आभूषण ही है फिरभी मेरा रूप इनके सामने तुच्छ है ।

आपके सामने कोई आदमी सोने की अंगूठी पहन कर आये तब आपको कोई ईर्षा न होगी यदि आपके हाथ में हीरे की अंगूठी हो । किन्तु यदि आपके हाथ में चांदी की अंगूठी हो तब आपको सोने की अंगूठी देखकर अपनी चांदी की अंगूठी तुच्छ मालूम देगी । इसी प्रकार राजा के जिस रूप को देखकर निर्ग्रन्थ साध्वियां भी ललचा गई थीं वह रूप मुनि के सामने तुच्छ मालूम दे रहा है । राजा में जो द्रव्य भाव रूप है वह विकारी है । किन्तु मुनि में जो द्रव्य-भाव-रूप है वह निर्विकारी है ।

आजकल लोग द्रव्य रूप के पीछे भाव रूप को भूल रहे हैं । अन्त में भाव रूप की ही शरण लेना पड़ेगा मगर अभी भूल हो रही है । भाव रूप के सामने द्रव्य रूप तुच्छ है । द्रव्य रूप हो और भाव रूप न हो तो उस द्रव्य रूप अर्थात् सौन्दर्य की कोई कद्र नहीं होती है । आज नदी के किनारे जंगल जाते हुए मैंने देखा कि एक ब्राह्मण मिट्टी के शंकर पार्वती, नाग गणेश आदि बड़ी कलापूर्ण रीति से बनाता है । लोग उससे खरीद कर दूसरे ही दिन उसको नदी की गोद में रख देते हैं । इसी प्रकार गनगौर को भी लोग खूब सजाते हैं और वस्त्राभूषण भी पहिनाते हैं मगर खेल हो जाने पर उसे पानी में फेंक दिया जाता है । राजा-रानियां भी गनगौर को पूजती हैं । गनगौर के पास खड़ी किसी जीवित स्त्री को राजा रानी नहीं पूजती । क्या इस से गनगौर की अपेक्षा जीवित स्त्री का मूल्य कम हो जाता है ? कदापि नहीं । गनगौर को नदी में फेंक दिया जाता है । जीवित स्त्री को नहीं । गनगौर में द्रव्य रूप ही है भाव रूप नहीं है अतः नदी में डाल दी जाती है । मगर स्त्री में द्रव्यरूप कुरूप भी हो तब भी भावरूप होने के कारण नदी में नहीं फेंकी जाती । यदि कोई स्त्री को नदी में डाल देवे तो वह अपराधी गिना जायगा । अपनी स्त्री को भी कोई नदी में नहीं डाल सकता । द्रव्यरूप पौद्गलिक है अतः नाशवान् है किन्तु भावरूप चेतनमय है अतः सदा शाश्वत है ।

वर्ण और रूप में क्या अन्तर है यह मूल प्रश्न अभी बाकी ही है । सोने में और उस की आकृति में जो अन्तर है वही वर्ण और रूप में है । सोना वही है किन्तु कुशल कारीगर सुंदर दागीने बनायेगा और अकुशल भद्दे बनायेगा । रूप अलग होने पर भी [illegible]

में अन्तर हो जाता है। रंग अच्छा हो किन्तु यदि कान नाक आंख आदि अंग सुन्दर न होवें उस दशा में रंग अच्छा मालूम न होगा। रंग के साथ आकृति अच्छी हो तभी शोभा है। मुनि का रंग भी अच्छा था और आकृति भी सुन्दर।

एक आदमी की आंखें बड़ी और एक की छोटी होती है। नाप पर यह अन्तर नहीं मालूम होता। फिरभी बड़ी दिव्य प्याले जैसी आंखों वाले में और छोटी आंखों वाले में बड़ा अन्तर होता है। सीता के स्वयम्वर में बड़े बड़े राजा लोग बैठे हुए थे। किन्तु सीता ने राम ही को पसन्द किया। उसे राम की आंखों में कोई विशेषता नज़र आई थी। वह विशेषता थी उनकी अनुत्सुकता जब कि अन्य राजाओं की आंखें सीता के लिए बड़ी उत्सुक हो रही थीं रामचन्द्र उदासीन-अनासक्त भाव से बैठे थे जब किसी राजा ने धनुष न उठाया और जनक ने यह कह दिया कि— 'वीर विहीन मही मैं जानी' तब लक्ष्मण ने राम से कहा कि आपकी उपस्थिति में पृथ्वी वीर विहीन कही जा रही है! आपकी आज्ञा हो तो धनुष क्या चीज़ है ब्रह्माण्ड भी उठा लूं। लक्ष्मण के ऐसा कहने पर भी धीर गम्भीर राम शान्ति पूर्वक बैठे रहे। और कहा किसी को यह धनुष उठाना हो वह उठा सकता है। बादमें कोई यह न कहदे कि मेरी [illegible] जब किसी ने न उठाया तो राम ने धनुष्य उठाया और सीताका वरण किया रामकी आंखें वैसी ही थी। उनमें कामुकता या विषय विकार का लालच न था। यही तो सब का यही सौन्दर्य है।

यदि आप लोग भी ऐसे बनो तो इन्द्र भी आपका गुलाम हो जायगा। आप! [illegible] के गुलाम मत बनिये। स्वतंत्र बनने की कोशिश करिये। आपको [illegible] बनने लिये ही [illegible] सुनाये जाते हैं अतः स्वतंत्र बनिये।

जैसे एक पुस्तक में कहा है कि [illegible] आदि के अनेक गुण हैं। मगर सबसे बड़ा गुण [illegible] है। [illegible] गुण के विरुद्ध विद्रोह करने वाला [illegible] है। [illegible] नहीं है कि वह [illegible] का विद्रोह कर सके।

[illegible] सामना कर सकते हैं [illegible] किस प्रकार [illegible] रूप का सामना करते हैं यह बात बहुत लम्बी है अतः अभी इसका [illegible] कहता हूं कि [illegible] मुनि को देख कर [illegible] है। आगे के [illegible]

कहने का आशय यह है कि जिसका शरीर पर से मोह उतर गया हो वह परमात्मा का नाम लेने योग्य है। शूर से मतलब यहाँ उस योद्धा से नहीं है जो रण संग्राम में अस्त्र शस्त्रों द्वारा शत्रु सेना का विनाश करता है। यहां शूर का अर्थ है, जो काम क्रोध लोभ मोह आदि अन्तरंग शत्रुओं पर विजय करता हो। आध्यात्मिक मार्ग में बुद्धिवाद से काम नहीं चल सकता। श्रद्धा प्रधान है बुद्धि मनुष्य को भ्रम जाल में फंसा देती है। श्रद्धा में [illegible] है आनन्द है।

इसलिए नवकार मंत्र बतलाया। यह सेठ का दिया हुआ प्रसाद था। भाव शुद्धि के लिए दिया गया यह दान कुछ कम महत्व का न था। आपलोग धन लुट जाने के डर से दान नहीं देते हैं। इस ओर कम रुचि रखते हैं। हमारी साधु मार्गी समाज में जैसी कृपणता है वैसी शायद ही किसी समाज में हो। अन्य समाज वाले अनेक तरीकों से दान देते हैं मगर हमारा समाज तो दान को भूल ही गया है। दान देने से धन लुट जाने का भय निर्मूल है सेठ ने नवकार मंत्र का दान देकर अपने यहां पुत्र की कमी को पूरा किया।

रात को सेठानी सो रही थी। उसने स्वप्न में कल्पवृक्ष देखा। देखते ही वह जाग उठी और विचार करने लगी कि आज ही सुभग खो गया और आज ही यह स्वप्न क्यों आया। आज मुझे उसका गहरा रंज है। फिर भी ऐसा उत्तम स्वप्न आया है, इस से प्राप्ति का कोई विशेष संकेत मालूम पड़ता है। सेठानी उठकर धीरे २ अपने पति के कमरे में गई।

आजकल राग भाव की वृद्धि होने से न मालूम कितने खराब रिवाज चालू है। लेकिन प्राचीन साहित्य देखने से मालूम होता है पति पत्नी जुदा २ कमरों में सोते थे; एक कमरे में न सोते थे। अलग अलग कमरों में सोने की बात तो दूर रही अलग अलग शय्याओं में सोना भी दुश्वार हो गया है। इसी कारण से अनेक व्याधियाँ समाज में पैदा हो रही है [illegible] रहने से वह विवेक बिना नहीं रह सकता।

सेठानी के आने से सेठने आगमन का कारण पूछा। आज सुभग खो गया है अतः आप को उसकी चिन्ता होगी मगर आप के चेहरे पर खुशी की रेखा नजर आ-रही है। क्या विशेष बात है, कहिये। सेठानी ने उत्तर दिया कि मैंने स्वप्न में कल्प वृक्ष

देखा है। सेठने कहा, आज ही सुभग मरा है और आज ही यह शुभ स्वप्न आया। अतः तुम्हारी पुत्र विषयक मनोकामना पूरी होती हुई मालूम पड़ती है। सुभग करा कुछ ही था। जब मैंने नदी में से निकाल कर उसका शव जलाया तब मालूम हुआ कि वह सचमुच एक तेजस्वी बालक था। उसके मुख पर ग्लानि का कोई चिह्न न था। उसका चेहरा प्रसन्न था। जैसा वह सदा रहता था वैसा मृत्यु अवस्था में भी था। मेरा अनुमान है कि वही आप के गर्भ में अवतरा है।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' के अनुसार सेठानी को दोहद अच्छे अच्छे उत्पन्न हुए। सेठजी ने अपना खजाना दान के लिए खोल दिया। **'जब कर्मपुत्र ही घर में आया है तब संग्रह क्यों कर रक्खूं'** सेठजी ने निश्चय किया। साधारण लोग पुत्र होने पर दुगुने जोश से धन सञ्चय किया करते हैं। सेठजी ने इससे विपरीत आचरण किया। आगे के भाव यथावसर कहे जायेंगे।

राजकोट
२०—७—३६ का
व्याख्यान

किन्तु यदि इस साढ़े तीन मात्रा वाले ऊँकार की एक आध मात्रा भी हटा दी जाय अथवा इधर उधर करदी जाय तो अर्थ का अनर्थ हो जाय। सब मात्राओं के सम्बन्ध से ही पूरा अर्थ निकलता है।

जिस प्रकार ऊँ में ऊ और बिन्दी का परस्पर सम्बन्ध है उसी प्रकार जगत् और जगत् शिरोमणि परमात्मा में भी परस्पर सम्बन्ध है। जगत् शिरोमणि हमारे निकट से निकट है फिर भी वह दूर माना जाता है अतः दूर पड़ गया है। 'आत्मा से परमात्मा दूर है' इस मान्यता के कारण ही जीव अनादि काल से इस संसार चक्र में अरघट्ट चक्र वत् घूम रहा है। परमात्मा को समीप लाने के लिए जगत् के सब जीवों पर प्रेम भाव रखना चाहिए। उनको अपनी आत्मा के समान मानना और तदनुसार आचरण करना चाहिए। ऊँ पर जैसे बिन्दी शिरोमणि है उसी प्रकार जगत् पर परमात्मा शिरोमणि है। सब प्राणी मित्रवत् दिखाई देने लगें तब समझना चाहिए कि परमात्मा सन्निकट है। यह नहीं हो सकता कि परमात्मा को तो आदर दो और जिस जगत् का वह शिरोमणि है उसका अनादर करो। परमात्मा से प्रेम करना और जगत् से वैर रखना परस्पर विरोधी वर्तन है। बिना जगत् जीवों के साथ प्रेम किये परमात्मा से प्रेम नहीं किया जा सकता। बिन्दी के बिना ऊ व्यर्थ है और ऊ के बिना बिन्दी व्यर्थ है। दोनों के मेल में सार्थकता है। तद्वत् परमात्मा और जगत् का मेल ही सार्थक है। परमात्मा को प्राप्त करने के लिए जगत् के प्राणियों की सेवा करते रहो। सेवा करते हुए परमात्मा को सदा हृदय में रखना चाहिए।

शास्त्र चर्चा–

राजा श्रेणिक ने मुनि को देखकर कहा—

> अहो ! वण्णो, अहो ! रूवं, अहो अज्जस्स सोमया।
> अहो खन्ति अहो मुत्ति, अहो भोगे असंगया ॥ ६ ॥
> तस्स पाए उ वन्दित्ता, काऊण य पयाहिणं।
> नाइदूरमणासन्ने, पंजली पडिपुच्छई ॥ ७ ॥

यह सिद्धान्त का पाठ है। [illegible] के [illegible] पूछा है। [illegible] का अर्थ किया गया है। [illegible] शब्द का [illegible] रूप में बहुत [illegible] किया गया है। [illegible] है। [illegible] के अर्थ होते हैं, [illegible]

इन्द्रिय वस्तु दिख जाती है अतः लोग उनके पीछे पड़े हैं । कामिनी के संसर्ग से भी दूर रहते हैं । कामिनी के मोह में फस जाने से भी भयंकर हानियाँ होती हैं । कामिनी के लिए भी जगत् में बड़ी मारामारी होती है । लोग पैसे देकर भी कामिनी को खरीदते हैं । साधु के लिए कनक और कामिनी सर्वथा वर्जनीय है ।

आज कल लोग साधु का नाम धराकर भी ज्ञान खातों के नाम से श्रावकों के पास रुपये रखाते हैं और कहते हैं कि ज्ञान के प्रचार के लिए दलाली करने में क्या हर्ज है । वे श्रावकों से अपने मन मुताबिक खर्च करवाते हैं पैसे पर ममत्व भाव रखते हैं । श्रावक मानो उनके मुनीम हुए । जब उनका आर्डर होता है कि अमुक पंडित या व्यक्ति को इतनी तनख्वाह दे दो, दे दी जाती है । पैसे किसी के पास रहें, पैसे के उपयोग के लिए आज्ञा देने वाले परिग्रह धारी गिने जायेंगे । वे धर्म आर्य नहीं कहे जा सकते ।

राजा श्रेणिक के मनोभाव बताने में गणधरों ने कमाल किया है श्रेणिक राजा कहता है अहो ! इन मुनि में कितनी सौम्यता है सौम्यता का अर्थ समझिये । चन्द्रमा के सामने नजर करके चाहे कितनी देर तक देखो आप आँखों को नुकसान न होगा बल्कि लाभ होगा । उसमें गर्मी के पुद्गल हैं ही नहीं । उसे रस सागर भी कहते हैं । समस्त विश्व में रस प्रदान करने वाला चन्द्र ही है । औषधीश भी इसका नाम है । सूर्य का नाम आतप है और चन्द्र का उद्योत । चन्द्रवत् वे मुनि भी सौम्य थे । उन्हें कोई देखता ही रहे उसकी तृप्ति भरती न थी ।

आधुनिक वैज्ञानिक और प्राचीन शास्त्रियों का मत है कि चन्द्रमा स्वयं प्रकाशित नहीं होता है । सूर्य के प्रकाश से वह प्रकाशित होता है । किन्तु जैन शास्त्रों में सूर्य और चन्द्रमा दोनों को स्वतन्त्र माना गया है । सूर्य का नाम आतप और चन्द्र का उद्योत है । चन्द्र में उद्योत है और सूर्य में नहीं । दोनों का सम्बन्ध नहीं है । यदि चन्द्र में सूर्य के कारण प्रकाश होने की शक्ति है तो दिन में चन्द्रमा प्रकाशित क्यों नहीं होता । जब कि निकट में सूर्य [illegible] है । [illegible] चन्द्र सूर्य [illegible] है तब चन्द्रमा [illegible] है । [illegible] सूर्य [illegible] है [illegible] दिन में चन्द्र पर सूर्य की [illegible] [illegible] । [illegible] है कि चन्द्र में सूर्य का प्रकाश नहीं [illegible] । [illegible] है ।

अतः उसे अमर मनना चाहिए। आत्मा कभी यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि मैं न रहूँगा यदि न रहने का विचार भी करता है तो केवल शरीर के न रहने का करता है। उस वक्त भी विचार करने वाला आत्मा साक्षी भूत रहता ही है।

आत्मा अमर है। जैसे वस्त्र बदले जाते हैं वैसे शरीरभी बदले जाते हैं। आप दीपक और शरीर को न देखिये मगर उनमें रहे हुए आत्मा का खयाल करिये। आत्मा के सुधार में सब सुधार समाजाता है। आज शरीर के सामने आत्मा को भुलाया जा रहा है। दारू मांस का सेवन और वर कन्या विक्रय इसी बात से बढ़े हैं। जिसका वर्तमान सुधर जाता है उसका भविष्य सुधरा हुआ ही है। अर्थात् जिसका यह लोक सुधर गया उसका परलोक भी सुधर गया समझना चाहिए।

इस विषय में पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज एक बात कहा करते थे। एक बुढ़िया का घर स्मशान के मार्ग पर था। उसके घर के सामने होकर ही मुर्दे ले जाये जाते थे। वह बुढ़िया धार्मिक खयालात की थी। अतः धर्म वार्ता सुनने के लिए कोई न कोई उसके पास बैठा ही रहता था। जब कोई मुर्दा ले जाया जाता देखती तब वह कहती, यह जीव स्वर्ग को गया है। कभी कहती यह नरक में गया है। उसके पास वाले पूछते, माता! तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि अमुक स्वर्ग को गया है या नरक में। बुढ़िया उत्तर देती, भाई! मैंने देखा तो नहीं किन्तु अनुमान करती हूँ कि यह स्वर्ग अथवा नरक में गया है। मुर्दे को ले जाने वाले लोगों की आपसी बातें सुनकर मैं अनुमान लगाती हूं। जब लोग यह कहते जाते हैं कि अहो! यह कितना पर उपकारी और भलाआदमी था, मैं उसके स्वर्ग जाने की कल्पना करती हूं। ऐसा उपकारी आदमी स्वर्ग न जायगा तो कौन जायगा।

लोग जिस बात की निन्दा किया करते हैं वह न करना और जिसकी प्रशंसा किया करते हैं, वह करना यही तो स्वर्ग का मार्ग है। रामदास ने कहा—

" जनी निन्दति सर्व सोड़ून दयावा,
जनी वन्दति सर्व भावें करावा "।

अर्थात् लोग जिस काम की निन्दा करें वह छोड़ देना और जिसकी प्रशंसा करें वह सर्व भाव से करना चाहिए। यही स्वर्ग का मार्ग है।

मान लीजिये एक सोनार के हाथ में सोने का डला है। यहां सोना वाच्यार्थ है। लेकिन सोनार कहता है कि मैं इस सोने के डले के जेवर बनाऊंगा। सुनार का यह कहना लक्ष्यार्थ है। सोने में जेवर रूप बनने की योग्यता है। सोनार द्वारा जेवर बनाने की बात सोचना लक्ष्यार्थ है। कुमार और स्त्री मिट्टी का ढेला तथा आटे का पिंड लेकर बैठे हैं। मिट्टी का ढेला और आटे का पिंड वाच्यार्थ हैं। किन्तु कुमार ने घड़े बनाने और स्त्री ने फुलके बनाने का मन में संकल्प कर रखा है यह संकल्प लक्ष्यार्थ है।

आत्मा अभी वाच्यार्थ में है जब वह परमात्मा बन जायगा तब लक्ष्यार्थ हो जायगा। सोने के आभूषण, मिट्टी के बर्तन आटे के फुलके बन जाना लक्ष्यार्थ सिद्ध हो जाना है। इसी प्रकार आत्मा से परमात्मा बन जाना लक्ष्यार्थ सिद्ध है। हम अभी वाच्यार्थ में परमात्मा हैं लक्ष्यार्थ में नहीं। आत्मा में परमात्मा बनने की योग्यता व शक्ति है यह बात ज्ञानीजन अपने अनुभव से कहते हैं। अतः आत्मा को अपना लक्ष्यार्थ न भूलना चाहिए। यदि स्त्री आटे का पिंड लेकर बैठी ही रहे तो लोग उसे मूर्ख बतायेंगे। किन्तु बुद्धिमान होने का दावा करने वाले मनुष्य अनादि काल से आत्मा को लिए बैठे हैं, परमात्मा बनने की क्रिया नहीं करते, यह कितने आश्चर्य की बात है।

व्यवहार के कामों में आप लोग वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ को नहीं भूले हैं। परमार्थ के काम में ही भूल हो रही है। अतः इस बात पर गौर करना चाहिए। आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध वही है जो मिट्टी और घड़े का, सोने और उसके बने आभूषणों का, आटे के पिंड और उसकी बनी रोटियों का है। आत्मा और परमात्मा के बीच में जो भाड़ी टाटी है उसे दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। वह टाटी है, आत्मा की परमात्मा से विमुख दृष्टि। आत्माकी दृष्टि परमात्मा की ओर नहीं है किन्तु विषय वासना की ओर है। आवरणों को दूर करने से आत्मा और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

यह बात अब शास्त्र द्वारा समझाता हूँ। राजा श्रेणिक वाच्यार्थ के अनुसार ही लक्ष्यार्थ का दर्शन कर रहा है। वह देख रहा है कि ये मुनि जैसे हैं इनका लक्ष्यार्थ भी वैसा ही है। यह देखकर वह मुनि के लक्ष्यार्थ का ध्यान कर रहा है। श्री अनुयोग द्वार सूत्र में कहा है कि जो जिसका ध्यान करता है वह ध्यान करने वाला भी वैसा ही हो जाता है। गीता में भी कहा है कि 'यो यच्छ्रद्धः स एव सः' जो जिस पर श्रद्धा करता है वह वैसा ही बन जाता है। अनुयोग द्वार में शब्दादि तीन नयों के अनुसार अनाज नापने की

लकड़ी आदि से बनी पाहिली को पाहिली नहीं कहा किन्तु पाहिली बनाने वाले के उपयोग को पाहिली कहा है। श्रेणिक मुनि के लक्ष्यार्थ का ध्यान करके स्वयं वैसा बन रहा है। मुनि को देखकर वह कहता है—

अहो ! वण्णो अहो ! रूवं, अहो अज्जस्स सोमया ।
अहो खंति अहो मुत्ति, अहो भोगे असंगया ॥ ६ ॥
तस्स पाये उ वन्दित्ता, काऊण य पयाहिणं ।
नाइदूर मणासन्ने, पंजली पडिपुच्छइ ॥ ७ ॥

अर्थ— अहा ! इनका वर्ण, अहा ! इनका रूप, अहा ! इन आर्य की सौम्यता, अहो इनकी क्षमा, अहो इनकी मुक्ति, अहो इनकी भोगों में असंगतता। अहो शब्द परम आश्चर्य का द्योतक है। इन मुनि के वर्ण रूप आदि को देखकर राजा बड़ा हैरान था। ६। उन मुनि के पैरों में वन्दन करके और उनकी प्रदक्षिणा करके, न अति दूर न अति संनिकट बैठ कर हाथ जोड़ कर प्रश्न पूछता है।

बहुत से व्यक्ति मोह या भक्तवश वर्णन करने में मर्यादा का अतिरेक कर जाते हैं। अतिशयोक्ति से काम लेते हैं। कवि लोगों ने स्त्री के रूप सौन्दर्य का वर्णन करने में अतिशयोक्ति का बहुत उपयोग किया है। यहां तक कह डाला है कि कलङ्क युक्त बेचारा चन्द्रमा स्त्री के मुख की क्या समता कर सकता है। अपना मुख छिपाने के लिए ही वह दिन को कहीं छिपा रहता है और रात होने पर प्रकट होता है, मोहान्धता के वशीभूत होकर वस्तुओं को देखने से उनका वास्तविक दर्शन नहीं हो सकता।

राजा श्रेणिक बिना किसी प्रकार की लाग लपेट के सच्चे दिल से उन मुनि के रूप सौन्दर्य और क्षमादि गुणों का वर्णन कर रहा है। अतिशयोक्ति का लवलेश भी नहीं है। वह सोच रहा है चन्द्र की किरणें अपनी सौम्यता से कमलिनी को विकसित कर सकती हैं तथा वनस्पति को रस दे सकती हैं मगर आत्मा को विकसित नहीं कर सकतीं। इन मुनि की सौम्यता आत्मा को विकसित करने वाली है। कैसा भी क्रोधी लोभी और पापाचारी व्यक्ति इनके सामने आवे, इनकी आत्मिक शान्ति की किरणों से उसका कषाय शान्त हो जायगा। मेरे खुद के हृदय का [illegible] इनके देखने देखते ही मिट गया है। अतः मैं इनकी सौम्यता की प्रशंसा करता हूं।

सौम्यता के समान क्षमा का भी राजा श्रेणिक ने बहुत बखान किया। मुनि के चेहरे की शान्त मुद्रा देख कर राजा ने उनको अति क्षमाशील कहा है। आज कल लोग क्षमा का अर्थ डरपोक पन करते हैं। यह उनकी भूल है। 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' क्षमा बहादुर का भूषण है। कायर की क्षमा दीनता गिनी जायगी। एक उदाहरण से यह बात समझाना चाहता हूं।

तीन आदमी साथ साथ बाजार जा रहे थे। बाजार में एक बदमाश ने उन तीनों से कहा और दुष्टों! बेवकूफों कहां जा रहे हो? तीनों में से एक ने मन में यह सोचकर चुप्पी साधली कि यह आदमी बड़ा तगड़ा है इससे मैं मुकाबला न कर सकूंगा। दूसरे ने उसका सामना किया और डबल गालियां दे कर उसे दबा दिया। तीसरे ने सोचा ऐसे ना समझ आदमी की बातों का उत्तर देना ठीक नहीं है। इसने मुझे दुष्ट और बेवकूफ कहा है सो कहीं ये दोनों दुर्गुण मेरे में तो नहीं हैं'। वह बदला लेने की कल्पना भी नहीं करता। वह तो अपने हृदय को टटोलता है।

पहले आदमी द्वारा गाली देने वाले से बदला न लेना कायरता है। क्योंकि उसके मन में गाली देने की और बदला लेने की भावना विद्यमान है मगर सामने वाले से डर कर अपनी कमजोरी के कारण गाली नहीं देता है। ऐसे आदमी कभी २ यों भी कह देते हैं हमको, दुष्टों के साथ कौन कुश्ता करे। कीचड़ में पत्थर डालने से अपने ही छींटे उड़ेंगे। दर असल ऐसे आदमियों की क्षमा के पीछे कायरता निवास करती है अत यह क्षमा क्षमा नहीं किन्तु कायरता गिनी जायगी। मुकाबला करने की शक्ति न होने से मुकाबला नहीं किया गया है। शक्ति होती तो अवश्य बदला लिया जाता।

दूसरे आदमी ने व्यावहारिक दृष्टि से अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। मगर इस प्रकार कर्त्तव्य पालन में कभी कभी बड़ा अनर्थ पैदा हो सकता है। गाली देने वाले को गाली देने से हाथा पाई की नौबत पहुंच जाती है। हाथा पाई से दंगा दण्डी और दंगा से खून तक बात आ जाती है फिर मुकदमा बाजी होती है और वर्षों तक वैर भाव बढ़ता जाता है।

तीसरे आदमी की क्षमा वास्तविक क्षमा है। गाली देने वाले ने अपना शस्त्र फेंका किन्तु इस व्यक्ति ने उसे ग्रहण नहीं किया और शस्त्र फेंकने वाले के सम्बन्ध में किंचित् भी आवेश किए बिना अपना हृदय टटोलना शुरू कर दिया कि मुझ में दुष्टता और बेवकूफी

राजा श्रेणिक ने मुनि के साथ जिस प्रकार अपना सम्बन्ध जोड़ लिया था उसी प्रकार आप लोग भी साधु संतों से अपना सम्बन्ध जोड़िये। आप रेल का निर्माण नहीं कर सकते मगर उसमें बैठते जरूर हो। आप स्वयं क्षमाशील और निर्लोभी नहीं बन सकते तो कम से कम इन गुणों के धारक साधुओं से सम्बन्ध तो अवश्य जोड़िये। पावर केवल एंजिन में होता है मगर अन्य डिब्बों के आंकड़े एंजिन से जुड़े रहते हैं अतः वे भी उसके पीछे पीछे खिंचे चले जाते हैं। और निर्दिष्ट स्टेशन तक पहुँच जाते हैं। आप भी महात्मा लोगों के आंकड़े से अपना आंकड़ा जोड़ दोगे तो कल्याण हो जायगा। अनाथी मुनि के साथ सम्बन्ध करने के कारण श्रेणिक ने तीर्थंकर गोत्र बांध लिया था।

राजा श्रेणिक क्षत्रिय था। वह प्रसन्न होकर कोरी वाहवाही करने वाला न था। जब उसने मुनि के गुण जान लिए तब वह उन्हें नमन करने के लिए उद्यत हो गया। वास्तव में गुण जाने बिना नमन करने का कोई अर्थ नहीं है। केवल हाड़ ही न देखने चाहिए गुण भी देखने चाहिए। जिस में गुण न हों उसको नमन करना अनुचित है। राजा ने पहले गुण जाने। तदनन्तर गुणों की कद्र करने के लिए नमन करने का विचार किया किसी बात को जान लेना मात्र ही कर्तव्य की इति श्री नहीं हो जाती। भारत की राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के लिये कहा जाता है कि पहले उसमें केवल लेक्चर बाजी ही होती थी। अब यह अनुभव किया गया कि केवल भाषण देदेना कोई वजन नहीं रखता, रचनात्मक कार्य प्रारंभ किये बिना केवल भाषण देना गुनगुनाना है।

गुनगुनाना दो प्रकार का होता है। एक साधारण मक्खी गुनगुनाती है, दूसरी शहद की मक्खी। साधारण मक्खी गुनगुनाकर इधर उधर से गन्दगी लाकर भोजन पर छोड़ती है और रोग उत्पन्न करती है। मगर शहद की मक्खी का गुनगुनाना इससे भिन्न है वह फूलों पर जाकर गुनगुनाती है उन से रस ग्रहण करती है। एक गुनगुन रोग फैलाता है, दूसरा शहद पैदा करता है। वैद्य लोगों का मत है कि शहद के बराबर कोई चीज़ नहीं है। [illegible] है। गुनगुनाना भी तो ऐसा गुनगुनाना कि जिससे कुछ निर्माण हो।

मक्खी [illegible] देकर दूसरों के रोग उत्पन्न भी किए जा सकते हैं और गुण ग्रह- [illegible] के [illegible] फैलाने वाले मत बनो किन्तु शहद की मक्खी के [illegible] नहीं के न रहोगे।

न खुदा ही मिला न विसाल सनम, न इधर के रहे न उधर के सनम।

कोरा निन्दक या आलोचक, न अपना भला कर सकता, न दुनिया का। उन के लिए यह कहावत लागू होती है—'धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का' ऐसे गुबरैल की मक्खी के समान लोगों की निन्दा करते हुए व्यर्थ गुनगुनाहट किया करते हैं और चारों ओर निन्दा की बीमारी फैलाते हैं। अतः बकवास करना छोड़ देना चाहिए। और यदि बकवास न छोड़ सकते हो तो शहद की मक्खी के समान गुनगुनाहट के साथ कुछ उपयोगी कार्य करो।

सुदर्शन चरित्र—

कर महोत्सव दिया नाम सुदर्शन, वर्त्या मंगलाचार।
घर घर हर्ष बधावना रे, पुर में जय जयकार ॥ १४ ॥

चरित्र सुनाने का उद्देश्य धर्मरक्षा के साथ ज्ञान प्रदान करना है। लौकिक लोकोत्तर विचार सुधारने के लिए चरित्र सुनाया जाता है। कल गर्भ रक्षा की बात कही गई थी। इस विषय में बहुत कुछ कहा जा सकता है मगर समयाभाव से इतना ही कहता हूं कि इस विषय में बड़ी भूलें हो रही हैं। ऐसे भी नर पिशाच हैं जो गर्भवती स्त्री के साथ विषय सेवन करते हैं। उनको जरा भी लाज शर्म नहीं आती। गर्भ के चिह्न मालूम हो जाने पर भी जो माता पिता विषय सेवन को छोड़ नहीं सकते वे माता पिता कहलाने के योग्य ही नहीं हैं। ऐसे स्त्री पुरुष हराम खोर कहे जायेंगे।

मनुष्यत्व में स्त्री को सौम्प देने मात्र से जिम्मेवारी पूरी नहीं हो जाती। वहां भी सुना जाता है ऐसे बालों का काम ठीक होता है। दूसरी गरीब स्त्रियों की तरफ बेगार भावना बर्ती जाती है। अमीर लोगों ने झंझटों से बचने के लिए अनेक तरीके निकाले हैं। कोई झगड़ा आपड़ा तो वकीलों को सौम्प दिया, शारीरिक खालिया अथवा कोई बीमारी आगई तो डाक्टरों के सुपुर्द कर दिया और स्त्री गर्भवती होकर पूरे दिन जा रहे हैं। तो मनुष्यत्व में मेम मन्द्रिका को सौम्प कर निश्चिंत हो जाते हैं। स्त्रियां भी बेफिक्र हो जाती हैं और इन विषयों को भूलती जाती हैं।

शास्त्र में गर्भ की अनुकम्पा-रक्षा के लिए बहुत कहा हुआ है। मेघकुमार के अध्ययन में कहा है।

'तस्स गब्भस्स अणुकम्पट्ठयाए'

अर्थात् धारिणी रानी ने उस गर्भ की अनुकम्पा के लिए ऐसा किया, वैसा कि इत्यादि। शास्त्र का ऐसा वचन होते हुए भी यह कहना कि जापेवाली बाई को पानी पि मे भी तेले का दण्ड आता है महान अज्ञानता सूचित करता है।

धनवान् लोगों ने अपने बर्ताव से गरीबों के लिए अनेक अड़चनें उत्पन्न क हैं। विवाह शादी में हजारों रुपये खर्च करके धनवान् लोग लक्ष्मी का मजा लेते हैं। उन देखा-देखी गरीब लोग भी अपने घर बार बेचकर ऐसा करते हैं। जब धनवानों ने अ बीबियों को प्रसूति गृह में भेजना शुरु किया है तो गरीब उनकी नकल क्यों न करेंगे प्रसूतिगृह में भक्ष्य भक्ष्य का खयाल नहीं रखा जाता। शराब तक पिया जाता है। इ शास्त्रों में प्रसव सम्बन्धी सब बातें बताई हुई हैं। उन को सीखकर आचरण में लाना एक माता पिता का कर्त्तव्य है। यदि कोई पुरुष इन बातों को नहीं जानता है उसे तब तक शादी करने और संतानोत्पत्ति करने का कोई अधिकार नहीं है।

शास्त्र में बालक के जन्म समय के लिए ऐसा पाठ आया है—

आरोग्गा आरोग्गं दारयं पयाया

अर्थात्—स्वस्थ माता ने स्वस्थ बालक को जन्म दिया। बालक भी आनन पूर्वक जन्मा और माता भी कुशल रही। ऐसा तब हो सकता है जब माता पिता प्रस सम्बन्धी सब बातों का ज्ञान रखते हो।

सेठ जिनदास के घर भी आनन्द पूर्वक पुत्र का जन्म हुआ। सेठ ने पुत्र जन की खुशी में बहुत उत्सव किया। आजकल के उत्सवों में और सेठ द्वारा मनाये गये उत्स में बड़ा अन्तर है। आजकल उत्सव इस प्रकार मनाते जाते हैं जिससे गरीबों को कठिना पैदा हो जाती है। उत्सवों में गरीबों को सहायता पहुँचने के बजाय उनपर बहुत बुरा अस पड़ता है। अपने गरीब भाईयों को सहायता पहुँचाना सच्चा सहधर्मी वात्सल्य है। एक आध बार लड्डू जीमा देने से कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। सह धर्मी वात्सल्य के अनेक तरीके हैं। विवेक की जरूरत है। कपड़ा तथा अन्य वस्तुएं खरीद कर भी दी जा सकती है, नौकरी वा धन्धे में लगाकर सहायता की जा सकती है। कन्या देने लेने में भी सह धर्मी वात्सल्य हो सकता है।

गरीब मनुष्य और प्राणियों को सुख पहुँचे। जो अपने सुख का ही खयाल रखता है वह परमात्मा को प्रिय नहीं होता किन्तु जो अपने सुख दुःखों की परवाह किये बिना दूसरों के सुख के लिए हरदम तय्यार रहता है वह पुण्यवान् है और वही प्रभु का प्यारा भी है। धनवत्ता पुण्यवान् का चिह्न नहीं है। धन तो वेश्या और बेइमानों के पास भी होता है।

जिनदास सबको सुख पहुँचाता था अतः सब का प्रिय पात्र था। आज पुत्र जन्म के कारण उसके बड़ा आनन्द हो रहा है। आगे का भाव आगे देखा जायगा।

राजकोट
२३—७—३६ का
व्याख्यान

सच्ची जय

" जय जय जिन त्रिभुवन धनी ………प्रा० "
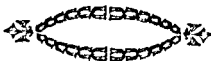
दिल न हो, वह नकली है। कई लोग इमिटेशन के दागिने पहिन कर अपनी बड़ाई बताना चाहते हैं मगर उनका दिल स्वयं इस बात की गवाही देता है कि यह पोल कब तक चलेगी। कई लोग, लोगों की दृष्टि में ऊँचा उठने के लिए परमात्मा की प्रार्थना करने का ढोंग किया करते हैं। ऐसी प्रार्थना से लोक रंजन और भक्तों में गिनती भले हो जाय मगर परमात्मा प्रसन्न नहीं हो सकते। परमात्मा तब प्रसन्न हों जब संसार के झगड़ों को हृदय से निकाल कर दिल से यह कहा जाय कि—

जय जय जिन त्रिभुवन धनी, करूणा निधि करतार।
सेव्या सुरतरू जेहवो, वांछित फल दातार ॥ जय० ॥

हे प्रभो! तेरा जय जय कार हो। यदि हृदय से परमात्मा की जय मनानी है तो अपनी जय की वांछा छोड़नी होगी। परमात्मा समष्टि का रूप है और हम व्यष्टि रूप हैं। समष्टि की जय में व्यष्टि की जय समा जाती है किन्तु व्यष्टि की जय में समष्टि की जय नहीं समाती। वृक्ष कहने से उसमें आम का वृक्ष भी आ जाता है किन्तु आम का वृक्ष कहने से उसके सिवा अन्य सब वृक्ष छूट जाते हैं। आत्मा अनन्त काल से केवल अपनी ही जय, चाहता है और अपनी जय मनवाने के लिए काम क्रोध, लोभ, मद प्रदर्शन आदि दुष्ट योद्धाओं का सहारा लेता है। किन्तु इस प्रयत्न से आत्मा की जय होने के बजाय पतन अवश्य हुआ है। यदि सच्ची जय चाहनी है तो अपनी व्यक्तिगत तुच्छ वृत्ति का त्याग करो। अर्थात् परमात्मा की जय मनाओ। आत्मा से मतलब व्यक्ति का है और परमात्मा से सब आत्मा प्राणि का। आत्मा की जय चाहने में क्रोधादिका सहारा लेना पड़ता है और परमात्मा की जय चाहने में सुख, शांति, निर्वैर आदि का। हे प्रभो! अब से मैं जहाँ कहीं क्षमा शांति निर्वैर आदि गुण देखूं वहाँ यह समझकर प्रसन्न होऊँ कि यहाँ परमात्मा की जय हो रही है। मनुष्यों से ईर्षा करना परमात्मा से ईर्षा करना और मनुष्यों से प्रेम करना परमात्मा से प्रेम करना है।

[illegible] दीपक [illegible] में प्रकाश देता है किन्तु सूर्य अधिक प्रकाश देता है। दीपक और सूर्य में जितना अन्तर है उतना आत्मा और परमात्मा में है। दीपक के [illegible] है। [illegible] सूर्य के [illegible] [illegible]

राजा श्रेणिक अनाथी मुनि को अपनपकार में मिल गया है। वह मुनि की क्षमा, निर्भयता और शान्ति देखकर अपने आपको भूल गया। अपना महत्त्व याद न रहा। आप लोग भी मैं मैं को छोड़कर यह मानने लग जाइये कि मैं कुछ नहीं हूं जो कुछ है वह तू ही तू है यह परमात्मा की जय चाहने का काम है।

तस्स पाये उ वन्दित्ता, काऊण य पयाहिणं।
नाइदूर मणासन्ने पंजली पडिपुच्छई ॥ ७ ॥

अभी तक गणधरों ने राजा के मनोभावों का वर्णन किया था अब इस गाथा में उसकी शारीरिक चेष्टा का वर्णन करते हैं। राजा क्षत्रिय था। क्षत्रिय का हृदय सचाई जान लेने के बाद तदनुसार आचरण करने में नहीं चूकता। वैसे क्षत्रिय सिर चला जाने पर भी किसी को सिर नहीं झुकाता लेकिन गुण जान लेने के बाद सिर झुकाने में संकोच भी नहीं करता। राणा प्रताप ने अकबर बादशाह को सिर नहीं झुकाया सो नहीं ही झुकाया। सुना है अकबर ने राणा को यहां तक प्रलोभन दिया कि यदि तुम मेरी आधीनता स्वीकार करलो तो मैं तुम्हें अपने राज्य का छठा हिस्सा दे दूंगा। राणा ने यह स्वीकार नहीं किया किन्तु जंगल में रहना मंजूर किया। इसके विपरीत जिनमें गुण देखे उनको राणा ने झुकाया है। जिसके फोटो उदयपुर में मौजूद है।

राजा श्रेणिक भी मुनि में गुण देखकर वाहन पर से उतर पड़ा और वह मस्तक जो कष्ट सहन करने पर भी कभी न झुका था, मुनि के चरणों में झुकाया। इतना ही नहीं किन्तु मुनि की प्रदक्षिणा करके उनके गुणों का वरण भी कर लिया।

आजकल प्रदक्षिणा का दूसरा अर्थ लिया जाता है। मैं दूसरा अर्थ बताता हूं। मेरे अर्थ के विरुद्ध कोई अच्छा अर्थ बतादेगा तो मैं उसे भी मानने को तय्यार हूं। यह बात दूसरी है कि आजकल परम्परा से प्रदक्षिणा का अर्थ लोग दूसरा ही मानते हैं। परम्परा की बात अलग है और शास्त्र की बात अलग है। शास्त्र में जहां कहीं वर्णन आया है वहां यह कहा है—

आलोए पणामं करेइ। भगवती सूत्र।

जहां से मुनि दृष्टि पथ में पड़े वहीं से ही वन्दन करना और फिर समीप पहुंचने पर प्रदक्षिणा करना। प्रदक्षिणा का अर्थ आस पास चारों ओर चक्कर लगाना है। किन्तु

जगह से घूमना शुरू किया वहीं आकर पूरा करना चाहिए। आवर्तन और प्रदक्षिणा में अन्तर है। आवर्तन का मतलब हाथ जोड़कर हाथों को एक कान से शुरू करके दूसरे कान तक लेजाना एक आवर्तन है। मुनि वन्दन के पाठ में 'पयाहिणं' पदका अर्थ प्रदक्षिणा करना है।

लग्न के समय वर-वधू अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं। पति के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करने वाली हिन्दू बालिका अपने प्राण देकर भी पति का साथ न छोड़ेगी। उस समय की गई प्रतिज्ञा से भी विमुख न होगी। निष्ठावान् पत्नी प्रदक्षिणा के बाद पति के सिवा समस्त पुरुषों को पिता और भाई के समान मानेगी। निष्ठावान् पुरुष भी इसी प्रकार अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह करता है।

यह लौकिक व्यवहार की बात हुई। यहाँ तो लोकोत्तर मुनि की प्रदक्षिणा की बात चल रही है। राजा ने मुनि की प्रदक्षिणा करके उनके गुणों को अपना लिया है। उनको अपना गुरु मानकर हाथ जोड़कर न अति समीप और न अति दूर बैठ गया। बहुत समीप बैठने से अपने अंग प्रत्यंगों से आशातना होने की संभावना रहती है और बहुत दूर बैठने से उनके द्वारा कही हुई बातें नहीं सुनाई देतीं। इस प्रकार बैठकर राजा ने मुनि से प्रश्न किया।

आजकल भी प्रश्न पूछने का रिवाज तो विद्यमान है मगर प्रश्न पूछने के साथ जितने विनय की आवश्यकता है उतना नहीं दिखाई देता। विनय रहित प्रश्न पूछना, वैसा है, जैसा पपीहा पानी के लिए पिउ पिउ की रट लगाता है किन्तु पानी सामने पर अपना मुख बन्द करले। विनय बिना मन में गुरु का उत्तर शिष्य हृदय में धारण नहीं कर सकता। विनय पूर्वक बैठकर राजा श्रेणिक ने यह प्रश्न किया—

> तरुणो सि अज्जो पव्वइओ, भोग कालम्मि संजया।
> उवट्ठिओ सि सामण्णे, एयमट्ठं सुणेमि ता॥

[illegible]

संसार में दो प्रकार के लोक हैं। एक तो वस्तु का सदुपयोग करने वाले और दूसरे दुरुपयोग करने वाले। कुछ लोग इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर यह विचार करते हैं कि दूसरी योनियों में जो सुख सुलभ न था वह इस जन्म में मिला है अतः खूब भोगने चाहिए। पर ज्ञानी कहते हैं कि भोग भोगने से मनुष्य शरीर का सदुपयोग नहीं होता भोग भोगने से पाशविक जीवन उन्नत बनाता है। कदाचित् आप पशुओं से ज्यादा भोग सको तो बड़े पशु कहला सकते हो मनुष्यता के लिए भोगों का त्याग आवश्यक है भोगादि तो मनुष्य और पशुओं में समान हैं।

आहार निद्रा भय मैथुनं च, सामान्य मेतत्प शुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामीध को विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभि समानाः॥

आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये चार बातें पशु और मनुष्यों में समान रूप से पाई जाती हैं। यदि पशु से मनुष्य में कोई विशेषता है तो वह धर्म की है। मनुष्य धर्म कर सकता है अर्थात् आत्मा से परमात्मा बनने का प्रयत्न कर सकता है। पशु नहीं कर सकता। यदि मनुष्य धर्म न करे तो वह पशुतुल्य है। फिर उसके और पशुओं के कामों में कोई फर्क नहीं रह जाता। आप चाहे सौ सौ रुपये का ग्रास खाते हो और जैसा कि सुना है एक हजार पौण्ड का एक कप होता है, पीते हो, किन्तु यह तो पशु भी खा पी सकता है यदि उसे खिलाया पिलाया जाय। न मिलने की अवस्था में तो मनुष्य भी भी नहीं खा पी सकता। आप जरी के महीन कपड़े पहिनो और रंग महलों में निवास करो तो पशु भी ऐसा कर सकते हैं बशर्ते कि उनसे ऐसा करवाया जाय किसी लार्ड ने कुत्ते कुत्ती का विवाह कराया और उसमें लाखों रुपये पूरे कर दिए। क्या इससे कुत्ता कुत्ती मनुष्य बन गये? कदापि नहीं। यदि विचार किया जाय तो आप लोग पशुओं का झूठा खाते हो हो। शहद खाते हो वह मक्खियों की झूठन है। दूध पीते हो वह बछड़े का झूठा है। बल्कि उसका हक मार कर आप पीते हो। अतः आहार, निद्रा, भय, और मैथुन की विशेषता से आप में पशुओं से विशेषता नहीं आ सकती।

धर्मो हि तेषामीध को विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।

अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, निष्परिग्रहिता आदि ऊंचे दर्जे के गुणों का पालन मनुष्य ही कर सकता है पशु नहीं कर सकता। इतने ऊंचे दर्जे की समझ पशु में नहीं होती कि वह इन उदार गुणों को अपने जीवन में पचा सके। अतः भाइयो! जीवों में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता मत मानो मगर सद्गुण वृद्धि करने में अपने जीवन की

सफलता मानो। राजा श्रेणिक ने मनुष्य जीवन को भोग भोगने के लिए मानकर ही मुनि के सन्मुख प्रश्न रखा है मुनि क्या उत्तर देते हैं इसका विचार फिर किया जायगा।

सुदर्शन चरित्र—

> **पंच धाय हुलरावे लाल को, पाले विविध प्रकार।**
>
> **चन्द्र कला सम बढ़े कुँवरजी, सुन्दर अति सुकुमार॥धन०॥१५॥**

यह पुन्यवान् की कथा है। लोग पुन्यवान् कहलाने में महत्त्व समझते हैं किन्तु वास्तव में कौन पुन्यवान् है और किस प्रकार पुन्यवान् हुआ जाता है यह बात इस चरित्र से समझिये।

जिनदास सेठ ने सबकी सम्मति से बालक का नाम सुदर्शन रख लिया। पांच धायों की संरक्षकता में बालक बढ़ने लगा। भीतर पांच धायें संभाल रखती थीं और बाहर अठारह देश की दासियां बालक को शिक्षा देती थीं।

यह प्रश्न होता है कि एक बालक को संभालने के लिए इतनी दासियों की क्या आवश्यकता थी? इसका समाधान यह है कि पांच धाईयों के जिम्मे पांच काम थे। एक दूध पिलाती, दूसरी स्नानादि कराती, तीसरी शरीर मंडन करती, चौथी गोद में लेकर खेलाती और पांचवीं खिलौनों से खेलाती तथा अंगुली पकड़ कर चलाती फिरती थी। एक धाय यह सब काम कर सकती है किन्तु सार्वत्रिक विकास के लिए पांच धायों की जरूरत थी। दूध पिलाने के लिए गाय भैंस आदि की अपेक्षा धाय विशेष उपयोगी मानी गई है क्योंकि दूध में भी बच्चों के संस्कार पड़ने की शक्ति रही हुई है। पशु दूध की अपेक्षा स्त्री का दूध उत्तम है। 'जैसा आहार वैसा उद्गार' के अनुसार दूध पिलाने में भी बहुत विचार रखना चाहिए।

किसी भाई के मन में यह शंका हो कि दूध भी गाय के अंगों में से निकलता है और मांस भी उसके अंगों से ही, अतः मांस खाने में क्या हर्ज है, तो उसे नीचे लिखी बात ध्यान में लेनी चाहिए।

दूध निकलने में कष्ट नहीं होता किन्तु [illegible] निकालने में कष्ट होता है। दूसरे निर्जीव [illegible]

पैदा होती है। दूध प्रेम के आकर्षण से निकलता है जबकि मांस क्रोध के वशीभूत होकर। जब बच्चा स्तनपान करता है तब माता को प्रेम होता है और दूध आने लगता है। यदि कोई बच्चा स्तन काट खाय तो माता को गुस्सा आता है। जो गाय हमें दूध पिलाती है उसी का मांस खाना हरामखोरी है। क्रोध में भरे हुए पशु का मांस खाने से खाने वाले में क्रोध के संस्कार आये बिना नहीं रह सकते। मांस खाने से शैतानीपन आती है। दूध उत्तम आहार में गिना जाता है।

गोद में खिलाने वाली धायका भी ख्याल करना चाहिए। वृक्ष का पौधा जैसी भूमि में रहता है वह वैसा ही होता है उसी प्रकार बच्चा भी जैसे संस्कार वाली धाय की गोद में खेलेगा उसके गुणावगुण को ग्रहण करेगा। नहलाने धुलाने और शरीर मंडन का भी बालक के विकास में पूरा स्थान है। खिलौनों का भी बालक पर असर पड़ता है। एक जगह देखा गया कि एक बाई रबर का पुतला लेकर खेल रही थी। उसे प्यार कर रही थी। बच्चा रो रहा था। इससे मालूम होता है कि भूरा बालक सबको पसंद पड़ता है। काले रंग का कम पसन्द पड़ता है। आजकल विदेशी खिलौनों ने बहुत नुकसान पहुंचाया है। खिलौने ऐसे हों जिनसे स्पर्श करने से स्वास्थ्य को नुकसान न पहुंचे।

अब बालक की अंगुली पकड़ कर उसे चलना सिखाते हैं। वह मां की चाल अपनी चाल सिखाती है। इस प्रकार धीरे धीरे चला कर उसके शरीर में ताकत पैदा करते हैं। चलने में भी शिक्षा की आवश्यकता है। यदि आपको लिखने की शिक्षा मिली हो तो आप सुन्दर अक्षर अक्षर और भाव व्यक्त कर सकते हैं। जिसको जिस काम की शिक्षा मिली हो वही वह काम सुन्दरता से कर सकता है।

बोलने का शिक्षण धीरे धीरे होता है। जल्दी करने से कुछ नहीं होता। [illegible]

मानव धर्म

[illegible]

"श्रेयांस जिनन्द सुमर रे.........प्रा॰"

आज मुझे मानव धर्म पर बोलना है। किन्तु प्रार्थना मेरी आत्मा का विषय है तथा प्रार्थना करना भी मानव धर्म है अतः इस विषय में कुछ कहता हूं।

इस प्रार्थना में कहा है कि हे आत्मन् ! उठ जाग। परमात्मा का स्मरण कर। आज मैं हिन्दी भाषा में ही बोलूंगा। मुझे मालूम है कि भाइयों को मेरी हिन्दी भाषा सम-

निकाली जाती है। जो कुछ होगा वह करने से ही होगा। हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से कुछ न होगा। जब तक भीतर से प्रार्थना न निकले तब तक सन्तों की बनाई हुई कड़ियों को ही चूमा करो। कुछ न कुछ रस उनमें भी मिल ही जायगा।

मानव धर्म

आज युवकों की ओर से मुझे सूचना मिली है कि मैं मानव धर्म पर व्याख्यान दूं। वैसे तो मैं प्रतिदिन व्याख्यान सुनाता हूं वे सब मानव धर्म के सम्बन्ध में ही हैं किन्तु आज इस विषय पर खास बोलना है। मैं इस विषय पर ठीक बोल सकूंगा या नहीं इसका निर्णय आप श्रोताओं पर अवलम्बित है। मगर यह बात निश्चित है कि हम भाड़े के टट्टू नहीं हैं कि जो व्याख्यान देकर ही रह जायें। हमारे व्याख्यान को कोई माने या न माने मगर हम स्वयं प्राण देकर भी उसकी बातों का पालन करेंगे।

मानव धर्म पर कुछ बोलने के पूर्व हम यह जानलें कि मानव किसे कहते हैं। जिसके नाक, कान, आंख, हाथ, पैर आदि हों तथा जिसकी शक्ल आप हम जैसी हो वह मानव गिना जायगा तो बहुत से पशुओं को भी मानव मानना पड़ेगा। बन्दर की शक्ल मानव जैसी होती है। बल्कि एक पूछ विशेष होती है। कई जल के प्राणी भी मानवाकृति के होते हैं। क्या उनको मानव कहा जाय? कदापि नहीं। संस्कृत व्याकरण के अनुसार मनन शील को मनु कहते हैं और मनु की संतान को मानव। जिसे धर्म अधर्म, पुण्य पाप, कर्त्तव्य अकर्त्तव्य और हिताहित का विवेक हो वह मनु है। मनु की संतति मानव है। ज्ञानवान् की संतान को मानव कहा गया है। कहने का मतलब यह है कि केवल तुम स्वयं ही ज्ञानवान् नहीं हो किन्तु तुम्हारे पूर्वज भी ज्ञानवान् थे। भगवान् ऋषभदेव की संतान में मनु नाम के कुल गुरु भी थे। मनुस्मृति के रचयिता भी मनु थे। मुसलमान भी आदम को मानते हैं और आदम की सन्तान को इन्सान कहते हैं। आप अपने पूर्वजों को मत भूल जाइये। उनके संस्कार आप में वंशपरम्परा से आ रहे हैं इसी कारण आप आज इस स्थिति में हैं। वेदान्त और उपनिषदों में मानव का महत्त्व बताया है। मनुष्य को अग्नि भी कहा गया है। अन्न और पानी उसके पेट में जाकर भस्म हो जाते हैं। पेट में जाकर अन्न पानी किस प्रकार भस्म होते हैं और किस प्रकार उनका रसभाग और खलभाग अलग होता है यह विषय अभी नहीं छेड़ा जायगा। मगर मनुष्य एक प्रकार की आग है। डाक्टर लोग भी अधिक बीमार व्यक्ति की पहले आग सम्हालते हैं मनुष्य एक जीवित और चलती फिरती अग्नि है, जिस में कुछ भी डालो आप वह व्यर्थ नहीं जाता, किन्तु उसकी आहुति में परिणत हो जाता है। अन्न पानी से वीर्य बनता है और

होती है उसके समान आकृति वाली संतान बनती है। यह परम्परा है। मगर इस परम्परा में यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि जैसा अन्न पानी होगा वैसा वीर्य बनेगा और तदनुसार संतान भी। जो अपने धर्म कर्म, और भावी संतान का खयाल रखता है वह मानव है।

इस पर प्रश्न होता है कि इस व्याख्या से तो विद्वान्, मूर्ख, बालक वृद्ध जंगली और नागरिक सब मानव कहे जाएंगे। ज्ञानी इसका उत्तर देते हैं कि मानव की खोपड़ी होने पर भी जिसमें मानव धर्म पाया जाता है। वह मानव है एक कवि कहते हैं:—

> दीसतके नर दीसत है, पर लच्छण तो पशु के सब ही है।
> पीवत खावत उठत बैठत, वो घर वो वनवास यही है॥
> सांझ पडे रजनी फिर आवत सुन्दर यों फिर भार वही है।
> और तो लच्छण आन मिले सब, एक कमी सिर सींग नहीं है॥

जिसमें मानव धर्म नहीं है, ज्ञानियों ने उसे बिना सींग पूंछ का पशु कहा है। जिसमें द्रव्य मानवता है मगर भाव मानवता नहीं है वह वास्तविक मानव नहीं है। धर्म के बिना मानवता संभव नहीं है। आजकल लोग धर्म को एक प्रकार का बोझा समझते हैं। वे उसका तत्काल और प्रत्यक्ष फल चाहते हैं। जैसे रुपया भुनाया और चीजें मिलीं उसी प्रकार धर्म का तत्काल फल भोगना चाहते हैं। परलोक किसने देखा। परलोक में धर्म का फल मिलेगा, इस आशा पर धर्म करना और समय बरबाद करना, ठीक नहीं। आदि बातें सुनने में आती हैं। मगर यह कथन ठीक नहीं है। जन्म होने के बाद यदि धर्म का उपक्रम न हो तो मनुष्य असंस्कारी रह जायगा। जैसे खेती करके कपास पैदा किया जाता है। यदि किसी से लज्जा ढांकने के लिए अपने शरीर पर कपास लपेटने के लिए कह दिया जाय तो वह न लपेटेगा जब तक उसकी रुई बना कर कपड़ा न बना लिया जाय, कोई शरीर पर न धारण करेगा। इसी प्रकार बालक को, जैसा जन्मा है वैसा ही रखना, उसका क्रिया द्वारा संस्कार या सुधार न करना, कपास का कपास ही रखना है, जो किसी को उपयोगी न होगा।

ज्ञानी कहते हैं इस भव के समान दूसरा कोई जन्म नहीं है। इस भव के बड़े होकर माता पिता अपनी संतान को [illegible] कर देते हैं। मानव के धर्म के [illegible]

डाल कर उसको कोरी रख देते हैं। बिना धर्म के न तो सुधार ही हो सकता है और न जीवन ही बन सकता है।

श्री अनुयोगद्वार सूत्र में उपक्रम के छः भेद बताये गये हैं १ नाम उपक्रम २ स्थापना उपक्रम ३ द्रव्य उपक्रम ४ क्षेत्र उपक्रम ५ काल उपक्रम ६ भव उपक्रम। सब उपक्रमों के वर्णन का अभी समय नहीं है अतः सम्बन्धित उपक्रमों के विषय में कुछ कहता हूँ। भूत और भविष्य को छोड़कर जो वर्तमान में बरता है उसका उपक्रम, द्रव्य उपक्रम है। इसके सचित्त और अचित्त दो भेद हैं। सचित्त उपक्रम के द्विपद चतुष्पद और अपद ये तीन भेद हैं। द्विपद में मनुष्य, चतुष्पद में पशु और अपद में वृक्षादिकों का समावेश होता है। इन सब का उपक्रम होता है। उपक्रम भी दो प्रकार से होता है। १ वस्तु विनाश और २ परिक्रम। वस्तु को नष्ट करना यह वस्तु विनाश है और वस्तु को नाना प्रकार से सुधारना संस्कारित करना परिक्रम है। मनुष्य का शारीरिक मानसिक और बौद्धिक विकास करना उसका परिक्रम करना है। जैसे मिट्टी में घड़ा बनने की योग्यता रही हुई है किन्तु जब तक कुंभकार क्रिया द्वारा उसकी शक्ति को विकसित न करे, घड़ा नहीं बन सकता। मिट्टी का उपक्रम किये बिना उसका घड़ा नहीं बन सकता। बिना उपक्रम के कोई मिट्टी में खीचड़ी नहीं पका सकता. हंडिया मिट्टी की ही बनती है मगर उपक्रम करने से बनती है। बिना उपक्रम के मिट्टी का ढेला, ढेला ही बना रहेगा। इसी प्रकार मनुष्य शरीर भी एक प्रकार से मिट्टी के ढेले के समान ही है मगर उसका परिक्रम किया जाय तो यह ढेला ऐसे चमत्कार करके दिखा सकता है जिन्हें देखकर दुनिया चकित रह जाती है।

हाड़ या इन्द्रियों की बनावट के कारण ही कोई मानव नहीं कहा जा सकता। मानव तो तब कहा जायगा जब धर्म की बातों का उसमें संस्कार या परिश्रम किया जायगा। इस परिश्रम को विकास कहा जाता है। जिस व्यक्ति का जिस विषय में विकास हो वह उसी ओर उन्नति कर सकता है। जो वह लिखता है वह थोड़ी देर में बहुत कुछ लिख सकता है। मगर न लिखने वाला व्यक्ति एक पत्र लिखने में भी बहुत समय लगा देगा। उपक्रम ही इस [illegible] का कारण है। जिसने बचपन से लिखने का खूब अभ्यास किया है वह शीघ्र लिख सकता है। वह इस में ऐसा [illegible] होता है मानो इसकी कलम में सरस्वती उतर आई है मगर [illegible] यह भूल जाते हैं कि बचपन की इस तत्परता के पीछे भूतकाल का विकास [illegible] रहा है। किसी विषय में विकास के लिए कहा जाय तो वह नहीं लिख

सकेगा क्योंकि बचपन में उसका इस विषय का परिक्रम नहीं हुआ है। यदि आप सदृश पढ़े लिखे लोगों से खेती करने की बात कही जाय तो आप इसमें सफल नहीं हो सकते क्योंकि इस विषय में आप का उपक्रम नहीं हुआ है। किन्तु यह न भूल जाइये कि आपका जीवन निर्वाह खेती के उपक्रम से ही होता है। कला कौशल के विकास को शास्त्रकार द्रव्य उपक्रम कहते हैं।

एक व्यक्ति में सम्पूर्ण उपक्रम नहीं पाया जाता। यदि व्यक्ति का सार्वत्रिक उपक्रम या विकास हो गया तब तो उसमें और परमात्मा में कोई अन्तर न रह जायगा। व्यक्ति को निराश होने की जरूरत नहीं है उसे विकास के लिए हर क्षण प्रयत्न करते रहना चाहिए।

शास्त्र में मेघकुमार राजकुमार था। उसकी गर्भ से लेकर आठ वर्ष तक की उम्र में होने वाली सब क्रियाएं बराबर हुई थी। फिर उसे कलाचार्य को सौंपदिया। कलाचार्य के पास उसने लिखने से लेकर शुकुन पर्यन्त की ७२ कलाएं सीखीं। इन बहत्तर कलाओं में मानव जीवन की आवश्यकता सम्बन्धी सम्पूर्ण बातें आजाती है।

पहले जमाने में हर आदमी बहत्तर कलाओं में प्रवीण होता था। उसे मूलतः, अर्थतः और कर्मतः इन कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। मूलतः का मतलब है पहले इन कलाओं का सामान्य अर्थ के रूप [illegible] बताया जाता था। बाद में उनका विशेष [illegible] था। दूसरी [illegible] सैद्धान्तिक हर कला का सिद्धान्त बताया जाता था यह अर्थतः शिक्षण हुआ। तदनन्तर प्रयोग करके, परिश्रम करके उनका अभ्यास कराया जाता था, यह कर्मतः शिक्षण हुई।

[illegible]

कोशिश करना । आज भारत गारत इसी लिए हो रहा है कि उसके युवक थोड़ा पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करके ही अभिमान में फूल जाते हैं । पुस्तकों के ज्ञान से ही वे सन्तुष्ट हो जाते हैं मगर कोरे ज्ञान से उनका व उनके कुटुम्ब का तथा देश का पेट नहीं भर सकता। ज्ञान के अनुसार क्रिया करना आवश्यक है ।

सुना है एक अमरिकन व्यक्ति भारत में सिविल (ऊँची नौकरी) करके पेंशन पाता होकर अपने देश को लौट गया । वहाँ एक दिन उन का एक भारतीय मित्र भ्रमण करता हुआ उनके घर पर आ निकला, भारतीय ने उनकी स्त्री से पूछा कि साहब कहाँ गये हैं । स्त्री ने जवाब दिया, बैठिये अभी आये जाते हैं । थोड़ी देर बाद एक सज्जन बंडिया पहिने हुए, हाथ में कुदाला लिए हुए और मिट्टी में सने हुए आये जिन्हें पहिचान कर भारतीय मित्र मन में बड़ा अचरज करने लगा कि एक बहुत बड़े पद पर कार्य कर चुकने वाला व्यक्ति, ऐसी हालत बनाकर खेत में काम करता है । वह साहब से मिलने के लिए आगे बढ़ा मगर साहब बिना कुछ बोले ही सीधा स्नान घर में चला गया । स्नान करके कपड़े पहिन कर अपने बैठक के कमरे में आकर भारतीय दोस्त को बुलाकर साहब बहादुर बातें करने लगे । बातचीत के दौरान में भारतीय ने पूछा कि कहाँ तो आपका वह रुआब और पोजिशन जो भारत में थी और कहाँ आज आप की यह दशा जो खेती करने पर उतर आये । साहब ने कहा ऐ मेरे दोस्त ! तुम्हारे भारत देश में यही तो कमी है कि तुम लोग थोड़ासा ऊँचा पद पाकर फूल कर कुप्पा हो जाते हो । फिर उस मान मर्यादा के निर्वाह के लिए जीवन पर्यन्त कष्ट में पड़े रहते हो और शक्ति उपरान्त खर्च करते रहते हो । तुम्हारी देखा देखी हम लोगों को भी भारत में उसी झूठे पोजिशन में रहना पड़ता है । मेरे पास धन की कोई कमी नहीं मगर हम लोग अपने काम को नहीं छोड़ते । जो धन्धा मेरे पूर्वज बाप-दादा से करते आ रहे हैं उसे क्यों छोड़ा जाय ।

मित्रो ! अमेरिका के धनवानों की तो यह बात है और भारत के धनवान और शिक्षित लोगों की यह दशा है कि वे दूसरों के लिए बोझा रूप बन जाते हैं । भारत का सौभाग्य है कि अभी तक भारतीय शिक्षित इस सभ्यता तक नहीं पहुँचे हैं कि स्वयं कार्य करके देश और समाज का जीवन उन्नत करें । नहीं तो भारत को बड़ी कठिनाई में पड़ना पड़ता । अब देश भर में कुछ शिक्षित ऐसे हैं, जो पढ़े लिखे हैं और काश्तकारी करने में शर्माते हैं, श्रम कम करते हैं; मगर सब शिक्षित ऐसे नहीं हैं ।

शास्त्र कथित परिक्रम का खयाल कीजिये। ऐसा न हो कि पढ़े लिखे और बे पढ़ों के बीच एक मजबूत खाई तय्यार हो जाय! नये और पुराने लोगों के बीच मेल मधता है, इस बात का ध्यान रखना चाहिये। नहीं तो जीवन निर्वाह कठिन हो जायगा । और काम न चल सकेगा।

शास्त्र में कही हुई बहत्तर कलाएं द्रव्य उपकर्म में हैं। कोई भाई यह कहे कि महाराज हमें द्रव्य उपक्रम से क्या मतलब है. हमें भाव उपक्रम बताइये जिससे हम हमारी आत्मा का कल्याण करें। उसको मेरा कहना है कि द्रव्योन्नति के बिना भावोन्नति नहीं होती। जिसका शरीर और मन कमजोर है वह क्या भावोन्नति करेगा? उस पर धर्म की शिक्षा का क्या असर होगा? आज शरीर का परिक्रम न किया जाने के कारण शरीर सशक्त नहीं है. अहमदनगर में राममूर्ति पहलवान ने कहा था कि मुझे कैसा ही दुबला और कमजोर पांच वर्ष का बच्चा सौंप दिया जाय मैं उसको बीसवें वर्ष में पहुंचते हुए राम मूर्ति बना दूंगा। परिक्रम से यह शक्य है। भाव परिक्रम के लिए द्रव्य परिक्रम आवश्यक है। यही कारण है कि शास्त्रों में संहनन (शरीर की मजबूती) को भी मोक्ष में निमित्त कारण माना है।

यह द्रव्य धर्म की बात हुई। भाव धर्म के लिए द्रव्य धर्म आवश्यक है। किन्तु केवल द्रव्य धर्म हो और भाव न हो तो वह द्रव्य धर्म आत्मा के लिए उपयोगी नहीं हो सकता। शास्त्र में कहा है—

'सव्वे कला धम्म कला जिणइ'

अर्थात्—धर्म कला सब कलाओं से बढ़कर है। आप कहेंगे कि जिन्दगी निभाने का सब काम द्रव्य धर्म से चल जाता है फिर भाव धर्म की क्या आवश्यकता है। भाव धर्म के बिना कौनसा काम रुक जाता है। इसका उत्तर यह है कि जिसके लिए द्रव्य धर्म का पालन किया जाता है उसी को अगर न जाना तो द्रव्य धर्म का पालन व्यर्थ हो जायगा। आप जो कुछ करते हैं वह आत्मा ही के लिए तो करते हैं अब आत्मा को ही न पहिचाना तो जीवन धारण ही व्यर्थ हो जायगा। भाव धर्म से आत्मा की पहिचान होती है और वह अपना निजरूप प्राप्त करता है।

किसी भाई को आत्मा किसे कहते हैं यह भी न मालूम हो अतः बता देता हूं कि आपका यह शरीर कार्य है या कारण। शरीर कार्य है। इसका कारण पंचभूत है।

घड़ी कार्य है और उसके कल पुर्जे कारण हैं। यहां तक समझने में तो भूल नहीं होती। भूल इसके आगे होती है। आगे समझिये कि यदि यह शरीर कार्य है तो इसका कर्ता कौन है। किसने पंच भूतों के साथ मेल साधा है। कई भाई कहते हैं कि जैसे पुर्जों के सम्बद्ध होने से घड़ी चलती है। उसी प्रकार पांच भूतों के मेल से शरीर चलता है। फिर आत्मा छठे तत्त्व की कल्पना करने की क्या आवश्यकता है। हमारा यह कहना है कि आखिर घड़ी के पुर्जे भी किसी के मिलाये बिना अपने आप नहीं मिल गये, मिलाने से मिले हैं। इसी प्रकार पंच भूतों का मेल अपने आप नहीं हो जाता। मेल कराने के लिए किसी कर्त्ता की आवश्यकता है। जो कर्त्ता है वही आत्मा है। ईंट और चूना पृथक् पृथक् रखे हैं। जब कोई कर्त्ता—कारीगर उनको मिलाता है तब भवन बन कर खड़ा होता है। शरीर और पंच भूतों को तो मानें और शरीर के कर्त्ता आत्मा को न मानें यह कैसे हो सकता है। आपको मानना पड़ेगा।

मैंने मेरी करेली नामक एक पाश्चात्य विदुषी के लेख का अनुवाद पढ़ा। उसमें उसने बताया कि संसार के पदार्थों का रूपान्तर होता है, एकान्त विनाश नहीं होता। मोमबत्ती के जल जाने पर यह ख्याल किया जाता है कि वह नष्ट हो गई किन्तु वास्तव में वह नष्ट नहीं हुई, उसका रूपान्तर हो गया, यदि जलती मोमबत्ती के पास दो वैज्ञानिक यन्त्र रख दिए जाएं तो उसके सब परमाणु एकत्रित हो जायेंगे। जिनको मिलाकर फिर मोम बनाई जा सकती है। पानी सूख जाने पर भी लोग ख्याल करते हैं कि पानी नष्ट हो गया मगर पानी नष्ट नहीं होता। पानी दो हवाओं के संयोग से बनता है। सूखा हुआ पानी हवा में मिल जाता है। फिर दो हवाओं के संयोग से पानी बन जाता है। धुंए को पकड़ा जाय तो उसकी टीकरियां हो जायगी। टीकरियों को पीस डाली तो बारीक रेत हो जायगी किन्तु पदार्थ बिलकुल विनष्ट न होगा। जब कि संसार की ये तुच्छ वस्तुएँ भी बिलकुल विनष्ट नहीं होतीं तब आत्मा जो कि सब का मेल मिलाने वाला है, कैसे नष्ट हो सकता है।

इस आत्मा को जिस धर्म की आवश्यकता है वही मानव धर्म है। मैं मानव धर्म का जैन, बौद्ध, वेदान्ती, ईसाई, इस्लाम आदि साम्प्रदायिक धर्म से न भेजकर, इनके सामान्य सर्व मान्य रूप का बखान करता हूं। सामान्य रूप को कोई इन्कार नहीं कर सकता सब धर्मों ने सामान्य रूप को स्वीकार किया है जिस सम्प्रदाय में धर्म का सर्व सामान्य रूप नहीं है वह पंथ नहीं माना जाता। पहले इस्लाम की बात कहता हूं। कुरान में कहा है—

ला हौ फ़ी दीनिल इस्लाम

अर्थात्:—हे मुहम्मद ! तू दुनिया को आगाह करदे कि अल्लाह की खल्क को कोई न सतावे ।

अब विचार करने की बात है अल्ला की मखलूक कौन है । क्या हिन्दू अल्ला की मखलूक नहीं है ? यदि केवल मुसलमान ही अल्ला की मखलूक हो तब तो अल्ला पक्षपाती ठहरेगा और वह सारी दुनिया का मालिक न रहेगा । कोई मुसलमान किसी हिन्दू को सतावे तो वह कह सकता है कि तू तेरे मालिक को पहिचानता है या नहीं ? वह सब का मालिक है । वह किसी को न सताने की बात कहता है । हिन्दुओं के लिए भी यही बात लागू होती है । उनका परमात्मा मुसलमानों का भी परमात्मा है । एक परमात्मा की छत्र छाया में रहने वाले आपस में कैसे लड़-झगड़ सकते हैं । यदि लड़ते हैं तो परमात्मा की अवहेला करते हैं ।

एक आदमी हाथ में माला लेकर फिरा रहा था । दूसरा उसके पास आकर गाली देने लगा । माला फिराने वाले ने कहा देखता नहीं है, मैं माला फिरा रहा हूं, मेरा परमात्मा तेरा नाश कर देगा । दूसरे ने कहा परमात्मा जैसा तेरा है वैसा मेरा भी है । मेरा क्यों नाश करेगा, तेरा नाश करेगा ?

परमात्मा किस की तरफदारी करे । किस का पक्ष-ग्रहण करे और किस का नहीं । इन्हीं बातों को लेकर आज के नवयुवकों की ईश्वर और धर्म विषयक श्रद्धा ढीली पड़ गई है । कोई तो ईश्वर का उपहास करता है और कोई धर्म का । किन्तु इन में ईश्वर और धर्म का कोई दोष नहीं है । दोष है, ईश्वर और धर्म के स्वरूप समझने वाले व्यक्तियों का । धर्म, सब को आपस में प्रेम से रहने की बात कहता है ।

अब हिन्दुओं की सर्व मान्य गीता में देखिये । उस में कहा है कि सब वेद पुराण का सार यह है.—

निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डवः ।

अर्थात्—[illegible] सब प्राणियों के प्रति वैर भाव रहित होकर [illegible] करता है वह मुझ (परमात्मा) को प्राप्त होता है । [illegible] कुरान में है [illegible] में है ।

[illegible]

[illegible]

अप्प समं मनिज्ज छप्पि कार्य

अर्थात्—प्राणी मात्र को अपनी आत्मा के समान मानो। जब प्राणी मात्र को आत्मवत् मान लिया जाय तब किसके साथ वैर विरोध किया जाय।

उदयपुर (मेवाड़) में एक वकील ने मुझ से प्रश्न किया कि जब आत्मा अमर है, अविनाशी है किसी के मारने से मरता नहीं है, फिर किसी मारने या सताने से पाप कैसे हो सकता है। उत्तर में मैंने कहा था कि आत्मा अविनाशी है इसी लिए पाप लगता है और उसका फल भोगना पड़ता है। यदि आत्मा नाशवान् हो तब तो कोई झगड़ा ही न रहे। मारने वाला और मरने वाला दोनों खत्म हो गये फिर क्या झगड़ा रहा। व्यवहार में भी मरे हुए पर दावा नहीं होता, दावा जिन्दे पर होता है। आत्मा सदा कायम रहता है। शरीर एवं इन्द्रियां बदल जाती हैं। आत्मा ने शरीर धन कुटुम्ब आदि को अपना मान रखा है। उसके द्वारा प्रिय माने हुए पदार्थों को उससे जुदा करना यही पाप है, हिंसा है जो सबको अपनी आत्मा के समान समझेगा 'तत्र कः मोह क शोकः' उसको क्या मोह और क्या शोक हो सकता है। यह सर्व सामान्य मानव धर्म है।

ठाणांग सूत्र में दस धर्मों का वर्णन है। इन धर्मों पर मैंने लम्बे व्याख्यान दिए हैं, जो पुस्तकाकार में प्रकट हुए हैं, और जिनको लोगों ने खूब पसन्द किया है। इसी प्रकार मनु ने भी दस धर्म बताये हैं। ठाणांग सूत्र प्रतिपादित और मनु द्वारा कथित दस धर्म सामान्य धर्म हैं जो मनुष्य मात्र के लिए उपयोगी हैं। कोई कहीं भी रहे, किसी भी स्थिति में रहे, सामान्य धर्म का पालन करना आवश्यक माना गया है महाभारत में मानव का साधारण धर्म बताते हुए कहा है—

श्रद्धा कर्म तपश्चैव सत्यम क्रोध एवच।
स्वेषुदारेषुसंतोषः शौचं विद्या न सूयिता॥
आत्म ज्ञानं तितिक्षाच धर्मः साधारणो नृपः।

१ श्रद्धा रखना २ सत्कर्म करना ३ तपस्या करना ४ सत्य बोलना ५ किसी पर क्रोध न करना ६ अपनी स्त्री में सन्तोष रखना ७ पवित्र रहना ८ [illegible] करना ९ किसी से वैर न करना १० [illegible] करना। ये दस सामान्य धर्म हैं। [illegible] [illegible]

माताने सामान्य धर्म का पालन किया तब आज हम इस अवस्था में मौजूद हैं । यदि माता जन्मते ही हमको फेंक देती तो हमारी क्या दशा होती । हमारा जीवन धर्म ही के आधार पर टिका हुआ है । अतः जिस वृक्ष की शीतल छाया में बैठे हो उसकी डालियां अथवा जड़ मूल को मत काटो । धर्म के बल पर हमारा जीवन टिक रहा है । उसको उखाड़ फेंकना ठीक नहीं है । शरीर के लिए अन्न वस्त्र जितने जरूरी हैं आत्मा के लिए धर्म उतना ही जरूरी है ।

आपकी शादी हो चुकी है । आप कैसी स्त्री पसन्द करते हैं । जो पति के अनुकूल बर्ताव करे उसे या जो पति को गालीयाँ देती हो उसे ? चाहते तो सभी अनुकूल आचरण करने वाली ही । बिना धर्म का पालन किये स्त्री अनुकूल बर्ताव नहीं कर सकती । धर्म का पालन किये बिना पिता संतान का पालन पोषण भी नहीं कर सकता । एक श्वास भी संसार में धर्म के बिना नहीं लिया जा सकता । धर्म का अर्थ नियम है विरुद्ध एक सांस भी न लेना मानव धर्म है । दूसरों से नियम पालन की आशा रखने वालों को स्वयं भी नियम पालन करना चाहिए ।

अब मैं धर्म का एक बारीक तत्व आपके सामने रखना चाहता हूं । अभी तक सामान्य धर्म का कथन किया गया है और सामान्य धर्म और नीति में अन्तर नहीं है, यह बात कोई कह सकता है । दरअसल नीति धर्म की नींव है । नीति के आधार पर धर्म रूप भवन बनाने से वह स्थायी रह सकता है । नीति विरुद्ध काम करने वाला धर्मात्मा नहीं बन सकता । नीति का सहारा लेकर उस पर क्या महल खड़ा करना चाहिए यह बात मैं हितोपदेश की एक कथा के आधार पर बताना चाहता हूं, ताकि सर्व साधारण को सुगमता से समझ में आ जाए ।

कबूतरों की एक टोली निकली थी । टोली के कबूतरों ने विचार किया कि मुंह छिपाने से काम नहीं चलता अतः किसी को नेता बनाकर उसके निर्देशन में रहना चाहिए । चित्रग्रीव नाम के कबूतर को अपना नेता चुन लिया । वैज्ञानिकों का कथन है कि लोग जिसको अपने से बड़ा मानते हैं उसमें कोई अलौकिक गुण भी होता है । कबूतरों ने गुण देखकर उसे अपना प्रेसिडेन्ट अथवा राजा बनाया । अब सब उसकी आज्ञानुसार विचरने लगे ।

एक जगह एक पारधी ने जाल बिछाकर चांवल बिखेर रखे थे । और स्वयं झाड़ियों में छिपा बैठा था । चांवल दिखाई देते थे मगर जाल न दिखता था । तब कबूतरों ने कहा ये चांवल यहां बिखरे पड़े हैं, चलो और चुगो । नेता ने कहा अरे ठहरो !

'अत्र निर्जने वने कुत्र तन्दुल कणानां संभमः ? निरूप्यतां तावत्, भद्रं इदं न पश्यामि' इस निर्जन वन में चाँवल के दानों का कहाँ संभव हो सकता है, जरा देखो, मैं इसमें कुशल नहीं देखता।

नेता ने सोच समझ कर बात कही मगर वे कबूतर क्यों मानने लगे। आज के युवक माने तो वे भी माने। नेता चुन लिया मगर उसकी आज्ञा पालन करने में कठिनाई मालूम देती है। एक युवा कबूतर को नेता की यह चेतावनी अच्छी न लगी। उसने कहा वृद्धों की बात संकट के समय मानी जाती है। भोजन के समय मानने से भूखों मरने की नौबत आती है। साक्षात चाँवल दीख रहे हैं, फिर उन्हें न चुगना महज मूर्खता है।

आज के युवक भी यही बात कहते हैं कि यदि हम पुराने लोगों की बातें मानने लगें तो कोई सुधार नहीं हो सकता। लेकिन जो बड़ा या नेता होता है उसका क्या कर्तव्य है, यह ध्यान से देखिये।

कबूतरों के नेता चित्रग्रीव ने सोचा कि ये सब लोग एक हो गये हैं अतः इन से अलग रहकर आपस में फूट डालना ठीक नहीं है, कहा, चलो भूख तो मुझे भी लग रही है नीचे चलकर दाने चुगें। वह मन में जानता था कि इस कार्य में संकट है फिर भी उसने सब के साथ रहना ही उचित समझा। संकट में ये लोग अवश्य मेरी बात मानेंगे।

सब उड़कर नीचे आ गये और दाने चुगने लगे। जब वापस उड़ने लगे तब सब के पैर जाल में फँस जाने से उड़ न सके। अब सब कबूतर इस युवा कबूतर को कोसने लगे कि तुमने नेता कहना न मानकर हम सब को फँसा दिया है। उस समय यदि नेता चाहता तो आपस में फूट डलवा सकता था। क्योंकि फूट डालने का सुन्दर अवसर था। किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। उसने कहा इस युवा को दोष मत दो। जब आपत्ति आने वाली होती है तब मित्र भी शत्रु का काम कर बैठते हैं। इसका उद्देश्य सबको खिलाने का था फँसाने का न था। इस में यह क्या करे जो आपत्ति आगई। इसने अपनी बुद्धि में जैना जँचा वैसी सलाह दी थी। अब इसे गाली या उपालम्भ देने से क्या होता है। हमारी आपत्ति उपालम्भ से नहीं मिट जाती। वह तो उपाय करने से मिट सकती है।

आजकल दूसरों पर दोषारोपण करने और उपालम्भ देने की प्रथा बहुत चल गई है मगर लोग यह नहीं देखते किसी बात के लिए हम उपालम्भ दे रहे हैं वह हमारे में तो

हैं । जाल के टुकड़े हम से न होंगे । अतः गंडकी नदी के किनारे मेरा हिरण्यक नाम का, मूषक मित्र रहता है, उसके पास चलें । यद्यपि वह चूहा है और मैं कबूतर हूं फिर भी समय कुसमय में काम आने के लिए हमने आपस में मित्रता कर रखी है। वह हमारे बंधन काट देगा ।

सब कबूतर जाल लेकर हिरण्यक के बिल पर पहुँचे । हिरण्यक ने दूर से देखकर कि आज यह क्या आफत आ रही है अपने बिल का आश्रय लिया । बिल के पास आकर चित्रग्रीव ने पुकारा मित्र ! बाहर निकलो, या तो तुम्हा तो चित्रग्री हूं । आवाज पहिचान कर चूहा बाहर निकला । उसने पूछा तुम इतने बुद्धिमान होकर इस बंधन में कैसे फँस गये । चित्रग्रीव ने उत्तर दिया, भाई ! समय की बात । जब अनिष्ट होने वाला होता है तब अच्छी बुद्धि नहीं सूझती । नेता ने भी अभी भी अपने साथियों का दोष नहीं बताया । उसे तो केवल अपने साथियों के बन्धन कटवाने की धुन थी । दोष देखने की वृति उसमें न थी । जो लोग काम करना जानते हैं वे दूसरों के दोष नहीं देखा करते ।

चीत्रग्रीव की प्रार्थना पर चूहा उनके बंधन काटने के लिए तय्यार हो गया । चूहे ने कहा दोस्त ! मैं पहले तेरे बंधन काट दूं बाद में शक्ति रही धीरे धीरे सब के काट दूँगा । चीत्र ग्रीव ने कहा, ऐसा नहीं हो सकता कि मैं मुक्त हो जाऊँ और मेरे अधीन रहने वाले मेरे भाई बंधन में पड़े रहें । चूहे ने कहा प्रिय मित्र ! इस में संकोच करने कोई बात नहीं है । नीति भी यही बताती है कि—

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारै रपि धनै रपि ॥

अर्थ—आपत्ति के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए । धन से स्त्री की रक्षा करनी चाहिए । किन्तु जब अपनी आत्मा की रक्षा का प्रश्न हो तब स्त्री और धन देकर भी उसका बचाव करना चाहिए ।

चित्रग्रीव ने उत्तर दिया, मित्र ! नीति यह बात कहती है कि पहले अपनी रक्षा करनी चाहिए, मगर धर्म कुछ और बात कहता है धर्म नीति से आगे बढ़ा है ।

'नीतिस्त्वत्र दीदृश्येव किन्त्वहमस्मदाश्रितानां दुःखं सोढुं सर्वथा असमर्थः ।'
नीति तो ऐसी ही है कि पहले अपनी रक्षा करनी चाहिए, किन्तु मैं अपने आश्रितजनों का दुःख सहन करने में सर्वथा असमर्थ हूँ। अतः पहले इनको बचाओ, बाद में शक्ति हो तो मुझे बचाना। नीति और धर्म में यही अन्तर है कि नीति कहती है अपनी रक्षा करो, धर्म कहता है अपने प्राणों को तथा अपनी प्रिय वस्तुओं को जोखिम में डाल कर भी दूसरों की रक्षा करो। नीति कहती है लाओ लाओ, धर्म कहता है देओ देओ। नीति स्वार्थ देखती है, धर्म परमार्थ देखता है। अधिक हुआ तो नीतिवान् अपने स्वार्थ के वक्त दूसरों को हानि न पहुँचाने का खयाल रख सकता है। मगर धर्मात्मा अपना सर्वस्व बलिदान करके भी दूसरों को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करेगा। नीति मगज की उपज है, धर्म हृदय की उपज है।

जिस प्रकार माता पिता का धर्म बालक को प्यार करने जितना ही नहीं है किन्तु उसका पालन पोषण और ठीक रास्ते लगा देने का है, उसी प्रकार आगे बढ़ने वालो और धर्म का निर्णय कर लो।' चित्रग्रीव ने अपने मित्र चूहे से कहा, देखो।

जाति द्रव्य गुणानाञ्च साम्यमेषां मया सह।
मत्प्रभुत्वफलं ब्रूहि कदा किं तद् भविष्यति॥

मेरी और इन कबूतरों की जाति एक है, द्रव्य भी एक है दो पंख मेरे हैं और दो दो पंख इनके भी हैं तथा कबूतरों के सामान्य गुण भी हम सब में समान हैं। फिर क्या कारण है कि ये लोग मुझे अपना नेता मालिक या राजा मानें। मुझे नेता मानने का इन को क्या फल मिला और मैंने नेता बनकर क्या विशेषता की।

[illegible] है कि [illegible] नहीं किन्तु [illegible]
[illegible] करते हैं [illegible]
[illegible] 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' [illegible]
[illegible] हैं। [illegible]

[illegible] है, [illegible] है, [illegible]
[illegible] है [illegible]

कायम रहेगा। मेरे बन्धन काटकर तू मेरे इस नाशवान् भौतिक शरीर की रक्षा कर सकेगा किन्तु मेरे साथियों के बन्धन काटकर मेरे अविनाशी यशः शरीर की रक्षा कर सकेगा।

मित्र की उदारता पूर्ण बातें सुनकर चूहे को बड़ा हर्ष हुआ और हर्षावेश में आकर धड़ाधड़ सब के बन्धन काटकर फेंक दिए। कहने लगा कि हे चित्रग्रीव! तेरे ये विचार त्रिलोक पति बनाने वाले हैं। जो केवल अपने बन्धनों को न काटकर सब के बन्धनों को काटने की कोशिश करता है वही तो त्रिलोक पति है। स्वयं कष्ट सहन करके दूसरों को सुख पहुँचाना यही मानव धर्म है। स्वार्थ से ऊँचा उठना ही मानव धर्म है।

चित्रग्रीव ने अपने साथियों को हिदायत दे दी कि बीती हुई घटना को याद करके कभी भविष्य में पड़ना मत 'बीति ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेहि'

आप लोग भी दूसरों को सुख पहुँचाने का प्रशस्त मार्ग अपनाइये और परमात्मा से यह प्रार्थना करिये कि—

दयामय, ऐसी मति हो जाय।
औरों के सुख को सुख समझूं सुख का करूं उपाय।
अपने सब दुःखों को सहलूं, पर दुःख देखा न जाय॥ दया०॥

राजकोट
२६—७—३६ का
व्याख्यान

नोट:—आज का व्याख्यान काठियावाड़ युवक जैन परिषद् की प्रार्थना से प्रकट यहाँ पर किया गया है।

सच्ची साधुता

प्रणमूं वासुपूज्य जिननायक, सदा सहायक तू मेरो। प्रा०।
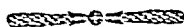
प्रार्थना में विचित्र प्रकार के विधान करने से उस में विशिष्टता आ जाती है। कोई भाई यह सोचकर प्रार्थना करना बन्द न करदे कि मैं प्रार्थना की विशिष्टता नहीं समझता अतः मैं क्यों इस झंझट में पड़ूं। जो हृदय से प्रार्थना करता है उसके मन में ऐसा विचार नहीं आता।

उदाहरण के लिए एक आदमी के हाथ में एक रत्न जटित अंगूठी है, वह उसकी कीमत नहीं जानता है। किसी जौहरी ने अंगूठी देखकर कहा, यह अंगूठी तुझे कहां से मिल गई, यह बहुमूल्य है। यह बात सुनकर वह आदमी प्रसन्न होगा या नाराज ! प्रसन्न होगा। वह अंगूठी को अपनी मानता है अतः उसे प्रसन्नता होती है। यदि अपनी न मानता होता और किसी दूसरे की ख्याल करता तब तो उसे प्रसन्नता न होती। वह कीमत नहीं जानता तो क्या हुआ। जौहरी की बात पर विश्वास करके प्रसन्न होता है।

इसी प्रकार प्रार्थना की विशालता या गूढ़ार्थ समझ में न आये तो भी ज्ञानियों द्वारा उसकी महिमा सुनकर यदि प्रार्थना को अपनी मानते हो तो अवश्य आनन्द आना चाहिए।

भगवान् वासुपूज्य की प्रार्थना में क्या तत्त्व भरे हुए हैं, उनका रहस्य बताने की मुझ में सामर्थ्य नहीं है फिर भी अपनी अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न करने का सब को अधिकार है। कोयल सब आम्रमंजरियों का गुणगान नहीं कर सकती फिर भी समय पर अपनी शक्ति के अनुसार कुछ बोलती ही है। सच्चे भक्त भी, परमात्मा की प्रार्थना के संपूर्ण रहस्य को बताने में असमर्थ होते हुए भी, निन्दा स्तुति का खयाल किये बिना, अपनी शक्ति के अनुसार कुछ कहते ही हैं। प्रार्थना में कहा है:—

> खल दल प्रबल दुष्ट अति दारूण जो चौतरफ करे घेरो ।
> तदपि कृपा तुम्हारी प्रभुजी अरिय न होय प्रकटे चेरो ॥

संसार में जिनको दुष्ट कहा जाता है, जिनका उद्देश्य दूसरों को कष्ट देना ही है, ऐसे दुष्ट यदि भक्तजन को अपने घेरे में ले ले, तो भी वह नहीं डरता है। भक्त उस समय यह सोचता है कि इनका घेरा मुझे कुछ और ही शिक्षा देता है। जिस प्रकार सच्चा विद्यार्थी शिक्षक की छड़ी को अपने लिए सहायक रूप समझता है, यह मेरी विद्योन्नति करने में बहुत सहायता करती है, उसी प्रकार दुष्टों द्वारा आये हुए विघ्नों को भक्त लोग प्रसाद मानते हैं। दुष्टों की तलवारें हमें परमात्मा की तरफ धकेलती हैं, ऐसा मानते हैं हमारी आत्मा सदा अविनाशी है। दुष्ट अधिक से अधिक हमारा शरीर नाश कर सकते हैं। शरीर नाश से हमारा कुछ नहीं बिगड़ता वह तो नाशवान् है ही। एक दिन नष्ट होगा ही। अहा! भक्तों का यह कितना ऊँचा खयाल है। वे हर हालत में निर्भय और दृढ़ चित्त रहते हैं। अतः आनन्द भी कभी उनका साथ नहीं छोड़ता। इस प्रकार की दृढ़ता और निर्भयता रखने से कभी दुष्ट भी अपनी दुष्टता छोड़कर मित्र या शिष्य बन जाते हैं। यह बात दूसरी है कि कोई इस भव में दमन होता है तो कोई परभव में मगर दृढ़चित्त व्यक्ति का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। कामदेव का पिशाच कुछ नहीं बिगाड़ सका। प्रह्लाद का तलवारें कुछ न कर सकीं। घानी में पिले जाने वाले मुनियों का पीलने वाले क्या बिगाड़ सके। मुनि उनको अपना मित्र ही मानते रहे आखिर उन्हीं को पश्चात्ताप करना पड़ा।

मतलब यह है कि जो कष्ट, उपसर्ग या परिषह को कसौटी मानता है, घबड़ाता नहीं है, वही परमात्मा की सच्ची प्रार्थना कर सकता है। जो ऐसी भावना रखकर अखंड प्रार्थना करता है वह प्रार्थना के गुणों को समझ सकता है। वह दुःखों को दुःख ही नहीं मानता। भयभीत व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। जो कुछ करता है वह निर्भय और वीर व्यक्ति ही करता है। जो निर्भय होकर प्रार्थना करता है उसके द्वारा यह भूमि धन्य मानी जाती है। जो ऐसे व्यक्ति के दर्शन करता है या वाणि श्रवण करता है, वह भी धन्य है।

शास्त्र चर्चा

राजा श्रेणिक मुनि के पास बैठा है। मुनि की योग्यता का अन्दाजा लगाकर ही उसने उनसे प्रश्न पूछा है। अयोग्य व्यक्ति को प्रश्न नहीं पूछे जाते। जो समाधान करने में समर्थ हों उन्हीं से प्रश्न पूछने चाहिये। राजा ने पूछा, मुनिवर! भोग भोगने की अवस्था में आपने संयम क्यों ग्रहण कर लिया।

राजा के प्रश्न से ऐसा मालूम होता है जैसे वह भोग भोगना अच्छा मानता है और संयम को बुरा मानता है। आजकल भी कई लोग संयम को बुरा बताते हैं और साधुओं की पेट भर के निन्दा करते हैं। वे साधुओं को समाज पर बोझा रूप समझते हैं। उनकी मान्यता में कुछ सचाई भी है। कारण कि बहुत से लोग साधुओं का स्वांग ग्रहण कर लेते हैं, साधुओं के उचित आचरण नहीं करते। साधु वेष में रहकर बुरे काम करते हैं। इन भ्रष्टाचारी और केवल वेषधारी द्रव्य साधुओं का आचरण देखकर सच्चे साधुओं की निन्दा करना बड़ा [illegible] नहीं है। खोटे की बात करनी चाहिए और सच्चे [illegible]

[illegible]

तथा चेष्टाएं देखकर साधुता असाधुता का निर्णय करना बड़ी बात नहीं है। 'आकृति र्गुणान्कथयति' शरीर की आकृति ही बता देती है कि कौन गुणी है।

मैं साधुओं से भी अपील करता हूँ कि महात्मा लोगों जागो! जागो। आपके कारण धर्म की निन्दा हो रही है अतः सम्भलो और विचार करो। साथ में श्रावकों से भी कहना है कि सब को एक धार से पानी मत पिलाओ। विवेक से काम लो।

राजा श्रेणिक उन मुनि को साधु ही समझता था और इसी लिए उनको वंदना की और उनकी प्रशंसा करके अपने मन की शंका उनके सामने रखी। उल्टा प्रश्न किये बिना बात का रहस्य प्रकट नहीं होता। मुनि ने भी सीधा उत्तर दिया है। आजकल के साधुओं की तरह यह न कह डाला कि चल तुझे इन बातों से क्या मतलब। तेरा काम राज्य करना है तू साधुओं की बातों को क्या जाने। किन्तु अनाथी मुनि कैसा जवाब देते हैं। यह जैन साधुओं का चरित्र प्रकट करता है। मेरी ताकत नहीं कि मैं अनाथी मुनि का हूबहू चित्र खींचकर आपके सामने रख सकूं। यदि वे साक्षात् होते तो भी उन्हें देखकर इतना आनन्द नहीं आता जितना गणधरों की वाणी द्वारा उनका चरित्र सुनकर आ रहा है। अनाथी मुनि ने तो राजा श्रेणिक को ही सुधारा होगा किन्तु गणधरों की कृपा से उनके चरित्र द्वारा न मालूम कितने लोग सुधरेंगे। बहुत भाई इस अध्ययन की प्रतिदिन स्वाध्याय करते हैं। पूज्य श्री श्रीलालजी म० सा० इस अध्ययन का प्रायः नित्य स्वाध्याय किया करते थे। वास्तव में यह अध्ययन है ही स्वाध्याय के योग्य।

राजा के प्रश्न का मुनि ने उत्तर दिया—

> अणाहोमि महाराय ! णाहो मज्झ न विज्जइ ।
> अणुकंपगं सुहिं वावि, किंचि नाभिसमेमहं । ९॥

हे महाराजा! मैं अनाथ था, मेरा रक्षण करने वाला कोई न था, न कोई मेरा पालन करने वाला था अतः मैंने संयम धारण कर लिया। साधु बन गया।

नाथ किसको कहते हैं, यह पहले जान लें। जो योग और क्षेम करे वह नाथ है। 'अलब्धस्य लाभो योगः, लब्धस्य परि पालनं क्षेमः' अप्राप्त वस्तु को प्राप्त कराना योग है और प्राप्त वस्तु की रक्षा करना क्षेम है। जो नहीं मिली हुई वस्तु को दिलावे और मिली हुई का परिरक्षण करे वह नाथ है।

अनाथी मुनि कहते हैं ' मेरा कोई नाथ न था, कोई मेरा रक्षण करने वाला न था, [illegible] समझकर भी मेरी कोई अनुकम्पा दया करने वाला न था, संकट समय में काम आने वाला कोई मित्र भी न था अतः मैंने संयम धारण कर लिया ' ।

मुनि का उत्तर सुनकर साधारण लोग यह खयाल करते हैं कि यह कोई रखडु दुखी होगा । खाने पीने सोने बैठने आदि की कठिनता होगी अतः दीक्षा लेली है । अथवा 'नारी मुई गृह सम्पत्ति नासी, मुण्ड मुण्डाय भये संन्यासी ' के कथनानुसार स्त्री वह मरी होगी, सम्पत्ति बरबाद हो गई होगी अतः सिर मुण्डा कर साधु बन गया है ।

राजा को भी मुनि का उत्तर सुनकर आश्चर्य हुआ होगा । उसे मन में यह कल्पना हुई होगी कि अभी तो इतना घोर कलियुगी समय नहीं आया है कि कोई आदमी रक्षक के अभाव में दुख पावे । आजकल भी यदि कोई दीन अनाथ जन हो तो उसे अनाथालय में भेज दिया जाता है । यह समय तो चौथे आरे का था । अतः राजा को मुनि का उत्तर सुनकर बड़ा अचरज हुआ ये मुनि ऋद्धि सम्पन्न मालूम होते हैं फिर इनके लिए ऐसी नौबत कैसे आगई इनका कथन ऐसा मालूम देता है जैसे चिन्तामणि रत्न कहता हो, मुझे कोई रखने वाला नहीं है, कल्पवृक्ष कहे कि जगत् में मेरा आदर नहीं है और कामधेनु कहे कि मुझे जगत् में कहीं स्थान नहीं । जिनका शरीर शंख, चक्र, गदा पद्म आदि लक्षणों से युक्त हो, उनका कोई रक्षणहार नाथ न हो यह कैसे संभव हो सकता है ।

हँसते और विचार करते हुए राजा ने मुनि से कहा, ऋद्धि सम्पन्न मालूम देते हुए भी आप अपने को अनाथ कैसे बता रहे हैं । कवि लोग कहते हैं कि विधाता हंस से रुठ कर उसके रहने के कमल वन को नष्ट कर सकता है, मानसरोवर सुखा सकता है लेकिन दूध पानी को पृथक् पृथक् कर देने के उसकी चोंच के गुण को तो वह भी नहीं मिटा सकता । मैं नहीं जानता कि आप कौन हैं किन्तु आपके देखने मात्र से स्पष्ट मालूम देता है कि आप ऋद्धि सम्पन्न व्यक्ति हैं । मैं इस प्रश्नोत्तर को लम्बा करना नहीं चाहता, चलिये यदि आप अनाथ हैं तो मेरे साथ चलिए । मैं आपका नाथ होता हूं ।

किसी बात को ऊपर से देखकर उसका उल्टा अर्थ नहीं करना चाहिए, मुनि यह उत्तर विचार करने लायक न मालूम होता था फिर भी राजा ने यह नहीं कहा कि आप अन्यथा भाषण कर रहे हैं । उसने सोचा यह हालत यदि नाथ न होने के कारण ही मानने

घर बार छोड़कर दीक्षा अंगीकार की है तो मैं आपका नाथ बनता हूं। आप मेरे म चलिये। मेरे राज्य में किसी बात की कमी नहीं है।

राजा श्रेणिक ने विवेक रखकर जैसा सुन्दर उत्तर दिया वैसा विवेक आप लोग भी रखिये। कोई बात आपको ठीक न जंचे अथवा आपकी समझ में न आये तो आप एक दम से किसी पर आक्षेप मतकर डालिये।

अब मैं जूनागढ के दीवान साहिब से कुछ कहता हूं। मुझे दीवानसा से कुछ लेना देना नहीं है, न किसी मुकदमा में ही उनकी सिफारिश की मुझे जरूरत है। मगर उनपर आप लोगों की अपेक्षा बोझा अधिक है। उनका बोझा हलका करने के लिए कुछ कहता हूं और जो कुछ कहूंगा वह आपके लिए हितकारी होगा अतः ध्यान से सुनिये। पचीस व्यक्ति जारहे हों, उनमें से किसी के सिर भार रखादो तो सब का ध्यान उसीकी ओर आकर्षित होगा। दीवान सा पर संसार का बोझा अधिक है अतः इनको लक्ष्यकर के खास कहता हूं।

सुना है कि मलाबार से सागवान आदि लकड़ियां लाई जाती हैं। जब कि लकड़ियां दरिया में (समुद्र में) पड़ी रहती हैं तब उनको एक डोरी से बांधकर एक बच्चा भी जिधर चाहे उधर उनको घुमा फिरा सकता है। किन्तु जब लकड़ियां बाहर निकाली जाती हैं तब उन्हें उठाने के लिए अनेक आदमियों की जरूरत होती है। इस अन्तर का कारण क्या है। जब तक लकड़ियां दरिया में थी तब तक उनका आधार दरिया ही था। बाहर निकलने पर दरिया आधार न रहा। आप लोगों से मैं पूछता हूं कि आप लोग संसार व्यवहार का सारा बोझा अपने सिर पर ही ले लोगे अथवा दरिया के समान किसी का सहारा ग्रहण करोगे। यदि सारा बोझा अपने ऊपर ही ले लोगे तो उसके भार से दब जाओगे अतः परमात्मा रूपी दरिया पर अपना बोझा छोड़ दीजिये जिससे आपका काम पानी में लकड़ी के समान हल्का हो जाय।

संसार व्यवहार में किस तरह रहना चाहिए यह बात एक उदाहरण से समझाता हूं। वृक्ष पर बन्दर भी बैठते हैं और पक्षी भी बैठते हैं। जब वृक्ष के टूटने का अवसर आये तब किसको दुःख होगा। पक्षी तो कह सकते हैं कि हम वृक्ष के ही सहारे नहीं हैं, हमारे पंख हैं, जब तक वृक्ष कायम है इस पर बैठते हैं जब वह टूट जाता है हम अपने पंखों के सहारे उड़ जाते हैं।

इसी प्रकार इस संसार रूपी वृक्ष के सहारे दो प्रकार के आदमी बैठे हुए हैं। एक धर्म को मानने वाले और दूसरे न मानने वाले। धर्म के मानने वालों को अपना संसार गिर जाने का भय नहीं होता उन्हें आत्म विश्वास होता है कि हम केवल स्त्री पुत्र धन कुटुम्ब जाति आदि के सहारे पर ही नहीं हैं, किन्तु हमें परमात्मा या अपनी आत्मा का भी सहारा है जो कभी नहीं टूटता। धर्मात्मा लोग संसार का सारा बोझा अपने ऊपर नहीं समझते। वे परमात्मा के सहारे पर रहते हैं अतः संसार का भार उन पर हो तो भी वह पानी में लकड़ी के समान बहुत हल्का होगा। आप लोग भी संसार को नाशवान् मानते हुए धर्म की सेवा करोगे तो यह संसार आपके लिए भार रूप न होगा और आप इसके नीचे न दब सकोगे।

सुदर्शन चरित्र—

धर्म का सहारा किस प्रकार लेना चाहिए यह बात सुदर्शन—चरित्र द्वारा बताता हूं।

> कला बहत्तर अल्पकाल में सीख हुआ विद्वान।
> प्रौढ़ पराक्रमी जान पिता ने किया विवाह विधिठान॥ रे धन०॥

संसार की सब ऋद्धि मिल जाय किन्तु यदि शील न हो तो सब ऋद्धि धूल समान है। दूसरी ओर केवल शील मिल जाय और दुनिया की कोई ऋद्धि न मिले तो भी कुछ हर्ज नहीं है। चिन्तामणी मिल जाने पर सेर दो सेर चनों की क्या कमी रह सकती है। दुःख है कि आज कल लोग शील को बड़ा नहीं मानते भोग को बड़ा मानते हैं। भोग की सामग्री न मिलने पर रोने लगते हैं।

शील का अर्थ है सदाचार! सदाचार का अर्थ है पापों से बचकर रहना। संक्षेप में हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार और मदिरापान ये पाँच पाप हैं। इन पांचों में प्रायः सब पाप आ जाते हैं। जिसमें ये दुर्गुण नहीं होते उसमें दूसरा कोई पाप नहीं हो सकता। दीपक के होने पर अन्धकार नहीं रहता इसी तरह शील के होने पर कोई पाप नहीं रहता। मगर जो कुछ होता है वह पुरुषार्थ से होता है। यह कथा इसी तत्त्व पर अवलम्बित है। पूर्व भव में सुदर्शन ने अल्पकाल ही में विशेष पुरुषार्थ द्वारा बहुत विकास कर लिया था। सरसरी तौर से देखने में मालूम होता है कि नवकार के भरोसे रहने से उसको

मृत्यु होगई। किन्तु बात यह नहीं है। आगे जिस ऋद्धि सिद्धि का वर्णन किया जायगा वह नवकार मंत्र के प्रताप से ही सुदर्शन को प्राप्त हुई है।

पांच धायों और अठारह देश की दासियों द्वारा उसका लालन पालन और सामान्य शिक्षण हुआ था। जब वह आठ वर्ष का हो गया तब उसके पिता ने विद्या पढ़ाना आरंभ कर दिया। एक कवि ने कहा है—

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंस मध्ये बको यथा॥

वे माता पिता अपनी संतान के शत्रु हैं, जो उसे नहीं पढ़ाते। वह संतान, हंसों की पंक्ति में बगुला जैसे शोभा नहीं पाता, वैसे ही सभा में शोभित नहीं होती। आप लोग अपनी संतान को हंस जैसी बनाना चाहते हो या बगुले जैसी। यदि हंस जैसी बनाना चाहते हो तो उसे विद्या पढ़ाओ और संस्कारी बनाओ। आप लोग कह सकते हैं कि हमारे राजकोट में सब लोग पढ़े लिखे हैं यहां अनेक स्कूल्स हैं अतः यह उपदेश यहां व्यर्थ है। किन्तु जो पढ़े लिखे लोग हैं उनकी विद्या कैसी है, इस तरफ भी ध्यान देना चाहिये।

सा विद्या या विमुक्तये

विद्या वह है जो मुक्त करे। बन्धन से छुड़ाये। किस के बन्धन से छुड़ाये? विषय विकार और पाप के बन्धन से। आधुनिक शिक्षा ऐहिक जीवन की रक्षा करने में भी समर्थ नहीं है वह पारमार्थिक जीवन की क्या रक्षा करेगी। इस ग्रेजुएट्स एक साथ जंगल में जा रहे हों, मार्ग में कोई बदमाश उन्हें लूटने लगे तो क्या वे अपना रक्षण कर सकते हैं? भाग तो न जाएंगे? सुना है एक सांप के भय से साठ आदमी मर गये। यदि उनमें एक भी आत्मा बली होता और अपना भोग देकर भी दूसरों को बचा सकता तो सब की मृत्यु न होती। आजकल बातें बनाने वाले बहुत हैं। कहा भी है—

'आओ मियांजी खाना खाओ, करो बिस्मिल्लाह हाथ धुलाओ।
आओ मियांजी छप्पर उठाओ, हम बुड्ढे जवान बुलाओ'॥

इस कहावत में बताये हुए मियांजी खाना खाने के समय तो जवान थे मगर छप्पर उठाने के वक्त बुड्ढे बनगये। इसी प्रकार बातूनी बहुत हैं मगर काम करने वाले थोड़े हैं।

ही कमजोर है। जब धर्म की बात कही जाती है तब सिर चढ़ने लग जाता है। धर्म कोई गहन वस्तु नहीं है। विवेक पूर्वक बुरे कामों से बचना और अच्छे कामों में संलग्न होना धर्म है। आंख और कान से अच्छे रूप और अच्छी बातें भी सुनी जा सकती हैं और बुरी भी। विवेक में धर्म है।

सुदर्शन थोड़े अर्से में ७२ कलायें सीखकर होशियार होगया। बड़ी उम्र वाले जिस बात को बहुत समय में नहीं सीख सकते उसी बात को छोटी उम्र वाले जल्दी सीख सकते हैं। बड़ी उम्र वालों के दीमाग में सांसारिक प्रपंचों का बहुत भार रहता है और छोटे बच्चों का दिमाग साफ रहता है। दूसरी बात पूर्व जन्म का संस्कार भी जल्दी विद्या ग्रहण करने में कारण है। जिसने पिछले जन्म में विद्याध्ययन किया है वह इस जन्म में थोड़े परिश्रम से बहुत अधिक ग्रहण कर लेता है। बहुत से लोग घोर परिश्रम करके भी कुछ याद नहीं रख सकते। इस अन्तर का कारण पूर्व जन्म का संस्कार है। पूर्व जन्म के संस्कार के भरोसे इस जन्म के प्रयत्न को कभी न भूलना चाहिए। इस जन्म में खूब प्रयत्न करना चाहिए ताकि भविष्य के लिए नींव बन जाय। निश्चय और व्यवहार दोनों को साथ रखकर चलना चाहिए। ऊपर चढ़ने के लिए सिढ़ी की जरूरत होती है, मगर पांव हों तब सीढ़ी काम देती है। दोनों के होने पर काम बनता है। जिस वृक्ष का बीज ही बिगड़ा हुआ हो उसका सुधार करना कठिन है। किन्तु जिसका बीज अच्छा है केवल वृक्ष में ऊपरी खराबी है उसका उपायों द्वारा सुधार शक्य है। यही बात संस्कार या पूर्व जन्म की पूंजी के विषय में भी है।

अब कोई यह कहे कि हमारा पूर्व जन्म तो बीत चुका है अतः इस जन्म में तो वही होगा जो रेख पड़ चुकी है। किन्तु यह बात ठीक नहीं है। आप आस्तिक हैं नास्तिक नहीं। आप मकान बनवाते हैं वह केवल अपने लिए नहीं बनाते मगर भावी पीढ़ी का भी ख्याल रखते हैं। इसी प्रकार धर्म करते वक्त या विद्याध्ययन करते वक्त यह ख्याल रखना चाहिए कि इस जन्म में नहीं तो आगामी जन्म के लिए सुकृत काम आयगा। 'कृतं न विनश्यति' करणी का फल वृथा नहीं जाता। फल मिलने में देरी हो सकती है। सुभग ग्वाला मौता हुआ मंत्र उस जन्म में फलित न हुआ तो क्या हुआ। अगले जन्म में मंत्र के प्रभाव से ही उसे सब सुयोग मिला है। यदि सेठ भी उसे तुच्छ समझ कर मंत्र न

...र, जैसा कि कुछ भाई कहते हैं शूद्र मंत्र के अधिकारी नहीं होते, तो क्या ... भला मन सुधर सकता है ? कदापि नहीं ! धर्मात्मा लोग ऐसा नहीं करते । वे खुद सुखी होते हैं और दूसरों को भी सुखी बनाने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं । आप लोग स्वयं ... रहो और शुद्ध विचार रखो तथा दूसरों के लिए भी यही करोगे तो कल्याण है ।

राजकोट
२८—७—३६ का
व्याख्यान

❀ राजा का आश्चर्य ❀

रे जीवा विमल जिनेश्वर सेविये ॥ प्रा० ॥

परमात्मा की प्रार्थना करते समय भक्त को मन में कैसी भावना रखनी चाहिए, यह बात इस प्रार्थना में बताई गई है। कहा गया है, हे आत्मन् तू अपनी पूर्व स्थिति को याद कर। पूर्व स्थिति का स्मरण करने से बहुत लाभ होता है, उन्नति होती है। पहले कहां किस स्थिति में रहा, इसका विचार करने से मालूम होगा कि कितनी कठिनाई से यह भव प्राप्त हुआ है। वर्तमान भव की दस बीस, पचास पचास वर्ष की आयु को व्यर्थ न जाने देकर उचित उपयोग में लगाने की बुद्धि, पूर्व भव का स्मरण करने से पैदा होती है। ऐसी बुद्धि उत्पन्न होने पर यही विचार निश्चित रूप से आयेगा कि—

रे जीवा विमल जिनेश्वर सेविये ।

हे जीव ! तू भगवान् विमलनाथ की सेवा कर। सेवा करने के लिये प्रार्थना में उपाय बताया है कि मोहनी कर्म को नष्ट करके–क्षय करके सेवा कर। प्रार्थना के समय मनमोहन वस्तुओं को तुच्छ मान। उदाहरणार्थ आपके पास एक रुपया है। आप उस रुपये का त्याग नहीं कर सकते। किन्तु यदि रुपये की एवज में मोहर मिलती हो तो आप रुपये का त्याग कर सकते हो। यदि रत्न मिलता होतो आप मोहर को त्यागने में भी हिचकिचाहट न करोगे। इसी प्रकार यदि परमात्मा की भक्ति मिलती होतो उसके लिए सर्वस्व सब कुछ त्यागने के लिए उद्यत रहना चाहिए। भक्ति के सामने जगत् की सब जड़ वस्तुएं तुच्छ हैं। जो कुछ होता है करने से होता है कोरी बातें बनाने से कुछ नहीं होता। मैं करूंगा तो मुझे लाभ होगा और आप करोगे तो आपको। मैं तो जो बात है, आपके सामने रख रहा हूं। एक आदमी परोसने का काम करता है। यदि वह सब को परोस दे और खुद न खावे तो वह भूखा ही रहेगा। परोसने वाले को क्या लाभ हुआ। इसी प्रकार परोसने वाले परोसदे और जीमने वाले ऊंघते रहें भोजन का उपयोग न करें तो भी परोसना व्यर्थ हो जाता है।

मोहिनी कर्म नाश करके प्रार्थना करने से बचे हुए मोहिनी कर्म का भी नाश हो जाता है। पहले धन स्त्री पुत्रादि पर का मोह हलका करके भगवान् की प्रार्थना करिये। प्रार्थना करने से मोहनीय कर्म का अवशिष्ट अंश भी नष्ट हो जायगा और आप भगवान् बन जाओगे। यदि आप सम्पूर्ण मोह को न छोड़ सको तो कम से कम सांसारिक कामों को मुख्य मत मानो उन्हें गौण समझो। आज तो प्रभु प्रार्थना गौण हो रही है और दुनियादारी के काम मुख्य बन रहे हैं। यही भूल है। आप इस आदत को बदल दीजिये। प्रार्थना को मुख्य बनाईये और दुनियादारी को गौण। प्रार्थना के समय सांसारिक पदार्थों में से ममत्व बुद्धि को हटा दीजिये।

शास्त्र चर्चा—

यही बात अब शास्त्र द्वारा बताता हूं। राजा श्रेणिक अनाथी मुनि से पूछता है कि आपने भरे यौवन में दीक्षा क्यों अंगीकार की है। अनाथी मुनि ने उत्तर दिया कि मेरा कोई नाथ न था, मैं अनाथ था, अतः दीक्षा ली है। मुनि का उत्तर सुनकर राजा बहुत चकित हुआ।

तओ सो पहसिओ राया, सेणिओ मगहाहिवो।
एवं ते इड्ढिमन्तस्स, कहं नाहो न विज्जई॥ १०॥

मगधदेश का अधिपति राजा श्रेणिक मुनि का उत्तर सुनकर हँसने लगा और कहने लगा कि इस प्रकार के ऋद्धिसम्पन्न तुम्हारे नाथ कैसे नहीं है। यहाँ श्रेणिक शब्द से राजा का परिचय हो जाने पर भी मगधाधिप शब्द का प्रयोग इस लिए किया गया है कि मुनि के उत्तर से हँसने वाला व्यक्ति कोई साधारण आदमी नहीं है किन्तु मगध देश का मालिक है। कुछ लोग पुनरुक्ति दोष को दूर करने की कोशिश में रहते हैं गणधरों ने जान बूझकर पुनरुक्ति का प्रयोग किया है। माता जिस प्रकार बड़े प्रेम से बार बार एकही बात को अपने बच्चे को समझाती है उसी प्रकार गणधर भी बार बार एकबात को समझाते हैं जिससे जन साधारण भी शास्त्रों की गहन बातों को हृदयंगम कर सकें। दूसरी बात साधारण और विशेष व्यक्तियों के हँसने में भी अन्तर होता है।

हँसकर राजा कहने लगा कि आप जैसे ऋद्धिसम्पन्न व्यक्ति को कोई नाथ न था यह बात मानने में नहीं आती। अब पहले यह जान लेना चाहिए कि ऋद्धि किसे कहते हैं। ऋद्धि दो प्रकार की होती है। १ बाह्य ऋद्धि २ अन्तरंग ऋद्धि। बाह्य ऋद्धि में धन धान्यादि का समावेश होता है और अन्तरंग ऋद्धि में शरीर की स्वस्थता और इन्द्रियों का पूर्ण विकसित होना है। मुनि के पास उस वक्त बाह्य ऋद्धि न थी किन्तु अन्तरंग ऋद्धि थी। उनकी आकृति बड़ी अच्छी थी। कहावत है कि '**यत्राकृतिस्तत्र गुणाः वसन्ति**' जहां सुन्दर आकृति हो वहाँ गुण निवास करते हैं। और आकृति गुणों को कह देती है '**आकृतिर्गुणान् कथयति**'। आकृति शुद्ध होने से गुण भी शुद्ध होते हैं। जिसकी आँखें बड़ी हो और उनमें लाल डोरे पड़े हो, कान लम्बे, प्रशस्त वक्षस्थल, चौड़ा कपाल और यथायोग्य प्रमाण युक्त इन्द्रियाँ हो, वह गुणवान भी होगा। यही बात सोचकर राजाने कहा कि ऐसे व्यक्ति का कोई नाथ न हो यह कैसे संभव हो सकता है।

इस विषय में टीकाकार ने अपना अभिप्राय जाहिर किया है कि जहां सुन्दर आकृति हो वहां गुण निवास करते हैं और जहां गुण हो वहां लक्ष्मी भी निवास करती है। लक्ष्मी गुणवान् को ही वरती है, गुण हीन को नहीं। आप पूछ सकते हैं कि बहुत से गुण हीन और निकम्मे लोगों के पास भी लक्ष्मी दिखाई देती है, इसका क्या कारण है। इसका सामान्य उत्तर यह है कि आपको उस व्यक्ति में गुण न दिखाई देते हों किन्तु कम से कम व्यावहारिक गुण तो उसमें होंगे ही। इसके बिना न तो वह लक्ष्मी अर्जन कर सकता है और न उसका रक्षण ही। यदि किसी लक्ष्मीवान् में दूसरों को अपनी मोटर की झपट में न आने देना जितना भी गुण न होतो उसके पास लक्ष्मी कैसे ठहर सकती है। फिर तो उसे

पेट की हवा खानी पड़ेगी । बहुत से पढ़े लिखे लक्ष्मीवालों की टीका किया करते हैं मगर उनमें नौकरी करने का ही मादा होता है, व्यापार करने के लिए जिस हिम्मत और गुणों की आवश्यकता होती है। वे उन में नहीं होती अतः विद्यावान् होते हुए भी धनवान् नहीं बन सकते। यहां व्यावहारिक गुणों की बात चल रही है। हेय उपादेय की बात नहीं चल रही है।

हां, तो जहां गुण हैं वहां लक्ष्मी है। जहां लक्ष्मी होती है वहां आज्ञा भी चलती है। लक्ष्मीवान् के अनेक नौकर चाकर आदि होते हैं जो उस की आज्ञाओं का पालन करते हैं। आज्ञा का पालन होना ही राज्य है। जिस की आज्ञा का पालन होता है वह राजा है। राजा मुनि से कहता है कि आपकी अनाथता मालूम नहीं पड़ती। बल्कि आप ऋद्धि सम्पन्न दीख रहे हैं। खैर मैं इस पंचायत में नहीं पड़ना चाहता कि पहले आप कैसे थे। यदि आपने अनाथ होने के कारण दीक्षा ग्रहण की है तब तो दुःखी होकर संयम लिया है और दुःख पूर्वक लिए हुए संयम का निर्वाह कब तक हो सकता है। अतः

> होमि णाहो भयन्ताणं, भोगे भुंजाहि संजया ।
>
> मित्तनाइपरि वुडो, माणुस्सं खु सुदुल्लहं ॥ ११ ॥

हे मुनिवर ! मैं आपका नाथ बनता हूं और आप मित्र ज्ञाति से परिवृत होकर भोग भोगिये। मनुष्य जन्म मिलना बड़ी दुर्लभ बात है। आपको यह मिला हुआ है अतः सांसारिक भोग भोगकर इसका सदुपयोग करिये। मैं मगधाधिप हूं। मेरे यहां पर किसी बात की कमी नहीं है। मेरे नाथ बन जाने से आपका सब दुःख दूर हो जायगा। जिस दुःख से दुःखी होकर आपने यह संयम धारण किया है, वह दुःख, आपका नाथ बन कर मैं मिटा देना चाहता हूं।

क्या राजा श्रेणिक पागल था जो एक संयम धारी मुनि को संसार के क्षुद्र भोग भोगने के लिए निमंत्रित कर रहा है। राजा पागल न था। इस कथन का क्या रहस्य है और गणधरों ने इसे शास्त्र में क्यों स्थान दिया है, यह बात समझनी चाहिए। आज आप देख रहे हैं कि जिस व्यक्ति के पास भोग भोगने की सामग्री मौजूद है उसकी भोगों के लिए कोई मनुहार नहीं करता किन्तु जिसने भोगों का त्याग कर दिया है उसकी मनुहार करने वाले बहुत मिलेंगे। वैसे अनेक आदमी इधर उधर डोला करते हैं, उन से कोई नहीं कहता कि चलो हमारे यहां पर रहना किन्तु यदि कोई त्यागियों का रूप ले उन को अपने

यहां के आकर यह कहा जाता है कि हम आपका इन्तजाम कर देंगे आप क्यों यह कठिन व्रत अंगीकार कर रहे हो। यह भोग के त्याग की महिमा है। जिसने दिल से भोगों का त्याग कर दिया है उसके इर्दगिर्द भोग चक्कर काटा करते हैं किन्तु सच्चे त्यागी महात्मा वमन किये हुए को पुनः नहीं अपनाते। जो भोगों के लिए लालायित रहता है भोग उससे दूर भागते हैं। जो लाओ, लाओ, करता रहता है उसे वह वस्तु नहीं मिलती और न वैसी मनुहार ही उसकी होती है।

राजाने मुनि से कहा कि आप चलिये और मेरे राज्य में ऐश आराम कीजिये। आप यह न खयाल कीजिये कि मैंने घर बार और कुटुम्ब कबीला छोड़ दिया है अतः अब किनके साथ रह कर भोगोपभोग भोगूंगा। आपको मित्र भी मिलेंगे और ज्ञाति भी। आपने दीक्षा लेकर कोई बुरा काम नहीं किया है जिससे कि मित्र और ज्ञाति वाले आप से घृणा करने लगें। मित्र और ज्ञाति के लोग आपको आदर की दृष्टि से देखेंगे और आपका सन्मान करेंगे। वे यही कहेंगे कि अच्छा हुआ सो संयम छोड़ दिया और हमारे में आ मिले हो। मैं आपको यह बात किसी अन्यकारण से नहीं कह रहा हूं किन्तु मनुष्य जन्म की दुर्लभता का खयाल करके कह रहा हू। इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को भोगभोगे बिना वृथा खो देना ठीक नहीं मालूम देता।

आजकल भी अनेक लोगों का यह विचार है कि साधु बन कर जीवन का सत्यानाश करना है। अच्छा खाना पहनना और नवीन आविष्कार करना, इसी में जीवन की सार्थकता है। साधु तो इनके त्याग का उपदेश देते हैं अतः उनके पास आकर वक्त जाया करना है। ऐसे लोगों की दृष्टि में भोग भोगना और दुनियां को अपनी कुछ देन दे जाना ही मनुष्य जन्म की सार्थकता है श्रेणिक राजा भी यही बात कह रहा है। वह विषय भोग में ही जीवन की उपयोगिता समझता है। यह बात तो सोलह आना सत्य है। कि मनुष्य जन्म परम दुर्लभ है। किन्तु इस बात में बड़ा विवाद है कि इसका उपयोग भोग भोगने में करना चाहिये अथवा भोगों का त्याग करके ईश्वरमय बन जाने में करना चाहिए।

एक पक्ष का है कि मनुष्य जन्म, अच्छे वस्त्र बनाने, कल कारखाने खोलकर जीवनोपयोगी साधन सामग्री बनाने तथा सुन्दर भवनों का निर्माण करके उनका उपभोग करने के लिए मिला है। यदि मनुष्य यह काम न करेगा तो क्या पशु करेंगे? क्या सुन्दर वस्त्रों और भवनों का निर्माण पशु करेंगे? हवाई जहाज और रेलगाडी का आविष्कार मनुष्य ही कर सकता है और वही उनका उपयोग कर सकता है।

दूसरे पक्ष में ज्ञानी कहते हैं कि मनुष्य जन्म की सार्थकता अच्छे वस्त्र मकान और विमान आविष्कार करने मात्र में ही नहीं है। ये काम तो पशु पक्षी और कीड़े मकौड़े भी कर सकते हैं। मनुष्य जन्म की विशेषता इसी बात में है कि जो काम सृष्टि के अन्य प्राणी नहीं कर सकते वह काम करना। हवाई जहाज अभी चले हैं किन्तु पक्षी कब से आकाश उड्डयन करते हैं और वह भी किसी की सहायता के बिना स्वतंत्रता पूर्वक करते हैं। हवाई जहाज में पेट्रोल खत्म होते ही नीचे आकर गिर जाता है किन्तु पक्षियों को पेट्रोल की भी आवश्यकता नहीं होती। मनुष्य इधर उधर से कपास ला कर कपड़े बनाने में अपनी शेखी बघारता है किन्तु कई जीव-जन्तु ऐसे हैं जो अपने शरीर में से ही तन्तु निकाल कर मनुष्य कृत वस्त्र से सुन्दर वस्त्र बना लेते हैं। आप कितना भी पतले पोत का कपड़ा बनाइये सूक्ष्म दर्शक यन्त्र से उस में छेद दिखाई देंगे किन्तु मकड़ी ऐसा जाला बनाती है जिस में छेद नहीं दिखाई देता। आपके भवनों से भी बढ़ कर कीड़े सुन्दर भवन बना देते हैं। दीमकों की बांबी इतनी ऊंची होती है कि मनुष्य का हाथ भी नहीं पहुँच पाता। दीमक कहां से मिट्टी निकाल कर कहाँ चढ़ाती है और कितना सुन्दर घर बनाती है। चिड़ी कैसा अच्छा मकान बनाती है। वह मकान में ऐसे २ हक् रखती है कि देखकर दंग रह जाना पड़ता है। उसके मकान में प्रसूतिगृह अलग होता है, भोजन रखने का गृह अलग होता है और बच्चों का घर अलग होता है। आपका मकान आपके शरीर के प्रमाण से अधिक से अधिक दस गुना बड़ा होगा किन्तु उनका मकान उनके शरीर प्रमाण से कई गुना अधिक बड़ा होता है।

अब रही कला और आविष्कार की बात। क्या शहद की मक्खी की कला मनुष्य से कम है? इनकी कला देखकर आधुनिक वैज्ञानिक लोग भी दंग रह जाते हैं। मक्खियें किस प्रकार सब घर बराबर आकार बनाती हैं, मानो सूक्ष्म माप [illegible] लेकर ही बनाये हों। किस प्रकार मैन लगाकर उसमें शहद भरती हैं। कम से कम मैन लगाती हैं और अधिक से अधिक शहद भरती हैं। जब मैन लगाती हैं तब सब मिलकर एक साथ लगाती हैं और जब शहद भरती हैं तब भी एक साथ मिलकर [illegible]। कितनी यह [illegible] इनके काम में है! क्या आपकी कला इनकी कला से बढ़ कर है।

मतलब कहने का यह है कि यदि मनुष्य इसी बात में अपनी विशेषता समझता है कि वह सुन्दर वस्त्र मकान आदि बना सकता है तो यह उसकी भूल है। पशु पक्षी और कीड़े मकौड़े भी यह काम कर लेते हैं और कई कई मनुष्यों से काम में अधिक [illegible],

इधर के पुद्गल उठाकर उधर रखना और अपनी छाति या कला पर अभिमान करना मनुष्य जन्म की सार्थकता नहीं है वस्तुतः मनुष्य जन्म की सार्थकता आत्मा से परमात्मा बनने की कला में है। यह काम मनुष्य जन्म के बिना नहीं हो सकता और यही कारण है कि ज्ञानियों ने मनुष्य जन्म को महान् दुर्लभ बताया है। यदि आत्मा से परमात्मा बनने के लिए प्रयत्न किया जाय तो मनुष्य जन्म सार्थक है अन्यथा उसकी कोई विशेषता नहीं है। भक्त तुकाराम कहते हैं।

> अनन्त जन्म जरी केल्या तपराशि तरीहान पवसी मयो देह ऐसा हा निदान।
> लागलासी हाथी त्यांची केली माहीं भाग्यहीन॥

अर्थात् अनन्त जन्म तक पुण्यराशि एकत्रित करने पर यह मनुष्य जन्म मिलता है। पुण्यबल से यह दुर्लभ मानव देह हाथ में आया है फिर भी भाग्यहीन व्यक्ति मिट्टी की तरह इसको खो देते हैं।

भगवान् विमलनाथ की प्रार्थना में कहा गया है कि जीव सूक्ष्म निगोद से बादर निगोद में, बादर निगोद से स्थावर योनि में अर्थात् पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति में जन्म लेता है। फिर वे इन्द्रिय, ते इन्द्रिय, चतुरिंद्रिय और पंचेन्द्रिय में क्रमशः आता है। पंचेन्द्रिय में भी मनुष्य की योनि बड़े भाग्य से ही प्राप्त होती है। मनुष्य योनि के साथ आर्य क्षेत्र और उत्तम कुल का योग मिलना और कठिन है। यदि यह भी योग मिल जाय तो सत्श्रद्धा और तदनुकूल आचरण होना सब से कठिन है। मनुष्य जन्म की सार्थकता इसी कठिन मंजिल को ते करने में है। धर्माचरण अथवा जीव से शिव बनने का काम इसी दुर्लभ देह से शक्य है अतः जीव से शिव बनने में ही मनुष्य देह की सार्थकता है। भोग भोगने में मनुष्य जीवन वृथा बरबाद हो जाता है कोई भी बुद्धिमान आदमी बावना चन्दन को चूल्हे में जलाना पसन्द नहीं करेगा। मानव देह के द्वारा भोग भोगना, बावना चन्दन को भट्टी में झोंकना है। यह इसका बेहतर उपयोग नहीं है। राजा श्रेणिक ने अपने विचारों के अनुसार अनाथी मुनि को भोग भोगने के लिए प्रार्थना की है। मुनि के उत्तर को सुनकर राजा आश्चर्य चकित होकर मुस्करा रहा है। और राजा की प्रार्थना सुनकर मुनि भी मुस्करा रहे हैं। अपना अपना पक्ष लेकर दोनों मुस्करा रहे हैं। मुनि तो यह विचार करके मुस्करा रहे हैं कि जो स्वयं अनाथ हो वह दूसरों का क्या नाथ बनेगा। और राजा इस लिए मुस्करा रहा है कि ऐसे व्यक्ति को नाथ न मिलना बड़ी ताज्जुब की बात है। राजा के द्वारा नाथ बनने के लिए की गई प्रार्थना का मुनि क्या उत्तर देते हैं यह बात आगे बताई जायगी।

सुदर्शन-चरित्र !

अब मैं सुदर्शन की बात कहता हूं। सुदर्शन की कथा साधुता की कथा है। इसे सुन कर आप भी भोगों से निवृत्त होने के लिये प्रयत्न कीजिये। एक दम प्रगति न कर सको तो धीरे २ आगे बढ़िये।

कला बहत्तर अल्प काल में, सीख हुआ विद्वान।
प्रौढ पराक्रमी जान पिता ने, किया ब्याह विधि ठान ॥१६॥धन॥
रूप कला यौवन वय सरीखी, सत्य शील गुणवान्।
सुदर्शन और मनोरमा की, जोड़ी जुड़ी महान् ॥ १७॥ धन० ॥

संसार की बातों को गौण और आत्म-कल्याण की बातों को मुख्य कैसे बनाना यह बताने के लिए ही यह कथा है। संसार में शारीरिक मानसिक और बौद्धिक विकास की शिक्षा की जरूरत पूरी है किन्तु शास्त्र कहते हैं कि इन सब शिक्षाओं को गौण बनाकर आत्म—कल्याण अर्थात् आध्यात्मिक शिक्षा की जरूरत को मुख्य बनाओ। आजकल इस बात से उल्टा बर्ताव हो रहा है अतः संसार बहुत दुःखी है।

इस कथा का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है शील—सदाचार। कुछ लोग कहते हैं कि साधु लोग किस काम के। रोटी खाकर पड़े रहते हैं। यदि कोई साधु खाकर पड़ा ही रहता है और आत्म—कल्याण नहीं करता वह सचमुच निकम्मा है किन्तु जो साधु आत्म कल्याण और जगत् कल्याण के लिए अहर्निश प्रयत्न करते हैं वे भार रूप नहीं हैं। ऐसे महात्मा प्रकट रूप से न भी बोलते हों फिर भी वे संसार के लिए बड़े उपयोगी हैं। ऐसे महात्माओं का जहां चरण स्पर्श हो वहां आनन्द ही आनन्द है। आप चाहे महात्माओं को भूला दें मगर महात्मा आपको नहीं भुला सकते। उचित तो यह है कि आप सच्चे साधुओं को न भुलाओ। साधुओं की कृपा से ही आज आप इस स्थिति में हो। इतने पर भी यदि कोई कहे कि साधुओं की जरूरत नहीं है तो मैं पूछना चाहता हूं कि चोर जार और व्यभिचारी की तो जरूरत है और साधुओं की जरूरत क्यों नहीं है। साधुओं के होने से ही संसार में शांति बनी हुई है अन्यथा सूर्य पृथ्वी को तपाकर भस्म ही बना डालेगा। साधुओं के सत्य के प्रभाव से पृथ्वी टिकी हुई है। 'सत्येन धार्यते पृथ्वी, सत्येन तपते रविः' सत्य से पृथ्वी टिकी हुई है और सत्य के प्रभाव से ही सूर्य

तपता है। साधुओं के प्रताप से ही आज सुदर्शन का चरित्र गाया जारहा है। साधु की कृपा से ही सुभग सुदर्शन बना है। अत. साधुओं की निन्दा करना छोड़कर उनके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ लीजिये। साधु लोग संसार समुद्र में पुल के समान है। किसी नदी पर जब पुल बना दिया जाता है तब एक चींटी भी सुगमता से नदी पार कर सकती है नहीं तो हाथी भी कठिनाई से पार कर पाता है।

सुदर्शन बहत्तर कलाएं सीखकर नौजवान हो चुका है। पहले के जमाने में जब तक लड़का कलाएं न सीख लेता और उसके सोते हुए सालों अंग जागृत न हो जाते तब तक उसका विवाह नहीं किया जाता था। इसके पूर्व विवाह कर देना बहुत हानिप्रद है।

बाल विवाह से न केवल आध्यात्मिक हानि होती है मगर व्यावहारिक और शारीरिक हानि भी होती है। मान लीजिये कि एक गाड़ी में पचीस जवान आदमी बैठे हैं और दो छोटे बछड़े उसमें जुड़े हुए हैं। क्या वे बछड़े उस गाड़ी के भार को खींच सकते हैं? और क्या ऐसी गाड़ी में सवार होने वाले दयावान् कहे जा सकते हैं? कदापि नहीं। इसी प्रकार किसी का विवाह सम्बन्ध जोड़ना भी संसार व्यवहार का भार है। छोटे बच्चों को इस सम्बन्ध में जोड़ देना और बाराती बन कर विवाह कराना दयावानों का काम नहीं हो सकता। समझदार और दयावान् ऐसी शादियों में शरीक नहीं सकते। क्या कोई भाई इस विचारों का है जो इस बात की प्रतिज्ञा ले कि मैं सोलह वर्ष से कम उम्र के लड़के और तेरह साल से कम उम्र की लड़की की शादी में लड्डू न खाऊंगा? कन्या और वर को बड़ी सुशिक्षा की जरूरत है। आजकल जाहिर तौर पर लग्न होने के पूर्व ही कन्या और वर का शारीरिक सम्बन्ध होने की बातें सुनने में आती हैं। यह भ्रष्टाचार है। यूरोप में कुमारिकाश्रम खुले हुए हैं, जहां विवाह के पूर्व होने वाली संतानों का पालन होता है तथा वहीं पर कुमारिकाएँ बच्चे पैदा कर डालती हैं। भारत में ऐसी बात तो नहीं है फिर भी कालेजों में कुछ किस्से बनते ही हैं। बाल विवाह निषेध का मकसद ही यह है कि असमय में वीर्य न नष्ट हो।

मेरे लिए कई लोग कहते हैं कि मैं अंग्रेजी भाषा की टीका करता हूँ। किन्तु वस्तुत. मेरा अंग्रेजी भाषा से कोई विरोध नहीं है। बल्कि शास्त्र में भी यह बात आई हुई है कि बच्चे की शिक्षा के लिए अठारह देश की दासियाँ रखी जाती थी। अर्थात् भिन्न २ देशों की भाषाएं सीखने का कोई विरोध नहीं है। विरोध इस बात का है कि किसी देश

काम हो वही उसे करना चाहिए। आज स्थिति बदल रही है। पुरुषों का काम स्त्रियों सौम्पा जा रहा है। इसमें हानि है। सुना है कि हानि को महसूस करके हिटलर ने स्त्रि को घर लौटने और घर का काम करने की आज्ञा दी है। स्त्रियों की उन्नति अपने कार्यों के करने में ही है। इससे वे अपनी और भावी पीढ़ी महान् उन्नति साध सकती

स्त्रियों और पुरुषों को बहत्तर और चौसठ कलाएं सीखना बहुत जरूरी सूर्य और चन्द्रमा में कला न होतो वे किस काम के? इसी प्रकार जिस स्त्री ... हो वह किस कामका। कला सीखे बिना गृहस्थ जीवन की उन्नति नहीं हो ...

सुदर्शन बहत्तर कलाएं सीखकर घर आया। उसके सोते हुए सातों चुके थे। घर आने से सब लोग बड़े प्रसन्न हुए। सेठने कलाचार्य को इतना कि उसकी कई पीढ़ीयां खाती रहें। केवल पुरस्कार ही न दिया किन्तु उसका ... सेठने कलाचार्य से कहा, मैं आपका बड़ा एहसानमन्द हूं। आपने मेरे पुत्र बना दिया है कि वह अपना जीवन सुख पूर्वक बीता सकेगा। आपने कोरी सिखाई है किन्तु विनय गुण भी सिखाया है मैंने कच्चे सोने के समान उसे आ था आपने भूषण बना कर मुझे सौंपा है। आपका यह उपकार कदापि सकता।

आजकल शिक्षा पूरी कर लेने के बाद लड़के अपने पिता को ठोकर ... हैं। थोड़ा किताबी ज्ञान हांसिल करके वे अपने को समझदार होशियार और ... मानने लग जाते हैं अपने मां बाप का यथोचित आदर नहीं करते। यह शिक्षा उन्हें शिक्षा ऐसी मिलती है कि वे माँ बाप से अपने को श्रेष्ठ समझने लगते बुनियाद को भूल रहे हैं। सुदर्शन के चरित्र से युवा और वृद्धों को नसीहत ...

जब से सुदर्शन घर आया है तब से अनेक लोग अपनी अपनी साथ सुदर्शन का विवाह करने की मंशा सेठ के सामने रख चुके हैं। किन्तु टालते रहे। वे किसी योग्यतम कन्या की फिराक में हैं। आजकल सगाई मामले में धन को प्रथम स्थान दिया जाता है। यदि कोई व्यक्ति धनवान् है ... बातों की तरफ ख्याल न किया जायगा। 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते' सब गुण सोने में मान लिए जाते हैं किन्तु इस विषय में शास्त्र क्या कहता है देकर सुनिये। ज्ञाता सूत्र में कहा है—

काम हो वही उसे करना चाहिए। आज स्थिति बदल रही है। पुरुषों का काम स्त्रियों को सौंपा जा रहा है। इसमें हानि है। सुना है कि हानि को महसूस करके हिटलर ने स्त्रियों को घर लौटने और घर का काम करने की आज्ञा दी है। स्त्रियों की उन्नति अपने योग्य कार्यों के करने में ही है। इससे वे अपनी और भावी पीढ़ी महान् उन्नति साध सकती है।

स्त्रियों और पुरुषों को बहत्तर और चौसठ कलाएं सीखना बहुत जरूरी है। यदि सूर्य और चन्द्रमा में कला न होतो वे किस काम के? इसी प्रकार जिस स्त्री पुरुष में कला न हो वह किस कामका। कला सीखे बिना गृहस्थ जीवन की उन्नति नहीं हो सकती।

सुदर्शन बहत्तर कलाएं सीखकर घर आया। उसके सोते हुए सातों अंग जागृत हो चुके थे। घर आने से सब लोग बड़े प्रसन्न हुए। सेठने कलाचार्य को इतना पुरस्कार दिया कि उसकी कई पीढ़ियां खाती रहें। केवल पुरस्कार ही न दिया किन्तु उसका उपकार भी माना। सेठने कलाचार्य से कहा, मैं आपका बड़ा एहसानमन्द हूं। आपने मेरे पुत्र को ऐसा योग्य बना दिया है कि वह अपना जीवन सुख पूर्वक बीता सकेगा। आपने कोरी कला ही नहीं सिखाई है किन्तु विनय गुण भी सिखाया है मैंने कच्चे सोने के समान इसे आपके सुपुर्द किया था आपने भूषण बना कर मुझे सौंपा है। आपका यह उपकार कदापि नहीं भूलाया जा सकता।

आजकल शिक्षा पूरी कर लेने के बाद लड़के अपने पिता को बेवकूफ समझने लगजाते हैं। थोड़ा किताबी ज्ञान हासिल करके वे अपने को समझदार होशियार और मां गुण सम्पन्न समझने लगते हैं अपने मां बाप का यथोचित आदर नहीं करते। यह शिक्षा का दोष है। उन्हें शिक्षा ऐसी मिलती है कि वे मां बाप से अपने को श्रेष्ठ समझने लगते हैं वे अपनी बुनियाद को भूल रहे हैं। सुदर्शन के चरित्र से युवा और बूढ़ों को नसीहत लेनी चाहिए।

जब से सुदर्शन घर आया है तब से अनेक लोग अपनी अपनी कन्याओं के साथ सुदर्शन का विवाह करने की बात सेठ के सामने रख चुके हैं। किन्तु सेठजी सब को टालते रहे। वे किसी योग्यतम कन्या की तलाश में हैं। आजकल प्रायः विवाह के मामले में धन को प्रथम स्थान दिया जाता है। यदि कोई व्यक्ति धनवान है तो बस अन्य बातों की तरफ ध्यान न दिया जाता। 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते' इसके [illegible] लेने के [illegible] देकर सुनिये। ज्ञाता सूत्र में कहा है—

भगवान् नेमीनाथ तीनसौ वर्ष की उम्र तक कुँवारे रहे थे क्या उन्हें कन्या नहीं मिलती थी ? ऐसी बात न थी। किन्तु बिना स्वीकृति विवाह करना उन्हें इष्ट न था। आज कल लड़के लड़कियों से कौन पूछता है कि तुम्हारा अमुक के साथ विवाह करें या नहीं।

सुदर्शन के पिता ने सुदर्शन से पूछा कि पुत्र ! तुम्हारे योग्य कन्या की सगाई की बात मेरे सामने आई है अतः तुम्हारी क्या इच्छा है सो बताओ। तुम्हारी स्वीकृति होतो सगाई कर ली जाय। सुदर्शन क्या उत्तर देता है, यह आगे बताया जायगा।

राजकोट
२१—७—३६ का
व्याख्यान

द्वारा शक्य नहीं है तब आप क्यों विवेचन कर रहे हैं। इसका उत्तर यह ही है कि मैं भी अपूर्ण ही हूं। और अपूर्ण हू इस लिए वर्णन करता हू और आप लोग भी अपूर्ण हैं अतः श्रवण करते हैं। इस प्रकार कह सुन कर अपूर्णता से पूर्णता में प्रवेश करना है। पूर्णता में पहुंचने का यह प्रयत्न है। पूर्णता कहीं बाहर से नहीं लानी है। पूर्णता हमारे भीतर छिपी हुई है, उसे प्रकट करने की आवश्यकता है। सूर्य स्वयं प्रकाशी है उसी प्रकार आत्मा भी पूर्ण है। सूर्य पर जैसे बादल आ जाते है तब वह छिपा हुआ मालूम होता है उसी प्रकार आत्मा पर भी राग द्वेष रूप आवरण आजाता है तब वह अपूर्ण ज्ञात होता है। आवरण हटते ही आत्मा पूर्ण बन जाता है। आत्मा स्वय चिदानन्द स्वरूप है।

आत्मा के ऊपर जो आवरण लगे हुए हैं उन्हें हटाने के लिए घबड़ाने की जरूरत नहीं है। उपाय और पुरुषार्थ के द्वारा यह शक्य है। उपाय और पुरुषार्थ करने से आत्मा के आवरण दूर होकर उसकी वास्तविक शक्ति प्रकट हो सकती है। जिन अनन्त नाथ की स्तुति की जा रही है वे भी एक दिन कर्म रूप आवरण से आवृत थे किन्तु पुरुषार्थ करके उन्होंने उस पर्दे को चीर कर दूर फेंक दिया। हम भी वैसा कर सकते हैं।

क्या पूर्णता प्राप्त करने के प्रयत्न में शरीर पालन की क्रिया को भूला दिया जाय? शरीर पालन जरूरी चीज़ है। साधु भी शरीर पालन के लिए गोचरी करते हैं। गृहस्थों के पीछे संसार लगा हुआ है अतः सांसारिक कर्त्तव्यों को छोड़कर पूर्णता प्राप्ति के प्रयत्न में कैसे लग सकते है।'

भाइयों! इस प्रकार शरीर पालन का नाम लेकर अपने असली ध्येय को भुला देना ठीक नहीं है। शरीर का पालन न किया जाय ऐसा कोई नहीं करता। किन्तु जो वस्तु जैसी है उसे उसी रूप में देखने की चेष्टा करनी चाहिए। मुख्य को मुख्यता और गौण को गौणता देनी चाहिए।

शरीर में ज्ञानी भी रहते हैं और अज्ञानी भी। आत्मा परमात्मा को मानने और न मानने वाले सभी शरीर में निवास करते हैं। दोनों प्रकार के लोगों का खान पान भी समान ही है। समार व्यवहार की बातें भी समान है। फिर ज्ञानी और अज्ञानी में बड़ा अन्तर है। वह अन्तर कौनसा है और किस विशेषता के कारण, यह अन्तर है यह समझने की बात है। शरीर और इन्द्रियां समान होने पर भी ज्ञानी और अज्ञानी में बड़ा अन्तर है। और वह अन्तर है समझ का। ज्ञानी जगत को दूसरी दृष्टि से देखता है और अज्ञानी दूसरी

दृष्टि से। ज्ञानी संसार में रहकर सब व्यवहारों का पालन करता हुआ भी संसार के पदार्थों में आसक्त नहीं होता किन्तु अज्ञानी फँस जाता है। ज्ञानी हेय को हेय और उपादेय को उपादेय मानते हैं किन्तु अज्ञानी उपादेय को हेय और हेय को उपादेय समझता है। समझ का ही फर्क है। साधु भी शरीर पालन करते हैं मगर उसके द्वारा पूर्णता प्राप्त करने के लिए ही शरीर पालन का नाम लेकर जो लोग असली ध्येय से दूर हटते हैं वे पूर्ण नहीं बन सकते। पूर्णता उनसे दूर भगती है। समझ प्राप्त हो जाने पर संसार व्यवहार पूर्णता प्राप्त करने में बाधक नहीं हो सकता। ज्ञानी को त्रिलोक का राज्य देने का लोभ बताया जाय तब भी वह अपने ध्येयको नहीं छोड़ता। वह अपने आत्मिक सुख के सामने तीनों लोक के राज्यसुख को भी तुच्छ समझता है। मतलब यह है कि अनन्त या पूर्ण बनने के लिए दिल की भ्रांति मिटाना आवश्यक है।

शास्त्र चर्चा—

राजा श्रेणिक मुनि से कह रहा है कि हे मुने! आपको यह दुर्लभ मनुष्य शरीर मिला है, आप इसका अपमान क्यों कर रहे हैं। आपके इन सुन्दर कानों में कुण्डल कैसे अच्छे शोभेंगे। गले में हार कितना सुन्दर मालूम देगा। आप दिव्य शरीर को संयम धारण करके खराब क्यों कर रहे हैं। आप अनाथ हैं तो मैं आपका नाथ बनता हूं। चलिये मेरे राज्य में और भोग भोगिये।

मुनि का शरीर औदारिक शरीर है। उनको बिना मांगे और बिना परिश्रम के भोग की सामग्री और सम्पत्ति मिल रही है। आप लोगों की दृष्टि में क्या कोई ऐसा मूर्ख व्यक्ति होगा जो ऐसे सुन्दर चांस (अवसर) को हाथ से खोयेगा। जिन भोगों के लिए मनुष्य लालायित रहता है और रात दिन जिनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है वे भोग अनायास ही प्राप्त हो रहे हैं। फिर भी मुनि उन ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। इसके विपरीत मुनि राजा से कहते हैं कि हे राजन्! मनुष्य जन्म की सार्थकता भोग भोगने में नहीं है मगर भोग त्याग करने में है। भागवत में कहा है—

नायं देहो देह भाजां नृलोके, कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये।

हे मनुष्यो! तुम्हारी यह देह भोग भोगने के लिए नहीं है। भोग तो गन्दगी खाकर जीवन बीताने वाले क्षुद्र प्राणी भी भोगते हैं। वे भी यह दावा करते हैं कि

भोग हमारे लिए हैं । उनके द्वारा भोगे जाने वाले भोगों को तुम अपना समझ कर कैसे भोगते हो ।

कदाचित् बाघ मिलकर एक कॉन्फरन्स करें और इसमें यह प्रस्ताव पास करें, कि मनुष्य हमारे खाने के लिए ही बनाये गये हैं अतः मनुष्य भक्षण करना हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है तो क्या आप इस प्रस्ताव को मंजूर या पसन्द कर सकते हैं ? कदापि नहीं । बाघ केवल हिंसा कर सकते हैं मगर मनुष्य में यह विशेषता है कि वह हिंसा और दया दोनों कर सकता है । दया करने में ही मनुष्य की मनुष्यता है । मनुष्य जीवन भोगों के लिए नहीं है । भोग तो पशु भी भोगते हैं और आनन्द मानते हैं

आप जिस सोने को पहिनकर अभिमान करते हैं क्या उस सोने की बनी बेड़ी को कुत्ता नहीं पहिन सकता ? आप जिस मोटर या बग्घी में बैठते हैं क्या उसमें कुत्ता नहीं बैठता ? बड़े २ लार्ड और राजाओं के साथ उनके कुत्ते भी बैठते हैं । क्या इस से मशीन पर बसने वाला मनुष्य कुत्ते दर्जे का गिना जा सकता है ? कभी नहीं । कुत्ता, कुत्ता ही रहेगा और मनुष्य, मनुष्य ही । कुत्ता तो क्या पर देवता भी मनुष्य की समता नहीं कर सकते । जितने भी तीर्थङ्कर या केवल ज्ञानी हुए हैं वे सब मनुष्य योनि में ही हुए हैं । मुसलमानों में भी जितने पैगम्बर हुए हैं वे इन्सान ही हुए हैं, फरिश्ते नहीं । मनुष्य जन्म का बड़ा महत्त्व है, वह भोग भोगने में पूरा करने के लिए नहीं है । तो क्या करने के लिए मनुष्य जन्म है ? इसका उत्तर भागवत ने इस प्रकार दिया है ।

तपो दिव्यं पुत्र कालेन सत्त्वं शुद्धयेत् यस्मात् ब्रह्मसौख्यमनन्तम् ॥

ज्ञानी जन कहते हैं, यह मनुष्य शरीर भोग भोगने के लिए नहीं है तप करने के लिए है । केवल अनशन करना अर्थात् भूखे रहना ही तप नहीं है । अनशन तो तप का एक अंग है । आजकल कुछ लोग अनशन तप की निन्दा किया करते हैं । वे कहते हैं कि अनशन तप करने से ही जैन लोग दुर्बल और कमजोर हो गये हैं । मेरा कहना है [illegible] जैनियों में जो शक्ति और तेज विद्यमान है वह अनशन [illegible] नहीं कहता [illegible] वह कहते हैं [illegible] हैं । वे तप नहीं करते । अतएव दुर्बल [illegible] बहुत ज्यादा और [illegible] मनुष्य [illegible] उत्तम है । केवल [illegible]

मुनि भी राजा श्रेणिक से यही बात कह रहे हैं कि हे राजन ! यह दुर्लभ मनुष्य देह भोग भोगने के लिए नहीं है । जो लोग इस देह को भोग भोगनेका साधन मानते हैं वे अनाथ हैं । तू देह को दैहिक सुख भोगने के लिए साधन समझता है अतः स्वयं अनाथ है । जो खुद अनाथ हो वह दूसरों का क्या नाथ बनेगा ।

अप्पणावि अणाहोऽसि, सेणिया ! मगहाहिवा ! ।
अप्पणा अणाहो संतो, कस्स नाहो भविस्ससि ? ॥१२॥

हे मगधाधीप श्रेणिक ! तू स्वयं अनाथ है । स्वयं अनाथ होता हुआ तू किसका नाथ बनेगा ?

'यह शरीर भोग भोगने के लिए है' ऐसी भावना आते ही आत्मा गुलाम और अनाथ बन जाता है । भोग की सामग्री इकट्ठा करने के लिए उसे अनेक खटपटें करनी पड़ती हैं । किसी की खुशामद, किसी की गुलामी, किसी के द्वारा भली बुरी बातें सुनना आदि सब कुछ करना पड़ता है । मनुष्य समझता है कि उसके पास जो ऐश और अशरत के साजो सामान मौजूद हैं उसके कारण वह नाथ है किन्तु ज्ञानी कहते हैं कि बात इससे ठीक उल्टी है । जिस साजो सामान के कारण वह अपने को नाथ मानता है उसीके कारण दरअसल में वह अनाथ अथवा गुलाम बना हुआ है । उदाहरणार्थ समझिये कि एक आदमी सोने के कड़े पहिन कर अभिमान में चकचूर हो रहा है । वह अपने को कड़ों का स्वामी या नाथ मानता है । क्या यहआदमी सचमुच अपने कड़ों का स्वामी है ? ज्ञानी कहते हैं, नहीं । वह कड़ों का स्वामी नहीं किन्तु कड़ों का गुलाम है । रात को कड़े पहिन कर जब वह सोता है तब उन कड़ों की फिक्र में उसे नींद नहीं आती है । कहीं कोई चोर आकर हाथ में से कड़े निकाल कर न ले जाय, हाथ ही न काट डाले अथवा इन कड़ों के कारण कहीं मुझे ही न मार डाले । आदि संकल्प विकल्प में नींद हराम हो जाती है । ये कड़े उसके लिए हाथों में हथकड़ी और मन में भय के कारण बन गये । कहिये, वह कड़ों का नाथ है अथवा उन का गुलाम ?

एक महात्मा और एक सेठ साथ साथ जंगल में से होकर दूसरे गांव जा रहे थे । महात्मा के पास अपना शरीर था किन्तु सेठजी के पास शरीर के उपरान्त अंगुली में एक हीरे की अंगूठी पहिनी हुई थी । महात्मा अलमस्त होकर चल रहे थे । उनको किसी प्रकार

का भय नहीं था। भय की कल्पना भी न थी। किन्तु बहुमूल्य अंगूठी के कारण सेठजी का कलेजा धक् धक् कर रहा था। जरासा कहीं पत्ता हिलता कि सेठजी सशंकित हो जाते, कहीं चोर तो नहीं आ रहा है। अहा! हीरा जटित अंगूठी के नाथ बने हुए सेठजी के दिल की क्या दशा हो रही है, यह या तो वे खुद ही जानते हैं या कोई ज्ञानी ही जानता है। यदि कोई चोर आही जाय तो मुनि को भागना पड़ेगा या सेठजी को। अंगूठी के चले जाने से सेठजी को ही हाय तोबा करना पड़ेगा। जो नाथ होता है उसके दिल की दशा ऐसी नहीं होती। वह तो अपने निजानन्द की मस्ती में मस्त होकर बिना किसी प्रकार के भय या शंका के बेखटके अपने रास्ते चला जायगा। उसे किस बात का डर हो सकता है।

आप लोग स्त्री को परणे हो या स्त्री आपको परणी है। यदि स्त्री को आप परणे हो तो स्त्री के मर जाने पर आपको दुःख तो नहीं होगा न! यदि आपको स्त्री के मर जाने पर दुःखानुभव हुआ तो आप स्त्री के मालिक न रहे किन्तु उसके गुलाम बन गये। स्त्रियों के लिए भी यही बात है। जब स्त्री किसी को अपना पति मानती है तभी उसके मर जाने पर उसे रंडापा भोगना पड़ता है। यदि स्त्री किसी को पति न मानकर परमात्मा के साथ ही अपना सम्बन्ध जोड़ ले तो उसे विधवा होने का दुःख कभी न होगा। विधवा होने पर भी अनेक स्त्रियां परमात्मा से सम्बन्ध न जोड़कर सोने के दागिने से नेह करती हैं। दागिनों के चले जाने पर फिर कष्ट उठाना पड़ता है। मतलब कि संसार के प्राणी एक प्रकार के भ्रम जाल में फँसे हुए हैं। अशरण को शरण और शरण को अशरण मान रहे हैं। राजा श्रेणिक भी अपनी ऋद्धि सिद्धि को शरण रूप मान रहा था और अपने मन्तव्य के अनुसार मुनि को आमंत्रित कर रहा है कि आपभी मेरे नाथ बनिये और संसार के सुखोपभोग करके जीवन को सफल बनाइये।

मुनि ने साफ और सीधा उत्तर दे डाला कि हे राजन्! तू स्वयं अनाथ है तेरी हालत में मेरा नाथ कैसे बन सकता है। मुनि के उत्तर पर हम लोग विचार करें कि क्या राजा के पास कुछ कमी थी जिससे उसको अनाथ कहा गया। उसको किसी बात की कमी न थी। वह विशाल राज्य देख कर नाचती था। फिर भी मुनि ने उसे अनाथ बतला कर आश्चर्य में डाल दिया। मुनि कुछ भी नहीं बोले पर हम विचार करते हैं। वस्तुतः बात यह है कि राजा [illegible] और अनाथ की व्याख्या जुदी है और मुनि के मन की व्याख्या जुदी है, [illegible] विशाल [illegible], इसके लिए इसे [illegible] [illegible], वह वस्तु [illegible] अनाथ सूचक बन गई है।

ऐसी वस्तु का वह मनुष्य मालिक नहीं कहा जा सकता । व्यवहार में वह उसका मालिक या नाथ कहा जायगा किन्तु वस्तु स्थिति यह है कि वह दिल से उस वस्तु का गुलाम बना हुआ है । किसी वस्तु का कोई सच्चा मालिक तो तब गिना जायगा जब वह जिस क्षण चाहे उस क्षण उसका त्याग कर सके । त्याग करने में दुःख न हो किन्तु खुशी हो ।

बन्धुओं ! जब श्रेणिक जैसा राजा भी अनाथ था तो आप किस गिनती में हैं । आप अपना खयाल कीजिये कि हम भोगों के गुलाम हैं या मालिक ? संसार के पदार्थ किसी को कैसे नाथ बना सकते हैं । जो जिस वस्तु का मालिक नहीं होता वह यदि उस वस्तु को किसी दूसरे को दे डालता है तो वह चोरी गिनी जाती है । जो स्वयं नाथ नहीं है वह दूसरों को स्वामित्व प्रदान कैसे कर सकता है । क्या यह अन्याय नहीं है कि एक अनाथ दूसरे का नाथ बनने की कोशिश करें ।

मीरा को उसकी एक सखी ने कहा कि तेरा बड़ा भाग्य है जो राजा जैसे पति मिले हैं । रहने को सुन्दर महल और सुख भोगने के लिए विशाल वैभव मिला है । मीरा तू उदास क्यों रहती है । क्या राजा और यह वैभव तुझे अच्छा नहीं लगता ? उठ ! मैं तेरा और राजा का पारस्परिक मेल करादूं । राजा मेरी बात मानते हैं । सखी का कथन सुनकर मीरा हँसने लगी । सखी कहने लगी कि स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा है कि प्रणय सम्बन्धी अपना विचार वे स्वयं प्रकट नहीं करतीं । हँसी आदि चेष्टाओं से अपनी भावना बता देती है । मीरा ! तेरी हँसी से मुझे मालूम होता है कि तू मेरी बात को स्वीकार करती है । क्यों ठीक है न ? मीरा ने यह सोचकर कि कहीं यह सखी मेरी हँसी का अनर्थ कर डालेगी स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया कि—

> संसारी नो सुख काचो परणी रंडावुं पाछो ।
> तेने घेर केम जइये मोहन प्यारा ॥ मुखड़ा नी प्रीत लागी रे ॥

हे सखी ! राजा के लिए तू जैसा कहती है वे उससे भी बढ़कर हों मुझे इस से कुछ नहीं कहना है । मैं तुझ से यह बात पूछती हूँ कि मैं अपने प्यारे [illegible] [illegible] को छोड़ कर इन की दी हुई सम्पत्ति देखकर राजा के यहाँ आऊं, उनकी दासी बन कर रहूँ किन्तु राजा मुझे रांड तो न बना देंगे ! राजा से पूछो कि वे मुझे अखण्ड सौभाग्य प्रदान करेंगे न ? यदि राजा यह कहता है कि यह बात मेरे हाथ की नहीं है तो मैं ऐसे किसी

आदमी को अपना पति नहीं बनाती। ऐसा पति क्यों न बनाऊं जो सदा अमर रहे। 'वर वरिये एक साँवरोमी, चूड़लो अमर है जाय'।

मीरा के समान ही फक्कड़ योगी आनन्द घन ने भी कहा है:—

ऋषभ जिनन्द प्रीतम माहरा और न चाहूं कन्त।
रीमयो साहिब संग न परिहरे भांगे सादि अनन्त॥

केवल स्त्री के साथ ही विवाह नहीं होता किन्तु भगवान् के साथ भी होता है। बूढ़े जवान बालक धनी गरीब सब भगवान् से अपना सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। भगवान् से सम्बन्ध करने में जाति पांति का भी ख्याल करने की जरूरत नहीं होती। यह विवाह अलौकिक है। उस अलौकिक प्रीतम से प्रेम तभी किया जा सकता है जब लौकिक प्रीति से प्रेम छूट जाय। परमात्मा के साथ प्रेम जोड़ने से अखण्ड सौभाग्य प्राप्त हो जाता है। मैं तो लग्न जुड़वा देने वाला पुरोहित हूं अतः अधिक कुछ न कह कर जिनकी इच्छा हो उनको परमात्मा के साथ सम्बन्ध करादूं। हमने तो खुद परमात्मा से लग्न कर लिया है। मैं अपने साधुओं से कहता हूं कि हम लोग परमात्मा से मेल करने के लिए घरबार छोड़ कर निकले हैं अतः कहीं ऐसा न हो कि श्रावकों या क्षेत्र विशेष के मोह में फँस जावें और अपने मूल उद्देश्य को भुला दें।

आप लोग संसार की जिन वस्तुओं से सगाई करना चाहते हो पहले उन से पूछ तो लो कि हमें दगा देकर बीच में सम्बन्ध विच्छेद तो न कर लोगी? सब से पहले अपने शरीर ही से पूछिये कि जब तक मेरी इच्छा मरने की न हो तब तक तू मुझे छोड़ तो न देगा? हाथ कान नाक आंख आदि सब अंगों से पूछ देखिये कि मेरी मर्जी के बिना तुम बीचही में दगा तो न करोगे? यदि ये सब बीच ही में दगा दे सकते हैं तो इनके साथ आप कैसे बंध जाते हो क्यों इनसे प्रेम करते हो। भक्त लोग इस बात को समझते हैं अतः संसार की किसी भी वस्तु के साथ वे अन्तरंग से प्रेम नहीं जोड़ते। अन्तरंग से प्रेम एक मात्र परमात्मा से ही जोड़ते हैं, जो कभी जुदा नहीं होता।

आप कहेंगे कि तब हम क्या करें? मेरा उत्तर है कि आप इस शरीर को परमात्मा की सेवा में लगा दीजिए। मैं यह नहीं कहता कि आप शरीर को नष्ट कर डालिये या अपने [illegible] उसका उपयोग कीजिये। भोगों में इसका उपयोग मत कीजिये। [illegible] दोनों में से किसी एक

को छोड़ने का प्रसंग आवे तो शरीर छोड़ना पसन्द करियेगा मगर प्रभु प्रेम को छोड़ने की तनिक भी इच्छा मत करियेगा। शरीर अनन्तवार ग्रहण किये और छोड़े हैं परमात्मा का सच्चा प्रेम प्राप्त करने का अवसर विरला ही मिलता है अतः इस शरीर को अनन्य जिनेश्वर के समर्पण कर दो। भगवान् से सच्चा सम्बन्ध जोड़ लो। भगवान् से सम्बन्ध जोड़ने की बात कथा द्वारा बताता हूँ।

सुदर्शन चरित्र—

> रूप कला यौवन वय सरीखी सत्य शील धर्मवान्।
> सुदर्शन और मनोरमा की जोड़ी जुड़ी महान रे॥ धन०॥ १७॥

सुदर्शन बड़ा हो चुका है। वह सब विद्याओं में प्रवीण होगया है। अब उसके विवाह की बातें चल रही हैं। पहले नियमसा था कि जब लड़का यौवन प्राप्त होता तभी उसका विवाह किया जाता था। 'काल अकाल चलाई' अर्थात् काल और अकाल में चलने की हिम्मत जिसमें हो वह विवाह योग्य समझा जाता था। दिन में बालक जहां कहो वहां जा सकता है मगर अकाल अर्थात् आधी रात्रि में श्मशान में जाने के लिए कहा जाय तो वह न जायगा। जब बालक की उम्र इतनी हो जाय कि वह आधीरात में भी श्मशान में अकेला जासके तब वह विवाह योग्य समझा जाता है। जब बालक निर्भय युवक हो जाता है। तब विवाह लायक होता है। आजकल तो जो 'हाऊ' से भी डरते हैं ऐसे डरपोक बच्चों की भी शादी कर दी जाती है। छोटे उम्र के बच्चों की शादी करना गोया उनके शरीर रूपी भवन की नींव में छेद करना। अज्ञान माता पिता कभी कभी अपनी अज्ञानता में बच्चों के लिए दुश्मन का काम कर डालते हैं।

एक दिन जिनदास सेठ ने अपने पुत्र सुदर्शन को अपने पास बुलाया और प्रेम से पूछने लगे कि अब तुम्हारी अवस्था विवाह योग्य हो गई है। हमारी इच्छा तुम्हारा सम्बन्ध कर देने की है। पुत्र! जब तुम इस घर में नहीं जन्मे थे तब यह घर सूना सूना था। मेरे लिए सारा संसार ही तब शून्य जैसा था। तुम्हारे जन्म लेने से हमारा वह सूनापन तो मिट गया है मगर अब हम तुम तुम्हारी शादी करके घर में बहू लाना चाहते हैं। पौत्र के दर्शन करना चाहते हैं। हमारे वंश की वेल बढ़ाना चाहते हैं। पुत्र! इसी में तुम्हारी भी शोभा है। तुम हमारी यह इच्छा पूरी करो।

पिता की बात सुनकर सुदर्शन स्वाभाविक रूप से शरमा गया न मालूम विवाह की बात में कौनसा जादू भरा है कि कितना भी उदण्ड से उदण्ड व्यक्ति होगा तो भी विवाह के नाम से एक बार झेंप जायगा । सुदर्शन तो सुशील और कुलीन था । उसने गरदन नीची कर ली और कहने लगा पिताजी ! यह घर मेरे से पूर्ण नहीं है, मेरे विवाह कर लेने पर पूर्ण बनेगा, ऐसा आपका विचार है, किन्तु क्या मेरे ब्रह्मचारी रहने से घर अपूर्ण और अशोभनीय गिना जायगा ? पूज्य पिताजी ! मेरी समझ के अनुसार तो ब्रह्मचारी का घर विशेष शोभास्पद होगा । जो ब्रह्मचर्य का पालन करके जगत् का निस्तार करते हैं वे तो महापुरुष गिने जाते हैं । जिनदास ने कहा, प्यारे पुत्र ! यह बात श्रावक होने के कारण मैं भी मंजूर करता हूं कि ब्रह्मचर्य पालना बहुत उत्तम बात है, उसकी बराबरी कौन कर सकता है । मगर कभी कभी ऐसा होता है कि ब्रह्मचर्य का पालन भी नहीं होता और विवाह भी नहीं किया जाता । यह स्थिति अच्छी नहीं है । इससे तो यह बेहतर तरीका है कि एक स्त्री के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ लिया जाय और गृहस्थी के गाड़े को सुन्दर ढंग से चलाया जाय । वे महापुरुष धन्य है जो आजीवन कठोर शील व्रत का पालन करके प्रभुप्राप्ति में अपने आपको खपा देते हैं । हमारे कुल में नीति विरुद्ध किसी काम का दाग न लगे अतः पंचों की साक्षी से हम तुम्हारा विवाह करना चाहते हैं । तुम्हारी स्वीकृति के बिना हम नहीं करना चाहते । अतः स्वीकृति देओ । विवाह करना गृहस्थ का धर्म है । विवाह करके स्वदार संतोष व्रत का पालन किया जाता है । स्वस्त्री के सिवाय इतर प्रकार के सब मैथुन का त्याग किया जाता है । विवाह करने वाले को कोई पापी नहीं कहता । विवाह करना मध्यम मार्ग है । पापी तो वह गिना जाता है जो लोगों की दृष्टि में में अपने को अविवाहित दिखाकर अन्य तरीकों से अपनी वासनाओं की पूर्ति करता है ।

सुदर्शन ने विचार करके उत्तर दिया कि, पिताजी आप मेरा विवाह कर दीजिये । किन्तु मेरे लिए ऐसी कन्या ढूंढिये जो अत्यन्त सुन्दरी न हो किन्तु कुरूप भी न हो, कोमल भी न हो कठोर भी न हो, स्वच्छन्द भी न हो डरपोक भी न हो । मेरे काम में विघ्न डालने वाली न हो किन्तु जिसको मैं अच्छा मानता होऊं उसे वह भी अच्छा माने । मेरी रुचि के अनुसार उसकी भी रुचि हो । मैं उसे देख कर सन्तोष पाऊँ और वह मुझे देख कर संतोष पावे । मैं उसके सिवा दुनिया की सब स्त्रियों को मा बहिन मानूं और वह भी मेरे सिवा सब पुरुषों को पिता भाई माने । मेरे काम वह कर सके और उसके मैं । यदि ऐसी कोई कन्या

मिल जाय तो मैं विवाह कर लूंगा अन्यथा अविवाहित रहना पसन्द करता हूं किन्तु पिताजी आपको मैं इस बात की खात्री दिलाता हूं कि अविवाहित रह कर मैं अपने कुल में किसी प्रकार का दाग न लगाऊंगा।

सुदर्शन का उत्तर सुनकर सेठ बड़ा प्रसन्न हुआ। कहने लगा, तेरे विचारों से मैं ही प्रसन्न नहीं हूं किन्तु सारा शहर प्रसन्न है। पुत्र ! तुम्हारे लिए वैसी कन्या की खोज में हूं जैसी चाहते हो। सुदर्शन रात दिन इसी उधेड़ बुन में है कि ऐसी योग्य कन्या का कहीं से पता लग जाय। अनेक सम्बन्धियों को इसकी सूचना कर रखी है।

इधर मनोरमा नामकी गुण सम्पन्न कन्या के माता पिता वर की तलाश में रात दिन एक कर रहे थे। मनोरमा सुदर्शन के समान विचार वाली थी। उसके माता पिताने भी उसे विवाह योग्य समझकर पूछा कि पुत्री ! तेरा विवाह किसके साथ किया जाय।

बन्धुओ ! आजकल मा बाप अपने लड़कों और लड़कियों की इच्छा जाने बिना सौदा तय कर लिया करते हैं जिससे उनका गृहस्थ जीवन बड़ा दुःखी हो जाता है। स्वभाव और रुचियें पृथक् होने के कारण वह जोड़ा सदा असंतुष्ट रहता है और येन केन प्रकारेण जीवन को पूरा कर देते हैं। पुत्र के समान कन्या से भी वर के सम्बन्ध में राय पूछना उचित है। और यदि किसी कन्या की इच्छा विवाह करने की ही नहीं है तो उसे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालने देना चाहिए। यह बात नहीं है कि कन्याएं आजीवन ब्रह्मचर्य न पाल सकें। भूत कालीन और वर्तमान काल में ऐसे कई दृष्टान्त मौजूद हैं कि कुमारिकाओंने जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन किया था और कर रही हैं। कन्या की इच्छा के बिना उसका विवाह नहीं किया जाता था।

[illegible] और सुन्दरी [illegible] दोनों बालक जब विवाह योग्य हुए तब उन्होंने उनके विवाह करने का विचार ले लिया। [illegible] के [illegible] को दोनों बालक [illegible] है और [illegible] है। [illegible] नहीं है [illegible] है। [illegible] है कि [illegible]

भूरि प्रशंसा करते हैं। ऐसी कन्याएं हमारे समाज में भी होतो क्या हर्ज है ? मैं जबरदस्ती ब्रह्मचर्य पलवाने की बात नहीं करता मगर कोई कन्या स्वेच्छा से ऐसा करना चाहे तो उस के लिए यह मार्ग खुला रहना चाहिए।

आखिर सुदर्शन और मनोरमा का सम्बन्ध हो गया। दोनों ने आपसी बातचीत से एक दूसरे को समझ लिया। आजकल विवाह में बड़ी धूमधाम होती है और वृथा खर्च भी बहुत किया जाता है किन्तु पुराने जमाने में एक ही दिन में सगाई और विवाह हो जाता था। दक्षिण देश में अभी भी यह प्रथा चालू है। यदि कन्या के पिता की सामर्थ्य है तो वह बारातियों को रोकता है और उन्हें जीमाता है अन्यथा वे चुपचाप अपने घर चले जाते हैं।

सुदर्शन और मनोरमा का विवाह विधि पूर्वक सम्पन्न होगया। पुत्र का विवाह हो जाने पर माता पिता का क्या कर्त्तव्य है यह बात जिनदास और अर्हदासी के चरित्र से ज्ञात होगा।

राजकोट
३०—७—३६ का
व्याख्यान

परमात्म प्रीति

प्रार्थना विषयक विवेचन में चाहे किसी को पुनरुक्ति दोष मालूम देता हो मगर यह मेरा प्रिय विषय होने से दोष की परवाह किये बिना मैं इस पर कहता रहता हूं।

प्रीति सगाई जग मां सौ करे, प्रीति सगाई न कोय।
प्रीति सगाई निरुपाधिक कही, सोपाधिक धन खोय॥

योगी आनन्दघनजी कहते हैं कि प्रीति करने का रिवाज संसार में बहुत है। सब कोई प्रीति करते हैं और करने के लिए लालायित भी रहते हैं। मगर इस बात का निर्णय करना कठिन है कि यह प्रीति सोपाधिक है अथवा निरुपाधिक। प्रीति सकाम है या निष्काम। यद्यपि यह निर्णय कठिन है फिर भी सामान्य तौर से कहा जा सकता है कि संसार के पदार्थों के साथ किया जाने वाला प्रेम सोपाधिक होगा और परमात्मा के साथ किया गया निरुपाधिक।

संसार की प्रीति सोपाधिक कैसे है, यह जानने के लिये सब से पहले शरीर पर नजर डालिये। शरीर से मनुष्य प्रेम करता है किन्तु क्या मनुष्यों ने अनेक शरीर अग्नि की भेंट नहीं किये हैं? जिस शरीर को अपना मानते थे उसे जला देने में अपनापन कहां रहा? वास्तव में जो चीज कभी न कभी जुदा हो सकती है उससे किया हुआ प्रेम वास्तविक नहीं हो सकता। मनुष्य ने अज्ञानवश जड़ शरीर को अपना मान रखा है किन्तु एक दिन ऐसा आता है कि उसे अपना प्राणप्रिय शरीर भी छोड़ देना पड़ता है। शरीर की प्रीति सोपाधिक प्रीति हुई। आत्मा के निज गुणों के साथ की प्रीति ही सच्ची और निरुपाधिक प्रीति है। क्या आप लोगों ने कभी इस विषय पर विचार किया है।

[illegible] मुर्दे [illegible] हैं और यह [illegible] कल्पना भी करते हैं कि एक न एक दिन इस शरीर को छोड़ देना पड़ेगा [illegible] फिर भी यह सोपाधिक प्रीति नहीं छूटती। [illegible]

जो प्रीति पराश्रित हो, जिसमें किसी वांछा की पूर्ति की ख्वाहिश हो तथा जो कायमी न हो वह सोपाधिक प्रीति है । किन्तु जो प्रीति स्वाश्रित हो, आत्मिक गुणों के साथ हो अथवा परमात्मा के साथ हो और कभी साथ छोड़ने वाली न हो वह निरुपाधिक प्रीति है । परमात्मा से निरुपाधिक प्रीति करने से आत्मा की अनादि कालीन भूख मिट सकती है ।

शास्त्र चर्चा—

निरुपाधिक प्रीति कैसे की जाती है यह बात शास्त्र विवेचन द्वारा बताई जाती है । राजा श्रेणिक और अनाथी मुनि दोनों वृक्ष के नीचे बैठे हैं । दोनों महाराजा हैं, मगर भिन्न भिन्न प्रकार के । राजा सोपाधिक प्रीति को सच्ची प्रीति मानता है और मुनि निरुपाधिक प्रीति को । जो इष्ट है प्रिय है प्रत्यक्ष आनन्द दायक है उससे प्रेम करना प्रीति है यह बात मानकर ही राजा मुनि से कह रहा है कि आप मेरे साथ चलिए और संसार का मजा लूटिये । मैं आपका नाथ होता हूं । किन्तु इससे विपरीत मान्यता वाले अनाथी मुनि उत्तर देते हैं कि राजन् तू भूल में है । जिन पदार्थों के कारण मनुष्य गुलाम बना हुआ रहता है उनके होने से वह नाथ कैसे हो सकता है । तू स्वयं अनाथ है, मेरा नाथ कैसे बनेगा ।

मुनि का उत्तर सुनकर राजा बहुत आश्चर्यान्वित हुआ । वह [illegible] मैं इनका नाथ बनने गया तो उल्टा मुझे ही अनाथ बना दिया । [illegible] क्या कहता है यह शास्त्रीय गाथाओं द्वारा सुनिये ।

एवं वुत्तो नरिन्दो सो सुसंभन्तो [illegible]
वयणं अस्सुय पुव्वं साहुणा [illegible] ॥१३॥
अस्सा हत्थी मणुस्सा मे पुरं [illegible]
भुंजामि माणुसे भोए आणा [illegible] ॥१४॥
एरिसे सम्पयग्गम्मि, [illegible]
कहं अणाहो भवइ, मा हु [illegible] ॥१५॥

[illegible]

लगता है'। आपको बुरा नहीं लगता है यह अच्छी बात नहीं है। इसका अर्थ हुआ हमारे कथन का आप पर कुछ भी असर नहीं होता। यह बनियापन है। कहावत है कि—'सिंह को बोल लगता है' अर्थात् सिंह के सामने गर्जना की जाय तो वह सामने होता है।

बड़े घासीरामजी महाराज जो कि मेरे धर्मोपदेशक थे, मेवाड़ के एक ग्राम के रहने वाले थे। मेवाड़ में झाड़ियाँ बहुत हैं। उन्होंने बताया कि—'एक बार मैं करोंदे खाने के लिए जंगल में गया था। वहाँ एक बाघ मेरे सामने दौड़ आया। मुझे तब भय लगा था किन्तु यह सुन रखा था कि—'बाघ की आँखों से आँखें मिलाये रहने से वह आक्रमण नहीं करता' मैं भी उस बाघ की आँखों से अपनी आँखें मिलाकर खड़ा हो गया। सिंह मेरी ओर ताकता रहा और मैं सिंह की ओर। एक पलक भी न मारी। अन्त में बाघ हार कर धीरे २ लौटने लगा। मैंने यह भी सुन रखा था कि सिंह को बोल लगता है और वह ललकारने पर सामना करता है। इस बात की जांच करने के लिए मैंने ललकार लगाई कि तुरंत सिंह वापस मेरा सामना करने के लिए आगया। मैं सोचने लगा कि अब की बार यह मुझे जिन्दा न छोड़ेगा किन्तु मैंने उसी प्रकार उसके समक्ष एक टकी लगा कर देखना जारी रखा जिस प्रकार प्रथम अवसर पर रखा था। अब यदि यह चला जायगा आयन्दा कभी ललकार न किया करूंगा। थोड़ी देर तक मुझ से दृष्टि मिला कर धीरे धीरे सिंह अपने रास्ते खिसक गया।

मतलब यह है कि सिंह को बोल लगता है। आप लोगों को भी बोल लगना चाहिए मगर आप लोगों ने बनिया वृत्ति धारण कर रखी है अतः वचन नहीं लगता। राजा श्रेणिक क्षत्रिय था। वह यह बात सहन न कर सका कि 'वह अनाथ है'। 'किसी गरीब आदमी को अनाथ कहा जाता तो बात मानी जा सकती थी किन्तु मुझ जैसे ऋद्धि सम्पन्न व्यक्ति को अनाथ कह डालना कहां तक उचित है'। इस प्रकार सोचता हुआ राजा रजोगुण युक्त होगया। 'यदि अनजान में ये मुनि मुझे अनाथ कह देते तो भी मुझे दुःख न होता किन्तु जानते हुए इन्होंने मुझे अनाथ कहा है, यह कैसे सहन करूं'।

शास्त्र राजा के मनोभावों का चित्र खींचता है। शास्त्र [illegible] मैं जो रहस्य भरा है उसका उद्घाटन करने में मैं असमर्थ हूं फिर भी मुझे जो [illegible] होती है वह आपके समक्ष रखता हूं। गाथाओं पर ध्यान देने से यह प्रकट होता है कि राजा शूर था मगर क्रूर न था। सिंह शूर भी होता है और क्रूर भी। सिंह [illegible] अर्थात् [illegible]

किये बिना जो भी सामने पड़ जाता है उस पर हमला कर देता है । उसमें विवेक की कमी होती है । श्रेणिक राजा शूर तो था ही किन्तु विवेकी भी था यही बात बताने के लिए शास्त्र में कहा है कि राजा संभ्रान्त हुआ फिर भी कोई अनुचित कदम न उठाया । नम्रता पूर्वक अपनी बातको मुनि के समक्ष रखी है । यह अर्थ मैं अपनी बुद्ध्यानुसार कर रहा हूं । शास्त्र अनन्त अर्थ वाले हैं अतः कोई महापुरुष दूसरा अर्थ करें तो कर सकते हैं ।

राजा श्रेणिक सुसंभ्रान्त और बहुत विस्मित हुआ । वह विचारने लगा कि 'इस जीवन में मुझे अभी तक किसी ने अनाथ नहीं कहा था । जब मैं घर छोड़ कर चला गया था और विपत्ति में पड़ गया था तब भी मैंने अनाथता का अनुभव नहीं किया था बल्कि अपने पुरुषार्थ से सब विघ्न बाधाओं को पार करके आगे बढ़ता रहा । मुनि के वचन अद्भुत पूर्ण हैं । या तो ये मुनि मुझे पूरी तरह नहीं जानते या जैसा कि इनकी आकृति से प्रकट होता है ये महान् ऋद्धि सिद्धि शाली रहे हों, और इनके सामने मैं अनाथ अंचता होऊँ' ।

मनुष्य जब अपने से छोटी वस्तु को किसी के पास देखता है तब वह उसे तुच्छ मानता है । जिसके पास हीरे के दागिने हों उसे सोने के जेवर तुच्छ मालूम होते हैं । जिस के पास सोने के दागिने दिखाई देते हैं, वह चांदी वाले को और चांदी वाला पीतल वाले को अकिञ्चन तुच्छ मानता है । राजा भी इसी तरह विचार करने लगा कि 'कहीं ये मुनि मुझसे अधिक सम्पत्ति के स्वामी रहे हों और इस कारण मुझे अनाथ कहते हों । इन की शारीरिक ऋद्धि ने तो मुझे आश्चर्य में डालही रखा है । अतः इनके समक्ष अपनी ऋद्धि का वर्णन कर के इनके भ्रम को मिटा देना चाहिए ।

आप लोग समझते होंगे कि हम तत्त्वके जिज्ञासु हैं किन्तु मैं कहता हूं अभी आप में तत्त्व समझने की योग्यता ही नहीं है । जो उपदेश देने वाले हों, [illegible] का निर्णय नहीं कर सकता वह तत्त्व नहीं समझ सकता । किसी ने किसी को नीच कह दिया वह यदि चुपचाप उसको सहन करले तो इसमें कायरता है । किन्तु नीच कहने वाले से यह पूछना कि [illegible] मुझे नीच कहा, मेरे में नीचता की कौनसी बात [illegible] दूर करने की कोशिश [illegible]

राजा श्रेणिक साहसी व्यक्ति था अतः मुनि से कहने लगा कि 'मुनिराज ! मैं मगधेश हूं। मैं मगधेश का नाम मात्र का राजा नहीं हूं किन्तु राजा होने के लिए जिन रत्नों की जरूरत होती है वे अश्व रत्न आदि मेरे यहां हैं। मेरे यहां हाथी झूम रहे हैं। जितना जनसमुदाय मेरी सेवा करने वाला है उतना शायद ही किसी के हो। मैं अपने घोड़ों का खर्च डाका डाल कर नहीं चलाता हूं किन्तु बड़े २ नगरों के आयकर से चलाता हूं। बड़े २ राजाओं ने अपना अहोभाग्य समझ कर अपनी कन्या मुझे समर्पित की है। जो कन्याएं मेरी रानी बनी हैं वे भी अपने भाग्य की सराहना करती हैं कि मुझ जैसा पति उन्हें प्राप्त हुआ है। कई राजा ऋद्धि सम्पन्न होने पर भी रोगी रहते हैं अतः सुखानुभव नहीं कर सकते किन्तु मैं मनुष्य सम्बन्धी भोग भी बखूबी भोगता हूं। कई राजा (गुमड़ा) के समान होते हैं। फोड़े पर दवाई लगाई जाती है और मक्खियां उड़ाई जाती हैं उसी प्रकार उनका राज्याभिषेक करके चँवर उड़ाये जाते हैं। उनकी आज्ञा का कोई पालन नहीं करता। किन्तु मेरी आज्ञा अखण्ड चलती है। किसी की क्या ताकत है कि मेरी आज्ञा न माने। मुझे आपने अनाथ कहा है, इस बात का अचरज तो है ही, साथ में आप जैसे निर्ग्रन्थ मुनि भी झूठ बोलते हैं, इस बात का भी बड़ा ताज्जुब है। जिस प्रकार पृथ्वी द्वारा आधार न देना, सूर्य द्वारा प्रकाश न करना, आश्चर्यजनक है उसी प्रकार मुनि द्वारा झूठ बोलना भी आश्चर्यजनक है। मुनियों के लिये मेरे दिल में यह धारणा है कि वे झूठ नहीं बोला करते किन्तु आप मुझे अनाथ कह कर सरासर झूठ बोल रहे हैं। मुनिवर ! आपको झूठ न बोलना चाहिए'।

राजा ने मुनि से कहा तो यह कि आप झूठ मत बोलिए परन्तु कितनी विवेक भरी बातें हैं। [illegible] ! [illegible] 'हे भगवान् ! झूठ मत बोलिए'। राजा में विवेक की कहीं कमी है। आदमी की पहिचान उसकी बोलचाल ही से होती है [illegible]।

[illegible] के समय में एक [illegible] था। [illegible] किन्तु [illegible] और फटे पुराने कपड़े [illegible] उसे [illegible] की उत्कृष्ट इच्छा थी [illegible]

से चले जाने पर अन्धा अपने स्थान पर आकर खड़ा हो जाता। ऐसा होते २ राजा स्वयं आ गया और अन्धे को देखकर पूछा कि कहो अन्धराज ! मार्ग में कैसे खड़े हो ? अन्धे ने कहा महाराज ! आपकी मुलाकात के लिए खड़ा हूं। राजाने पूछा कि क्या तुम्हें दिखाई देताहै जिससे तुमने मुझे पहिचान लिया। अन्धेने कहा, हजूर ! जरा भी नहीं दिखाई देता। राजा ने पुनः प्रश्न किया, तब मुझे तुमने कैसे पहिचान लिया कि मैं ही राजा हूं। अन्धेने कहा ' आपकी बोली से जान लिया कि आप ही राजा होंगे। आपके पहले अनेक सिपाहियों ने मुझसे रास्ते में से हट जाने के लिए **'चल बे अन्धे रास्ते में से हट जा'** शब्द कहे थे किन्तु जब आपके मुख से **'अन्धराज'** शब्द सुना तो मैंने अन्दाजा लगा लिया कि ये राजा ही होंगे। बड़े आदमी बड़े आदरवाची शब्दों का प्रयोग किया करते हैं। दूसरों के लिए किये गये शब्द प्रयोग से प्रयोग करने वाले के छोटे बड़े दिल का पता लग जाता है। राजाने उसकी इच्छा पूरी करके उसे विदाई दे दी।

राजा भोजने अन्धे को अन्धा तो कहा मगर कितने विवेकभाव आदर के साथ कहा। यही बात श्रेणिक के लिए भी लागू होती है। झूठ बोलने से रोकने के लिए कितने आदर वाची संबोधन से संबोधन किया। कहावत है कि— **'वचने का दारिद्रता'** अगर देने को कुछ न हो तो मीठे शब्द बोलने में क्यों कमी रखते हो।

> तुलसी मीठे वचन तें, सुख उपजे चहुं ओर।
> वशीकरण एक मंत्र है, तज दे वचन कठोर॥

फारसी में भी कहा है—

> **यन के अज़ीज़ रहना प्यारी जबां दहन में।**

हे प्यारी जीभ ! अन्य कोई मित्र हो या न हो मगर तू यदि मेरी मित्र बनकर रही तो शेष लोग अपने आप ही मेरे मित्र बन जायेंगे।

[illegible] तुम [illegible] अन्य [illegible] हैं मगर [illegible] अपनी जीभ को अपना मित्र बनाइये [illegible] अपना मित्र बनाइये [illegible] नहीं कर रही है इस बात का [illegible] फिर भी आपकी जबान से यदि [illegible] है [illegible] आपकी जीभ से [illegible]

पूर्वज ने स्वप्न में आपको यह बताया कि आपके घर में एक तरफ सोना और दूसरी तरफ कोयला गड़ा है। दैवयोग से आपके हाथ में कुदाला भी आगया। आप सोने की तरफ खुदाई करेंगे या कोयले की तरफ? यदि कोयले की तरफ खुदाई करेंगे तो कोयला हाथ पड़ेगा और हाथ काले होंगे सो अधिकाई में। हाथ मुँह में लगेंगे सो मुख भी काला होगा। आप कहेंगे हम सोना कहां छोड़ने वाले हैं, हम इतने मूर्ख नहीं है जो सोने को छोड़ कर कोयले की तरफ नजर करें। बन्धुओं! यही बात मैं भी आप से कहना चाहता हूं कि आप अपनी जबान से हित, मित और मनोहारी शब्दों का उच्चारण करके सोना निकालिये। अहितकारी और दुःख पहुँचाने वाले शब्दों का उच्चारण करके कोयला निकाल कर अपना मुख काला मत करिये।

बहिनों को भी मेरी खास आग्रह पूर्वक सूचना है कि वे गन्दे और भद्दे शब्द अपनी पवित्र जबान से न निकालें। कई स्त्रियाँ अपने लड़के को 'खोजगया' 'पकड़ में गया' आदि शब्दों से पुकारती हैं। यदि लड़के का खोज चला गया या वह पकड़ में पहुँच गया तो तुम्हारा क्या हाल होगा, यह तो सोचो। यह सब अज्ञानता का चिह्न है। आप लोग साधुओं की सत्संग करती हैं फिर भी ऐसे वचन बोलती हैं, यह जानकर दुःख होता है। भोजने अंधे को अन्धराज कहा था अतः वह राजा मना गया किन्तु दुष्ट सिपाहियों ने 'ओ वे अन्धे' कहा था अतः सिपाही ही समझे गये। जिनके पास जैसी वस्तु होती है वह दूसरों को वही देगा अन्य वस्तु कहां से लायगा। एक कवि कहता है—

> ददतु ददतु गालीर्गालिवन्तो भवन्तः,
> वयमिह तदभावात् गालिदाने ऽसमर्थाः ।
> जगति विदितमेतद्दीयते विद्यमानं,
> नहि शशक विषाणं कोऽपि कस्मै ददाति ॥

अर्थ—आप हमें गाली दीजिये, क्योंकि आप [illegible] है। [illegible] गाली नहीं है अत हम आपको गाली देने में असमर्थ हैं यह [illegible] वस्तु जिसके पास होती है दूसरों को वही वस्तु देता है। [illegible] देता क्योंकि उसके होता ही नहीं है।

> जापै जैसी वस्तु है वैसी दे दिखलाय।
> वाको बुरा न मानिये वो लेन कहाँ से जाय॥

कोई मुझसे आकर कहे कि अमुक आदमी गालियां दे रहा था तुम बदले में गालियां क्यों नहीं देते तो मैं उस भाई से यही कहूंगा कि मेरे हितैषी दोस्त ! मैं गालियाँ देने में असमर्थ हूं मेरे दिमागरूपी खजाने में गालियों का स्टाक नहीं है। जो चीज मेरे पास नहीं है वह मैं कहां से और कैसे दूं ? कोई खरगोश से कहे कि तू तेरा सींग मुझे दे दे। वह बेचारा सींग कहां से दे ? उसके सींग प्रकृति ने पैदा ही नहीं किये। गधे से कहा जाय कि गाय जैसे सींग मारती है वैसे तू भी मारा करतो वह कहां से मारेगा ? जिसके मगज में गालियां या दुष्ट शब्द भरे पड़े हैं वही अनुकूल संयोग मिलने पर अपना स्टाक खाली करता है किन्तु जिस सत्पुरुष के मन में बुराई का अंश भी नहीं है वह गालियां कहां से देगा ? मतलब कि जिनके संस्कार अच्छे हैं वे लोग वाणी पर नियन्त्रण रखते हैं।

आप लोग हमारी संगति करते हो फिर गालियां बोलो यह अच्छी बात नहीं है। बचपन से आप लोग साधुओं की सेवा करते हैं। आपने क्या कभी साधुओं के मुख से गाली सुनी है ? फिर आप कहांसे सीख गये। साधुओंके संस्कार आपमें क्यों नहीं आपाये।

वाणी पर काबू रखने के विषय में पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज एक दृष्टान्त दिया करते थे। वह यह है। एक लखेरा गदही पर चूड़ियां लादकर हाट में ले जाया करता था। आजकल तो अनेक प्रकार की रबर और कांच की चूड़ियां चली है और इस प्रकार बहनों के हाथ भी विदेशी माल ने पकड़ रखे हैं किन्तु पहले जमाने में लाख की चूड़ियां पहननी थीं। जब गदही धीरे चलती और हाट पहुंचने में देरी लगने लगती तब वह लखेरा उसे जल्दी चलाने के लिए कहता 'चल मेरी मां, चल मेरी बहिन, चल मेरी काकी आदि' लखेरे के ये संबोधन सुनकर राहगीर लोग हंसने लगते। एक श्रेताने पूछा कि ओ लखेरे ! तुम गदही को मां बहिन और काकी कह कर कैसे पुकारते हो ? उसने खुलासा किया कि भाई ! यदि मैं गाली देकर गदही हांका करूं तो मुझे गाली देने की आदत हो जायगी। तुम जानते हो कि मेरा धंधा चूड़ियां पहनाने का है। चूड़ियां पहिनने के लिए स्त्रियां ही आया करती हैं। यदि मेरे मुंह से मां बहिन आदि शब्द न निकल कर अन्य कोई शब्द निकला करे तो अनेकों स्त्रियां भी यहां आना छोड़ देंगी और इस प्रकार मैं बेरोजगार हो जाऊंगा।

बहुत से लोग गाय, घोड़े, बैल, ऊंट आदि को हांकते वक्त बड़ी बुरी गालियां निकालते हैं। यह बात गालियां बोलने वालों की कटुता सूचित करती है। पशु गालियों का अर्थ नहीं समझ सकते। बोलने वाले अपनी मुराद पूरी करते हैं। वाणी से मनुष्य की

संस्कारिता प्रकट होती है अतः अच्छी वाणी बोलनी चाहिए। आप लोग श्रावक और व्यापारी हो अतः ध्यान रखो कि कहीं आपकी वाणीसे आपके श्रावकत्व और व्यापारीपन में धक्का नहीं लग रहा है।

श्रेणिक राजाने मुनि को झूठ न बोलने के लिए उपालंभ तो दिया है मगर उपालम्भ देने के लिए जिस सभ्यता, नम्रता और विवेक का प्रयोग किया है उसपर ख्याल कीजिए।

सुदर्शन चरित्र

> रूप कला यौवन वय सरखी सत्य शील धर्मवान्।
> सुदर्शन् और मनोरमा की जोड़ी जुड़ी महान् रे धन ॥१७॥
> श्रावक व्रत दोनों ने लीना पोषध और पचखान।
> शुद्ध भाव से धर्म अराधे, अदलक देवे दान रे धन ॥१८॥

सुदर्शन और मनोरमा का विवाह सम्पन्न हो चुका है। आज विवाह प्रथा को महज एक सामान्य वस्तु माना जाता है किन्तु विचार करने से ज्ञात होता है कि इसके पीछे गहरे तत्त्व छिपे हुए हैं। यह प्रथा भगवान ऋषभदेव ने चालू की है। मनुष्यों को मर्यादित और समाज में शान्ति रखने के लिए ही भगवान ने यह विधान दाखिल किया कि सब कोई अपना जोड़ा चुन ले और जीवन पर्यन्त उसके साथ अपना निर्वाह करे। सब से पहला विवाह स्वयं भगवान ऋषभदेवने सुमंगला के साथ करके यह परम्परा चालू की है।

यह बात ध्यानमें लेने की है। विवाह करने का अधिकार किसको है और किसके साथ है? आजकल रुपयों का रुपयों के साथ विवाह होता है। रूप, शील और गुण में भी ध्यान नहीं देते हैं उनको केवल धन देखकर बांध दिया जाता है। दुर्भाग्य से बेमेल विवाह करके प्रेम की वैसी आशा नहीं की जा सकती है। प्रेम को [illegible] में पहले ही [illegible] जाती है। पुरुष सब मनमाने कार्य करता रहे और कहता रहे कि पुरुषों को सब कुछ करने का अधिकार है [illegible] यह पुरुषों ने [illegible] रखी है। पुरुषों ने ही [illegible] को [illegible] किया है। [illegible] कहते हैं कि [illegible] करता है वह पुरुष [illegible] है। [illegible] है वह [illegible] पुरुष है [illegible]। आजकल तो यह [illegible] है [illegible] है, [illegible]।

वर और कन्याओं का विवाह जोड़ने के लिए रुपयों की मांग करना कितना बड़ा और अनुचित रिवाज है यह लग्न है या विक्रय चाहे विलायत जाने के नाम पर चाहे पढ़ाई के नाम पर, रुपये मांगना वर विक्रय ही गिना जायगा। क्या जाति वाले इन बातों पर प्रतिबन्ध नहीं लगा सकते। लड़की वाला खुश होकर अपनी कन्या को कुछ भी दे यह बात दूसरी है मगर पहले से ही सौदा ते करना, बुरी बात है। इस प्रकार के सौदे में संतान के प्रति करुणा बुद्धि नहीं रह पाती। मुख्य बात लेन देन हो जाती है। रूप गुण और शील आदि गौण बन जाते हैं। भगवान् ने दूसरे व्रत में 'कन्नालिए' अर्थात् कन्या सम्बन्धी झूठ बोलने का निषेध किया है। इस में पुरुषों को पहले क्यों नहीं लिया, स्त्रियों को क्यों लिया गया? इसका कारण यह है कि नारी जाति माता का रूप लेती है। उसका आदर होना चाहिए।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

जहां नारियों का आदर सत्कार होता है वहां देवता रमण करते हैं। लक्ष्मी वहीं रहती है और वहीं आनन्द भी।

सुदर्शन और मनोरमा का विवाह हो गया है। विवाह इस लिए होता है कि जो काम स्त्री या पुरुष अकेले नहीं कर सकते वह दोनों मिलकर करें। कोई भाई यह पूछे कि ऐसा कौनसा काम है जो स्त्री या पुरुष अकेले नहीं कर सकते तो उसके लिए दृष्टान्त के रूप में सब से प्रथम काम प्रश्नकर्ता की उत्पत्ति करना बताता हूं। क्या प्रश्न करने वाला भाई अकेली स्त्री या अकेले पुरुष से उत्पन्न हुआ है? कदापि नहीं। जगत् की भावी पीढ़ी का निर्माण स्त्री पुरुष के जोड़े से ही होता है। प्रकृति ने बड़ी खूबी के साथ स्त्री पुरुष को जोड़ा है। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों मिलकर ही संसार चला सकते हैं।

यदि स्त्री और पुरुष के स्वभाव में मेल न होने से घर श्मशान बन जाता है। एक पुरुष बड़ा उदार है। किसी को अपने घर पर भोजन कराने के लिए ले आया है। यदि स्त्री भी उदार और सेवा भावी हो तब तो ठीक है नहीं तो वह कर्कशा नारी दूसरे पुरुष को देखते ही कहने लगेगी कि मैं क्या तुम्हारी दासी हूं जो तुम्हारे अमुक अमुक साथी के लिए रोटियाँ बनाती रहूं ऐसे पुरुष को अपने देखने या उसका पेट भरने के लिए अलग ही व्यवस्था करनी पड़ेगी। बहुत सी स्त्रियां इतनी भली होती हैं कि उन्हें दूसरों को खिलाने में विशेष आनन्द आता है। इसी प्रकार स्त्री अच्छी हो और पुरुष कर्कश हो तो भी काम नहीं चलता।

जैन रामायण में इस विषय की एक कथा है। राम लक्ष्मण और सीता वन में जा रहे थे। सीता ने लक्ष्मण से कहा कि लक्ष्मण मेरा मुँह कैसा हो रहा है, देखते हो। लक्ष्मण ने कहा मैं देखता हूं आप को प्यास लग रही है। इतने में एक घर दिखाई दिया। राम ने कहा, पता लगाओ करो, पानी मिल जायगा। तीनों उस घर में गये। यह घर ब्राह्मण का था। उस समय ब्राह्मण कहीं बाहर गया हुआ था। ब्राह्मणी घर में थी। वह तीनों को देख कर बड़ी प्रसन्न हुई। उसे इतना आनन्द मानों घर में देवता आगये हों ब्राह्मणीने एक चटाई डालदी और बैठनेके लिए प्रार्थनाकी। मीठी बातोंसे ही ब्राह्मणीने उनकी प्यास बुझादी। फिर ठंडा जल भर कर लाई और सब को पिला दिया। सब बातें कर रहे थे कि इतने में ब्राह्मण देवता बाहर से घर आ गये। तीनों को देखकर ब्राह्मण बहुत क्रुद्ध हुआ। तीनों के कपड़े धूल में भरे हुए थे ही। उसने सोचा न मालूम ये कौन हैं। ब्राह्मणी से कहने लगा 'न मालूम किन किन को घर में बुलाकर बैठा लेती है। मैं अनेक बार हिदायत कर चुका हूँ मगर तू ध्यान नहीं देती। आज इसके लिए मैं तुझे दण्ड दूँगा।' यह कहकर ब्राह्मण चूल्हे में से जलती हुई, लकड़ी लाया और उससे ब्राह्मणी को जलाने लगा। ब्राह्मणी सीता के पीछे पीछे छिपने लगी और बचाव के लिए प्रार्थना करने लगी। रामचन्द्र ने ब्राह्मण से कहा कि भाई यह क्या करता है। मगर वह लातों का आदमी बातों से कैसे मान सकता था। जब वह न माना और ब्राह्मणी को जलाने के लिए भागता ही रहा तब लक्ष्मण की आंखें लाल हो गईं और उन्होंने उसको टांग पकड़ कर आकाश में फेंक दिया। राम कहने लगे, लक्ष्मण! यह ठीक नहीं किया। हम लोगों ने इस के घर आकर सत्कार पाया है और पानी पिया है। लक्ष्मण ने कहा, फेंक दिया है मगर वापस संभाल लूंगा, मरने न दूंगा। ज्योंही वह ब्राह्मण नीचे गिरा लक्ष्मण ने झेल लिया। उनकी शक्ति देखकर ब्राह्मण का दिमाग ठंडा हुआ।

कहने का भावार्थ यह है कि स्त्री भली हो और पुरुष नीच हो तो भी काम नहीं चलता। राम जैसों का भी उस घर में अपमान हो जाता है। अतः विवाह में जोड़ी समान स्वभाव और गुणवाली होनी चाहिए। किन्तु पैसे के लोभी दलाल लोग जोड़ी नहीं देखते। वे तो अपनी दलाली सीधी करने के लिए मनमानी झूठी सच्ची बातें भिड़ाकर काम को पार लगा देते हैं। [illegible] माना या बिंदनी। पृथ्वीधर [illegible] ५० वर्ष [illegible] थे, जहां एक बड़ा शादी करना चाहता था। पृथ्वी ने उस बूढ़े के [illegible] न करने की प्रतिज्ञा दिलादी। इस बात से दलाल लोग बहुत नाराज हुए और कहने लगे कि महाराज हमारी [illegible] पचास हजार की रोजी पर आपने लात मार

थी। बन्धुओ! इसमें महाराज का क्या दोष था। बुरे काम करने वाले संतों पर भी दोषारोपण कर देते हैं।

सुदर्शन और मनोरमा की जोड़ी बड़ी योग्य थी। दोनों का स्वभाव रूप गुण के आदि समान थे। दोनों के धार्मिक खयालात भी समान थे। जहाँ पति पत्नि में धार्मिक विचार में अन्तर होता है वहाँ सच्चा प्रेम नहीं हो सकता। वह प्रेम शारीरिक होगा मानसिक नहीं। मानसिक प्रेममें भावों और विचारों की एकता अनिवार्य है। आनन्द श्रावक ने भगवान महावीर से व्रत अंगीकार किये और घर आकर अपनी स्त्री शिवनंदा से कहा कि तुम भी जाओ और व्रत अंगीकार करलो। शिवानंदा गई और व्रत ले लिए। इस प्रकार जहाँ आपस में प्रेम और धर्म की समता होती है वहीं आनन्द होता है। सुदर्शन मनोरमा की जोड़ी भी ऐसी ही है। आगे क्या होता है सो यथावसर बताया जायगा।

राजकोट
३१—७—३६ का
व्याख्यान